THE

KĀSHĪ SANSKRIT SERIES
NO. 95.

(Karmakāṇda Section, No. 8.)

॥ श्रीः ॥

संस्कारदीपकः

नाम

परिशिष्टदीपकः

तृतीयो भागः

प्रकाशकः—

...म्बा-संस्कृत-पुस्तकालय बनारस—१

S
294.538
P 259.III.S

प्रिय तथा रक्तपित्त, दाह एवम् शूलनाशक

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY · SIMLA ·

...लाकल्कं कृच्छ्रघ्नं मस्तुना युतम् ॥४५॥
...ने से समस्त मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं। तथा
...र मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ४५ ॥
...।निलाद्धन्ति वस्तीजं पञ्चमूलकम् ॥४६॥
...नको पीसकर पीने से वातज तथा पित्तज
... ४६ ॥
...बीज... ...त्तमकुङ्कुमानाम् ।
...प्रस्यमनूर... ...पि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ ४७ ॥
..., पिप्पली, क... ...ड़ी के बीज, सेंधानमक तथा केसर के चूर्ण
...से मरणासन्न मूत्रकृ... ...च्छ्री स्वस्थ होकर जीवित रहता है ॥ ४७ ॥
...योजितम् । मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥ ४८ ॥
... तीन दिन तक पीने से शीघ्र मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है इसमें कुछ

अथ सुकुमारकुमारकपुनर्नवाऽऽद्यवलेहमाह—

...पञ्चमूलं शतावरीम् । बलां तुरङ्गगन्धां च तृणमूलं त्रिकण्टकम् ॥ ४९ ॥
...नागाह्वगुडूच्यतिबलास्तथा । पृथग्दशपलान्भागानपां द्रोणे विपाचयेत् ॥ ५० ॥
...शेषेण घृतस्यार्धाढकं पचेत् । मधुकं शृङ्गवेरञ्च द्राक्षां सैन्धवपिप्पलीम् ॥ ५१ ॥
...शान्पृथग्दत्त्वा यवान्याः कुडवं तथा । त्रिंशद्गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ ५२ ॥
...धनेश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम् । राज्ञां राजसमानानां बहुस्त्रीपतयश्च ये ॥ ५३ ॥
मूत्रकृच्छ्रे कटिग्रस्ते तथा गाढपुरीषिणाम् । मेढ्रवङ्क्षणशूले च योनिशूले च शस्यते ॥ ५४ ॥
यथोक्तानाञ्च गुल्मानां वातशोणितिनश्च ये । बल्यं रसायनं श्रीदं सुकुमारकुमारकम् ॥ ५५ ॥
पुनर्नवाशते द्रोणः प्रदेयोऽन्येऽपि चापरः ॥ ५६ ॥

पुनर्नवा की जड़ १ तुला (४०० तोले) तथा दशमूल की ओषधियां (कहीं २ दशमूल के स्थान में दर्भमूल ऐसा पाठ है), शतावरी, खिरेटी, असगन्ध, तृणपञ्चमूल, गोखरू, विदारीकन्द, नागकेशर, गुडूची तथा गगेरन इन प्रत्येक ओषधियों को १०-१० पल लेकर १ द्रोण (१०२४ तोले) जल में पकावे। जब चतुर्थांश शेष रह जाय तो छान कर इस क्वाथ से आधा आढक (१२८ तोले) घी को पकावे फिर इस प्रकार सिद्ध घृत में मुलहठी, अदरख, मुनक्का, सेंधानमक तथा पिप्पली इन में से प्रत्येक के चूर्ण को ८-८ तोले, अजवायन का चूर्ण १६ तोले तथा एरण्डतैल ३० पल (१२० तोले) डाल कर मिलादे तो "सुकुमारकुमारक पुनर्नवाऽवलेह" सिद्ध हो जाता है। इस प्रशस्त अवलेह को धनियों, राजाओं, राजाओं के समान मनुष्यों को तथा बहुत स्त्री वाले मनुष्य को भोजन करने के पहिले ही चटावे। इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र, कमर की शिथिलता, मल की गाढ़ता, लिङ्गशूल, वंक्षणशूल, योनिशूल तथा समस्त गुल्म और वातरक्त नष्ट हो जाते हैं। यह अवलेह बलवर्द्धक, रसायन, लक्ष्मीदायक तथा बालकों को सुकुमार (सुन्दर) बनाता है। और कोई पुनर्नवा मूल १०० पल लेकर एक द्रोण जल में पकाकर चतुर्थांश जल अवशिष्ट रहने पर उतार कर उपर्युक्त घृत तथा प्रक्षेप्य द्रव्य भी मिलाकर लोह की भांति पकाकर तैयार करने से दूसरा पुनर्नवादि लौहपाक सिद्ध होना बताते हैं ॥ ४९-५६ ॥

❀ मूत्राघातविधिविधानमप्यत्र कार्यम् ।

इति पञ्चत्रिंशो मूत्रकृच्छ्राधिकारः समाप्तः ॥ ३५ ॥

मूत्राघात में जिन चिकित्साओं का विधान किया जाता है, उनका भी प्रयोग इस रोग में करना चाहिये।

इति "विद्योतिनी" भाषाटीकायां पञ्चत्रिंशो मूत्रकृच्छ्राधिकारः समाप्तः ॥ ३५ ॥

अमंस्तिष्ठति । कुण्डलीभूतो वायुर्वस्तौ=मूत्राशये, चरति=प्रधावति । आवद्धत्वाद् अमंस्तिष्ठति ॥ २-३ ॥

शरीर की रूक्षता तथा मूत्र इत्यादि के वेगों को रोकने से दुष्ट वायु कुण्डलाकार होकर मूत्र के साथ मिलकर मूत्राशय में दौड़ता है। उस समय वेदना होती है तथा पीडायुक्त थोड़ा २ मूत्र उतरता है। इस तीव्र महादारुण व्याधि को "**वातकुण्डलिका**" समझना चाहिये ॥ २-३ ॥

न्तर पर था, ऊपर की ओर उठाया जाता है जिससे सारा शस्त्र सीधा खड़ा हो जाता है और चर्म के साथ समकोण बनाता है। इस दूसरी क्रिया के समय शस्त्र मूत्रमार्ग की पूर्वभित्ति के सहारे अपने ही भार से निरन्तर आगे बढ़ता रहता है और **त्रिकोणिकबन्धन** (Triangular Ligament) पर पहुंच जाता है। इस समय शस्त्र के पिछले सिरे को पकड़ कर धीरे से तनिक नीचे अथवा गुदा स्थान की ओर झुका दिया जाता है, जिससे वह मूत्रमार्ग के **पौरुषग्रन्थिक** (Prostatic Urethra) और **कलाकृत** (Membranous Urathra) भागों में होता हुआ मूत्राशय में पहुंच जाता है। यह नीचे की ओर को झुकाने की क्रिया उस समय करनी चाहिये जब शस्त्र मूत्रमार्ग में पर्याप्त दूरी तक पहुंच जावे। शस्त्र के प्रयोग के समय बल लगाना भूल है। यदि वह स्वयं अपने ही भार से आगे की ओर नहीं बढ़ता तो क्रिया में कहीं भूल हुई है। ऐसी दशा में उसको निकाल कर फिर से प्रविष्ट करना चाहिये।

इन धातु के शस्त्रों के उपयोग से कभी २ निम्न लिखित उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, यथा—

स्तब्धता—यह दशा उन व्यक्तियों में उत्पन्न होती है जिनमें कैथिटर या शलाका का प्रथम बार प्रयोग किया जाता है। वृद्धावस्था में यह दशा अधिक बार उत्पन्न होते देखी गई है। शस्त्र को डालते समय अथवा उसको निकालने के पश्चात् स्तब्धता उत्पन्न होती है। रोगी की दशा अकस्मात् विकृत हो जाती है। नेत्रों के तारे प्रसरित और नाड़ी मन्द हो जाती है। चेतना जाती रहती है। गले में गड़गड़ाहट आरम्भ हो जाती है। रोगी वेग से एक श्वास बाहर निकालता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। यदि ऐसी दशा उत्पन्न हो जावे तो उत्तेजक ओषधियों को तुरन्त इन्जेक्शन द्वारा शरीर में प्रविष्ट करना चाहिये। कृत्रिम श्वास क्रिया से लाभ होता है। शस्त्र को डालने से पूर्व **२ प्रतिशत के नोवोकेन बिलयन** को मूत्रमार्ग में प्रविष्ट कर देने से इस दशा की उत्पत्ति का भय बहुत कुछ कम हो जाता है।

ज्वर—शस्त्रप्रयोग करने के दो या तीन घण्टे अथवा तीन या चार दिन के पश्चात् ज्वर उत्पन्न हो सकता है। इसका कारण संक्रमण होता है, जो शस्त्र के साथ भीतर पहुंच जाता है। इसके लक्षण संक्रमण की प्रबलता के अनुसार होते हैं। प्रायः केवल दो या तीन दिन तक मन्द ज्वर रह कर जाता रहता है। संक्रमण के प्रबल होने पर वह अधिक समय तक रह सकता है। यदि वृक्क-शोथ के लक्षण दिखाई दें तो दशा चिन्ताजनक है। इस रोग में रोगी की सात या आठ दिन में मृत्यु हो सकती है।

शस्त्रों को प्रयोग करते समय पूर्ण स्वच्छता और शुद्धि का ध्यान रखना चाहिये। पूर्ण विसंक्रमण किये बिना उनका प्रयोग करना उचित नहीं। यदि रबर के कैथिटरों से काम चल सके तो धातु के शस्त्रों का उपयोग नहीं करना चाहिये। इनके द्वारा मूत्रमार्ग में व्रण बनने और संक्रमण के पहुंचने का अधिक भय रहता है।

ज्वर उत्पन्न होने पर रोगी को शय्यारूढ करके उसको उष्ण तरल द्रव्य पीने को देने चाहिये। भोजन के लिए केवल दुग्ध देना उचित है। कुनैन से लाभ होता है। यदि दो वा तीन दिन के पश्चात् भी ज्वर बना रहे और लक्षण दारुण प्रतीत हों तो विरेचक और मूत्रल ओषधियों द्वारा विरेचन और मूत्रत्याग करवाना चाहिये। कटि के पार्श्व में उष्ण स्वेद करने से भी मूत्रत्याग होता है। रोगी को स्वेदन करवाना चाहिये। विरेचक इस प्रकार के हों जिनसे मल के साथ तरल अधिक निकले। यदि इन पर भी मूत्र का उचित प्रवाह न आरम्भ हो तो शस्त्रकर्म द्वारा मूत्रद्वार का छेदन करना आवश्यक है।

रक्तप्रवाह—धातु के शस्त्रों और कभी २ रबर के कैथिटरों के प्रयोग के पश्चात रक्त-प्रवाह होने लगता है। मूत्रमार्ग में शोथ होने से इन शस्त्रों से श्लैष्मिक कला क्षत हो जाती है और उससे रक्त निकलने लगता है। असत्य मार्गों के बनने पर रक्त अधिक निकलता है किन्तु साधारण अवस्थाओं

अथाष्ठीलालक्षणमाह—

आध्मापयन्वस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम्। कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥४॥

वातो वस्तिगुदं रुद्ध्वा-अर्थात्तदन्तर्गतं मूत्रं मलञ्च निरुद्ध्य, वस्तिं गुदञ्च,आध्मापयन्= आध्मानं कुर्वन्, अष्ठीलाम्=अष्ठीलातुल्यां ग्रन्थिं कुर्यात्। चलोन्नतां = चलामुन्नताञ्च ॥ ४ ॥

वायु मूत्र तथा मल को अवरुद्ध करके मूत्राशय तथा गुदा में आध्मान को उत्पन्न करता हुआ चल, उन्नत तथा तीव्र पीड़ा वाली, मूत्र तथा मल को रोकने वाली **अष्ठीला** (पिण्डाकार ग्रन्थि) को उत्पन्न कर देता है ॥ ४ ॥

अथ वातवस्तिलक्षणमाह—

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः। निरुणद्धि मुखं तस्य वस्तेर्वस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥

मूत्रसङ्गो भवेत्तेन वस्तिकुक्षिनिपीडितः। वातवस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥६॥

अकुशलो = मूर्खः। तस्य पुरुषस्य वस्तेर्मुखं निरुणद्धि वस्तिगतो वायुः। तेन = वायुना, मूत्रसङ्गो = विघातो भवति। वस्तिकुक्षिनिपीडित इति-वस्तौ कुक्षौ निपीडितः = सम्पीडितो वायुरिति सम्बन्धः। मूत्रसङ्गः = मूत्रावरोधः ॥ ५-६ ॥

जो मूर्ख मनुष्य मूत्र के वेग को धारण करता है उसके मूत्राशय में रहने वाला वायु मूत्राशय के मुख को बन्द कर देता है तब मूत्र रुक जाता है। इससे मूत्राशय तथा कुक्षि में पीड़ा होती है। इसे **वातवस्ति** जानना चाहिये। यह रोग कष्टसाध्य है ॥ ५-६ ॥

अथ मूत्रातीतलक्षणमाह—

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्त्तते। मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स स उच्यते ॥ ७ ॥

मेहमानस्य = मूत्रमुत्सृजतः, मन्दम् = अल्पं वा ॥ ७ ॥

अधिक समय तक मूत्र को धारण करने वाले मनुष्य का मूत्र शीघ्रता से नहीं उतरता तथा पेशाब करने के समय थोड़ा २ पेशाब उतरता है। इस रोग को **मूत्रातीत** कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ मूत्रजठरलक्षणमाह—

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्त्तहेतुकः। अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद् भृशम् ॥ ८ ॥

नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम्। तन्मूत्रजठरं विद्यादधोवस्तिनिरोधजम् ॥ ९ ॥

तदुदावर्त्तहेतुक इति-मूत्रवेगधारणजनितोदावर्त्तनिदानम्, आध्मानं कुर्यात्। अधोवस्तिनिरोधजम् = वस्तेरधोदेशे विबन्धकारकम् ॥ ८-९ ॥

मूत्र के वेग को रोकने से अपान वायु उदर को अच्छी तरह से भर देता है। तब मूत्रवेग-विधारणजन्य उदावर्त्त नाभि के नीचे तीव्र वेदना युक्त आध्मान को उत्पन्न कर देता है जिससे मूत्राशय का निम्न भाग अवरुद्ध हो जाता है। इस रोग को "**मूत्रजठर**" समझना चाहिये ॥ ८-९ ॥

अथ मूत्रोत्सङ्गलक्षणमाह—

वस्तौ वाऽप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः। मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥१०॥

स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाऽपि नीरुजम्। विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥११॥

नाले = मेढ्रे। मणौ = मेहनग्रन्थौ। सज्जेत = निरुद्धं स्यात्। सरक्तं प्रवाहतः = कण्ठ-... प्रेरणम् = प्रवाहणं, तेन कुपितेन वायुना वस्त्यादि-

स्थलेन सशब्दं मूत्रपुरीषवातानामधः

बन्द तो जाता है। यदि वह अधिक हो तो किसी आवश्यक हो कुछ समय के पश्चात् वह स्वयं ही बन्द तो जाता है। अन्य रक्तस्तम्भक ओषधियां भी प्रविष्ट की जा सकती हैं। शस्त्र को भीतर डालकर बांध देना चाहिये। सङ्किरण की चिकित्सा में कभी २ असत्य मार्ग उत्पन्न हो

असत्य मार्ग (False-Passage)—सङ्किरण की चिकित्सा में कभी २ असत्य मार्ग उत्पन्न हो जाते हैं। जब ऐसा होता है तो शस्त्र बीच की रेखा में न रहकर एक ओर को हट जाता है। कैथिटर या शलाका का पिछला सिरा एक ओर को मुड़ा हुआ दीखता है। प्रविष्ट करने के समय कैथिटर पर जो अवरोध प्रतीत होता था वह अकस्मात् हट जाता है और शस्त्र वेग से आगे को बढ़ जाता है। रोगी को तीव्र पीड़ा होती है और रक्तप्रवाह भी अधिक होता है। कभी २ शस्त्र सङ्किरण के पूर्व श्लैष्मिक कला को छेद कर उसके नीचे २ सङ्किरण से आगे पहुँच कर कला का फिर छेदन कर मूत्रमार्ग में आ जाता है। मूत्राशय तक शस्त्रद्वारा छिद्र होते देखा गया है। इन मार्गों द्वारा मूत्र चारों ओर के स्थान

THE

KĀSHĪ SANSKRIT SERIES
NO. 95.

(Karmakāṇḍa Section No. 8.)

संस्कारदीपकः

नाम

परिशिष्टदीपकः

तुलादानादि–मूलशान्त्यादिनिरूपणात्मकः

तृतीयो भागः

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीनित्यानन्दपन्त पर्वतीय-
विरचितः ।

THE

SAṂSKĀRA DĪPAKA

By

MAHÂMAHOPÂDHYÂYA

Paṇḍit Nityānanda Panta Parvatiya

(**Part III**)

BANARAS
JAYA KRISHNA DÂS HARIDÂS GUPTA
The Chowkhamba Sanskrit Series Office,

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 62973
Date 4.5.1.0.65
SIMLA

Library IIAS, Shimla
S 294.538 P 259.1 S-P 259.111
00006293

Registered According to Act XXV of 1867.
All Rights Reserved by the Publishers.

PRINTED BY
JAYA KRISHNA DAS GUPTA,
VIDYA VILAS PRESS, BANARAS
1951

प्रकाशकः—
जयकृष्णदास-हरिदास गुप्तः,
चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस,
विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी
(द्वितीयं संस्करणम्)
सं० २००८
मूल्यं ५॥)

S
294.538
P 259

॥ श्रीगुरुः शरणम् ॥

निवेदनम्

ईश्वरकृपया सिद्धमिदं संस्कारदीपकतृतीयभागस्य परिशिष्टदीपकाख्यस्य अस्मद्गुरुवर-ब्रह्मीभूत-महामहोपाध्याय-पण्डित-श्रीनित्यानन्दपन्त-पर्वतीयविरचितस्य द्वितीयं संस्करणम्। एतत्खलु विद्याविलासमुद्रणयन्त्रालयचौखम्बासंस्कृतपुस्तकालयस्वामिना श्रीजयकृष्णदासगुप्तमहोदयेन श्रद्धाचेतसा प्राकाश्यं नीतमिति। अस्य ग्रन्थस्योपादेयता अचिरादेव प्रथमसंस्करणस्य ग्रन्थकर्त्रा स्वयं प्रकाशितस्य दौर्लभ्येनैव विदितचरेति न तत्र किमपि वक्तव्यमवशिष्यते।

अस्मिंश्च परिशिष्टदीपके प्रथमतो विस्तरेण दानस्वरूपमभिधाय तद्विधिं प्रतिग्रहविधिं चोक्त्वा कुण्डमण्डपनिर्माणविधिनिरूपणपूर्वकं सहोमं होमरहितं च तुलादानविधिं तुलादण्डादिनिर्माणविधिसहितमभिधाय गवादिमूल्यनिरूपणपूर्वकं गोदान-भूमिदान-विद्यादानेति अतिदानानि तत्प्रयोगांश्च संक्षेपतो विस्तरतश्च प्रदर्श्य तदनन्तरं दशमहादानानि प्रसङ्गतश्च दशदानानि प्रायश्चित्तप्रयोगसहितानि पापधेनु-ऋणधेनु-मोक्षधेनु-वैतरणीधेनु-उत्क्रान्तिधेनुदानानि गृहदानप्रसङ्गाद् भूपरिग्रह-सूत्रपात-शिलान्यास-वास्तुशान्तिगृहप्रवेशप्रयोगान् प्रतिश्रयदानविधिं चोक्त्वा सुवर्णादिदेयद्रव्याणां विशेषतो दानमन्त्रांश्च प्रदर्श्य अन्ते कालविशेषे दानविशेषांश्चोक्त्वा दानप्रकरणं समाप्य गोमुखप्रसवशान्तिप्रयोगमभिधाय मूल-आश्लेषादिनक्षत्रजननशान्तयः त्रिकप्रसवयमलजनन-गण्डान्तशान्तयः सविस्तरं निरूपिताः।

अत्र दृष्टिदोषेण अज्ञानेन सीसकाक्षरदोषेण वा सम्भाविताः सहजास्त्रुटीः क्षाम्यन्तु भवन्तः संगृह्णन्तु चेदं द्वितीयं संस्करणमिति नवेदयति—

श्रीवेद वेदाङ्ग पाठशाला
हनुमान् मन्दिर, सक्काघाट,
काशी
विजया दशमी सं० २००८

विदुषामनुचरो
गोपाल शास्त्री नेने

विषयानुक्रमणिका

विषयः	पृ०
दानस्वरूपम्	१
दानं हेतुतो द्विविधम्	२
दानस्य षडधिष्ठानानि	,,
दानस्य षडङ्गानि	,,
नास्तिकादिभ्यो दानं विपरीतफलम्	,,
अङ्गवैकल्येन दानमल्पफलम्	३
अङ्गवैपुल्ययुक्तदानं प्रशस्तम्	,,
ध्रुवदाननित्यदानादिकम्	,,
दानादीनां स्वयंकीर्तनादिना नाशः	,,
विद्वांसं भोजनादौ नातिक्रामेत्	,,
दौहित्रादीन् मूर्खानपि नातिक्रामेत्	,,
अन्नदाने न पात्रपरीक्षा	,,
प्रायः कुटुम्बाविरोधेन दानम्	,,
प्रायो दानप्रतिज्ञानतिक्रमः	,,
दत्तानपहारः।	,,
गवादिकं विभज्य न देयम्	,,
यतये सुवर्णादिकं, गृहस्थाय पक्वान्नं भिक्षात्वेन, वानप्रस्थाय गोरसं, शूद्राय होमशेषं कृसरादि च न दद्यात् शूद्रात् क्षीरादिकं न प्रतिग्राह्यम्	,,
प्रणामं विना 'स्वस्ति'इति तस्मै न ब्रूयात् इति दानस्वरूपादिकम्	,,
अथ दानविधिः	,,
प्रतिग्रहविधिः	५
देयद्रव्यदेवताः	६
भूम्यादिप्रतिग्रहे विशेषः	७
दातृप्रतिग्रहीतृधर्माः	८
दक्षिणादिनिर्णयः	९
द्रव्यमानम्	१०
धान्यमानम्	११
भूमानम्	,,
षोडशमहादानानां नामानि	१४
मण्डपनिर्माणप्रकारः	१५
नवकुण्डीनिरूपणम्	२२
पञ्चकुण्डी निरूपणम्	२३
तुलादानादिषु चतुष्कुण्डी	,,
एककुण्डपक्षोऽशक्तस्य	,,
होमसंख्यानुसारेण कुण्डमानम्	२४
कुण्डायामविस्तारौ	२५
योनिदिगादिनिरूपणम्	,,
चतुरस्रकुण्डनिर्माणप्रकारः	,,
योनिकुण्डनिर्माणप्रकारः	२६
वृत्तार्धकुण्डनिर्माणप्र०	,,
त्र्यश्रिकुण्डनिर्माणप्र०	,,
वृत्तकुण्डनिर्माणप्र०	२७
षडश्रिकुण्डनिर्माणप्र०	,,
पद्मकुण्डनिर्माणप्र०	२८
अष्टाश्रिकुण्डनिर्माणप्र०	२९
खात-कण्ठ-मेखला-नाभि-योनिनिर्माणप्रकारः	३०
स्थण्डिलपक्षोऽशक्तस्य	३२
तुलादानोपयोगितुलादण्डतुलावलम्बनतोरणफलकादिनिर्माणप्रकारः	,,
सहोमतुलादानप्रयोगः	३७
होमरहिततुलादानप्रयोगः	८१
अतिदाननिर्देशः	८८
गोदानकालादिनिरूपणम्	,,
गोदेहस्थदेवताः	८९
गोदानविधिः	९०

विषयः	पृ०
अतिदानान्तर्गतबृहद्गोदान-प्रयोगः	९९
गवादिमूल्यनिरूपणम्	१०१
वाचनिकं गवादिमूल्यदानम्	१०७
संक्षिप्तगोदानप्रयोगः	,,
वृषदानविधिः	११०
वृषदानप्रयोगः	,,
महिषीदानविधिः	१११
महिषीदानप्रयोगः	११२
अतिदानान्तर्गतभूमिदानं	११३
त्रिविधं विद्यादानम्	११६
अध्यापनरूपविद्यादानं प्रथमम्	,,
वेदमूर्तिदानरूपं द्वितीयम्	११७
चतुर्वेदमूर्तिदानप्रयोगः	,,
पुस्तकदानात्मकं तृतीयम्	११६
पुस्तकदानप्रयोगः	१२०
सुवर्णदानादीनि दश महादानानि	१२१
सुवर्णदानप्रयोगः	,,
देयहिरण्यादिपरिमाणम्	१२२
भूम्यादिदशदानानि	,,
प्रसङ्गात्प्रायश्चित्तप्रयोगः	१२३
तिलदानप्रयोगः	१२८
आज्यदानप्रयोगः	१२६
वस्त्रदानप्रयोगः	,,
धान्यदानप्रयोगः	,,
गुडदानप्रयोगः	१३०
रजतदानप्रयोगः	,,
लवणदानप्रयोगः	१३१
पापधेनुदानप्रयोगः	,,
ऋणधेनुदानप्रयोगः	,,
मोक्षधेनुदानप्रयोगः	१३२
वैतरणीदानप्रयोगः	१३३
उत्क्रान्तिधेनुदानप्रयोगः	१३४
अश्वदानाख्यं महादानम्	,,
अश्वदानप्रयोगः	१३५
हस्तिदानाख्यं महादानम्	१३६
हस्तिदानप्रयोगः	१३७
दासीदानाख्यं महादानम्	१३८
दासीदानप्रयोगः	,,
रथदानाख्यं महादानम्	,,
रथदानप्रयोगः	१३६
गृहदानाख्यं महादानम्	,,
प्रसङ्गादेकाशीतिपदं वास्तुमण्डलस्वरूपम्	१४०
वास्तुदेवतापूजनादिविधिः	१४३
गृहनिर्माणोपयोगिभूपरीक्षा	१४४
भूपरिग्रहप्रयोगः	१४५
सूत्रपातप्रयोगः	१४७
भूमिखननप्रयोगः	१५१
शिलान्यासोपयोगिनिरू०	१५२
सवास्तुशान्तिशिलान्यास-प्रयोगः	१५५
गृहप्रवेशप्रयोगे विशेषः	१८१
शिलान्यासादिसामग्री	१८६
गृहदानविधिः	१८७
गृहदानप्रयोगः	१८९
धर्मशालादानविधिः	१६३
शय्यादानविधिः	१६४
शय्यादानप्रयोगः	१९५
महादानाख्यकन्यादानफलादिकम्	१९७
द्विजस्थापनम्	१६८
कपिलादानाख्यं महादानम्	१९९
नवग्रहमूर्तिदानानि	,,
नवग्रहप्रीत्यर्थं माणिक्यादिदानानि	२००
सुवर्णादिदानमन्त्राः	२०१

विषयः	पृ०
अक्षय्यतृतीयायां धर्मघटादिदानमन्त्राः	२०३
श्रावणशुक्लद्वादश्यां शाकदानमन्त्रः	२०४
भाद्रशुक्लद्वादश्यां दधिदानमन्त्रः	,,
तत्रैव दध्योदनादिदानमन्त्रः	,,
आश्विनशुक्ल१२दुग्धदा०मं०	,,
मकरकुम्भसंक्रमणे कृसरदानमन्त्रः	,,
कार्तिकशुक्लनवम्यां कूष्माण्डदानमन्त्रः	२०५
कार्तिक्यां दीपदानमन्त्राः	,,
दीपप्रतिग्रहमन्त्रः	,,
माघे तिलपात्रदानमन्त्रः	,,
मेषसंक्रमणे मेषदानमन्त्रः	,,
छागदानमन्त्रः	,,
अधिमासेऽपूपदानमन्त्राः	२०६
अथ शान्तयः	,,
तत्रादौ गोमुखप्रसवविधिः	,,
गोमुखप्रसवप्रयोगः	२०८
व्यतीपातादिसर्वसाधारणशान्तयः	२१३
मूलशान्तिविधिः	२१४
मूलशान्तिप्रयोगः	२२०
आश्लेषाशान्तिविधिः	२४७
आश्लेषाशान्तिप्रयोगः	२४६
ऊर्ध्वदन्तजननशान्तिप्र०	२६१
पित्राद्येकनक्षत्रजननशान्तिविधिः	
पित्राद्येकनक्षत्रजननशान्तिप्र०	२६५
त्रिकप्रसवशान्तिविधिः	
त्रिकप्रसवशान्तिप्रयोगः	२७१
यमलजननशान्तिवि०	२७७

विषयः	पृ०
यमलजननशान्तिप्र०	३२२
इयमेव शान्तिः भार्यादीनां विकारविशिष्टप्रसवे, उलूक-कङ्क-कपोत-गृध्र-श्येनानामन्यतमस्य गृहप्रवेशे, गृहे तृणादिगुच्छप्ररोहे, गृहे वल्मीकस्य मधुजालस्य वोद्भवे, उदकुम्भप्रज्वलने, आसनादिभङ्गे, शरीरे गृहगोधिकादिसर्पणे, छत्रध्वजविनाशे, काकसर्पमैथुनप्रेक्षणे चातिदिश्यते	२७९
गण्डान्तशान्तिः	२८०
नक्षत्रगण्डान्तशान्तिवि०	,,
तिथिलग्नगण्डान्तशा. वि.	,,
नक्षत्रगण्डान्तशान्तिप्र०	,,
उत्तरापुष्यचित्रापूर्वाषाढाशान्तिविधिः	२८१
कृष्णचतुर्दशीशान्तिवि०	२८२
अमावास्याजननशान्तिविधिः	२८४
कार्तिकदंष्ट्राशान्तिः	२८६
सर्पयुग्मदर्शनशान्तिः	२८७
सारमेयशान्तिः	२८८
काकविष्ठापतनशान्तिः	,,
श्वेतकाकदर्शनशान्तिः	२८६
पल्लीपतनसरटप्ररोहणशान्तिः	,,
अथ जलाशयोत्सर्गः	२९०
जलाशयप्रशंसादिकम्	,,
तडागादिप्रतिष्ठाविधिः	२६१
कूपवापीतडागानामुत्सर्गप्रयोगः	३४२
लघुजलाशयोत्सर्गप्रयोगः	३६७

श्रीगणेशाय नमः ।

संस्कारदीपकः

नाम

परिशिष्टदीपकः

(तृतीयो भागः)

सर्वस्फूर्तिविधातारं सर्वविघ्नविनाशनम् ।
सर्वाभीष्टप्रदातारं सद्गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥
पर्वतीयेन पन्तेन नित्यानन्देन धीमता ।
क्रियते बालबोधार्थं परिशिष्टप्रदीपकः ॥

कृतदारसंग्रहस्याग्न्यत्वे अग्निहोत्रादिधर्मेषु प्रशस्ताधिकाराभावात् दानधर्मस्य च—

तपो धर्मः कृतयुगे ज्ञानं त्रेतायुगे स्मृतम् ।
द्वापरे चाध्वराः प्रोक्ताः कलौ दानं दया दमः ॥

इत्यादिबृहस्पत्यादिवचनैः कलौ प्रशस्तत्वबोधनात् शतपथे च "तदेतत्त्रयं शिक्षेत दमं दानं दयामिति" इति दानादित्रयस्यावश्यकत्वश्रवणात् तदन्तर्गतदानधर्मस्य चेतिकर्तव्यताबाहुल्यात्स एव तावन्निरूप्यते ।

तत्र दानस्वरूपमाह—देवलः,

अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं व्याख्यानं तस्य कथ्यते ॥ इति ।

उदिते-शास्त्रनिरूपिते । प्रतिपादनं नाम स्वस्वामिभावापादनपर्यन्तस्त्यागः । न तु स्वत्वनिवृत्तिमात्रम् । तेन देशान्तरस्थदेवदत्ताद्युद्देशेन दत्ते धने स्वीकारं विनैव देवदत्तादेर्मरणे

तत्पुत्राणां दायत्वेन तस्मिन् स्वत्वं सिध्यति। अस्वीकाररूप-प्रतिबन्धे च न स्वत्वमुत्पद्यते। तत्र च तस्मिन् दातुः संवित्द्व्य-तिक्रमादाविव पुनः स्वत्वमुत्पद्यते। तस्माद्दानमेव परस्वत्वापाद-कम्। अत एव च उपेक्षायां नातिव्याप्तिरिति दिक्।

तच्च दानं हेतुतो द्विविधम्। श्रद्धा-भक्तिभेदात्। तत्र श्रद्धा 'अस्ति दानं परलोकसाधनम्' इति विश्वासः। स्नेहपूर्वकम-भिध्यानं भक्तिः।

तस्य च धर्म-फल-काम-व्रीडा-हर्ष-भयानि षडधिष्ठानानि। तत्र प्रयोजनमनपेक्ष्य पात्रेभ्यो दानं धर्मदानम्। प्रयोजनापेक्षया दानं फलदानम्। स्त्री-पान-मृगया-द्यूत-प्रसङ्गाद् अनर्हेभ्यो रागेण दानं कामदानम्। संसदि व्रीडया दानं व्रीडादानम्। प्रियस्य दर्शनेन श्रवणेन वा सहर्षं दानं हर्षदानम्। निन्दा-ऽनर्थ-हिंसानां प्रतीकाराय तापकर्तृभ्यो भयेन दानं भयदानम्।

दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा, धर्मार्जितं द्रव्यं, देशः, कालश्चेत्ये-तानि दानस्य षडङ्गानि। तत्र क्षयादिपापरोगरहितो धर्मशीलो दानोत्साही दुर्व्यसनरहितः बाह्याभ्यन्तरशौचयुक्तः अनिन्द्य-कर्मणा जीवन् दाता श्रेष्ठ उदाहृतः। प्रतिग्रहीता च विद्यया कुलेन आचारेण च विशुद्धैर्युक्तः कृशजीविकः कृपावानविकले-न्द्रियो योनिदोषरहितः श्रेष्ठः।

श्रद्धा हेतुत्वेनोक्ता पूर्वं वर्णिता। अत्राङ्गत्वेनोक्ता विव्रियते—

अर्थिनां दर्शने प्रीतिः सौमुख्यं च, तेषां सत्कारोऽनसूया च श्रद्धा। परान् अपीड्य प्रयत्नेनार्जितं द्रव्यं देयम्। यस्मिन् देशे यस्मिन् काले च यद् दुर्लभं तस्य दानाय तौ देशकालौ प्रशस्तौ। अन्ये च प्रयागादयो देशाः, संक्रान्त्यादयः कालाश्च प्रशस्ताः।

नास्तिक-स्तेन-हिंस्र-जार-पतित-पिशुन-भ्रूणहन्तृभ्यो दत्तं विपरीतफलम्। दातारमधः पातयेदिति यावत्। श्रद्धाहीन-दानं महदपि अल्पफलम्। परपीडाकरं दानमल्पफलम्। चित्त-

कालुष्येण दानमप्रशस्तम् । पूर्वोक्तदात्राद्यङ्गवैपुल्ययुक्तं दानं प्रशस्तम् । दयायुक्तं दानमक्षयफलम् । प्रपा-ऽऽराम-तडागा-दिकरणं ध्रुवदानम् । दिने दिने यद्दानं तन्नित्यम् । पुत्रादिफला-प्त्यै दानं काम्यम् । संक्रान्तिग्रहणादिनिमित्ते दानं नैमित्तिकम् । नैमित्तिके च गो-भू-सुवर्णादिदानमुत्तमम् । अशन-गृह-खट्वा-ऽऽसनादिदानं मध्यमम् । उपानदादिदानं कनिष्ठम् । दानं यज-नमध्ययनं चेत्येतत्त्रितयमपि स्वयं कीर्तनात्, प्रशंसया, अनुतापेन च नश्यति । तस्माद् दानादि कृत्वा एतत्त्रयं न सेव्यम् । अन्ये च विशेषा हेमाद्र्यादितो ज्ञेयाः ।

सन्निकृष्टं वेदशास्त्रादि अधीयानं ब्राह्मणं भोजने दाने च नातिक्रामेत् । मूर्खानतिक्रम्य विद्वद्भ्यो दाने तु नातिक्रमदोषः । दौहित्र-जामातृ- भागिनेयान् संबन्धिनश्च मूर्खानपि नातिक्रामेत् । पुरोहितोऽप्यात्मनो गुणविशेषं विनाऽपि पात्रमेव । अन्नदाने च पात्रपरीक्षा नास्ति । दानं च कुटुम्बाविरोधेनैव कर्तव्यम् । महात्मने ब्राह्मणाय तु कदाचित् कुटुम्बं पीडयित्वाऽपि देयम् । एवं भिक्षवेऽन्नमपि । वाचा 'दास्यामि' इति प्रतिज्ञातमवश्यं दद्यात् । दत्तं च न हरेत् । प्रतिश्रुत्यापि अधार्मिकत्वेन ज्ञाताय न दद्या-त् । गौर्गृहं शय्या कन्या दासी चेत्येतेषामेकमेकस्यैव दातव्यम् । यतये सुवर्णं रजतं ताम्रं वा न देयम् । भिक्षातिरिक्तं वर्तनमपि तस्मै न देयम् । पक्वान्नं भिक्षात्वेन गृहस्थाय न देयम् । वानप्र-स्थाय गोरसं न दद्यात् । शूद्राय होमशेषं न दद्यात् । शूद्रात् क्षीरं तिलान् मधु च न प्रतिगृह्णीयात् , किं तु द्रव्यं दत्त्वा क्री-णीत । प्रणामं विना स्वस्ति इति तस्मै न ब्रूयात् । कृसरा-दिकं च तस्मै न दद्यात् ।

अथ दानविधिः ॥

हारीतः-तस्मान्मन्त्रवदद्भिरवोक्ष्य दद्यादालभ्य चेति । अ-वोक्ष्य-प्रोक्षणं कृत्वा । आलभ्य-सोदकेन पाणिना स्पृष्ट्वा ।

सूर्यारुणसंवादे (७६ अध्याये) श्रीसूर्य उवाच ।

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा कर्ता शुचिरलङ्कृतः ।
ब्राह्मणान् देयवस्तूनि गन्धाद्यैरर्चयेत् सुत ॥
दानं ददेऽहममुकं दद्याद्विप्रकरे जलम् ।
ददस्वेति द्विजेनोक्तमिति दानविधिः स्मृतः ॥
ॐतत्सत्पूर्वमुच्चार्य गृहीत्वा तु करे जलम् ।
सतिलकुशहस्तस्तु कालज्ञानं समुच्चरेत् ॥
प्राङ्मुखश्चोदङ्मुखो वा पैत्रे याम्यमुखस्तथा ।
वामेन पाणिना स्पृष्ट्वा स्मरेच्चद्वस्तुदैवतम् ॥
विप्रायामुकगोत्रायामुककामो ह्यहं ददे ।
न ममेत्युत्सृजेदेवं द्विजहस्ते जलं खग ॥
स्वस्तीत्युक्तं च विप्रेण दानमक्षयतां नयेत् ।
तद्दानमिति संप्रोक्तमन्यस्त्याग इति स्मृतम् ॥
कन्यादानं त्रिपुरुषगोत्रोच्चारणपूर्वकम् ।
गो–कन्या–प्रतिमा–शय्या एकैकस्य प्रदापयेत् ॥
विभज्य विधिना दाता न तत्फलमवाप्नुयात् ।
प्रतिष्ठा सर्वदानानां स्वर्णमक्षयकारकम् ॥
दानमक्षयतां याति सम्प्रदाने तु यत् कृतम् ।
अभावे ब्राह्मणादानां दानमल्पफलं भवेत् ॥
तीर्थादौ त्यागविधिना सम्प्रदानसमं फलम् ।
तावद्धेनुषु धेनुत्वं देवत्वं प्रतिमासु च ॥
यावद्विप्रो न गृह्णीयात् स्वस्तीत्युक्ते तु तद् वसु । इति ।
वाराहपुराणे–तोयं दद्याद्द्विजकरे दाने विधिरयं स्मृतः ।
सकुशोदकहस्तश्च ददामीति तथा वदेत् ॥
गौतमः–अन्तर्जानुकरं कृत्वा सकुशं तु तिलोदकम् ।
फलान्यपि च संधाय प्रदद्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥
पात्रासन्निधाने नारदीयपुराणे—
मनसा पात्रमुद्दिश्य जलं भूमौ विनिक्षिपेत् ।
विद्यते सागरस्यान्तो दानस्यान्तो न विद्यते ॥

आपस्तम्बः, "त्रिमात्रस्तु प्रयोक्तव्यः कर्मारम्भेषु सर्वशः ।
तिस्रः सार्धास्तु कर्तव्या मात्रास्तत्त्वार्थचिन्तकैः ॥
वृद्धवसिष्ठः, नामगोत्रे समुच्चार्य संप्रदानस्य चात्मनः ।
संप्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने तु पुंस्त्रयम् ॥
स्मृत्यन्तरे, संकीर्त्य देशकालादि तुभ्यं संप्रददे इति ।
न ममेति स्वस्वत्वस्य निवृत्तिमपि कीर्तयेत् ॥
ब्रह्माण्डपुराणे-शुचिः पवित्रपाणिश्च गृह्णीयादुत्तरामुखः ।
अभीष्टदेवतां ध्यायन् मनसा विजितेन्द्रियः ॥
कृतोत्तरीयको नित्यमन्तर्जानुकरस्तथा ।
दातुरिष्टमभिध्यायन् गृह्णीयात्प्रयतः शुचिः ॥

प्रचेताः, "दक्षिणहस्तमध्ये ब्राह्मणस्याग्नेयं तीर्थम् आग्नेयेन प्रतिगृह्णीयात्" इति ।

विष्णुधर्मोत्तरे, प्रतिग्रहीता सावित्रं सर्वत्रैवानुकीर्तयेत् ।
ततस्तु कीर्त्तयेत् सार्धं द्रव्येण द्रव्यदेवताम् ॥
समापयेत् ततः पश्चात् कामस्तुत्या प्रतिग्रहम् ।
तदन्ते कीर्तयेत् स्वस्ति प्रतिग्रहविधिस्त्वयम् ॥

सावित्रं सवितृदैवतं यजुः "देवस्यत्वा" इत्यादि "प्रतिगृह्णामि" इत्यन्तं वा. स. सं. द्वितीयाध्याये पठितम् । (क० ११) कामस्तुतिः "कोऽदात्" इत्यादिका तत्रैव सप्तमाध्याये (क० ४८) ।

आदित्यपुराणे-ॐकारमुच्चरन् प्राज्ञो द्रविणं सकुशोदकम् ।
गृह्णीयाद्दक्षिणे हस्ते तदन्ते स्वस्ति कीर्तयेत् ॥
प्रतिग्रहं पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् ।
मन्द्रं पठेत्तु राजन्ये उपांशु च तथा विशि ॥
मनसा तु तथा शूद्रे स्वस्तिवाचनमेव च ।
सोंकारं ब्राह्मणे कुर्यात् निरोंकारं महीपतौ ॥
उपांशु च तथा वैश्ये मनसा स्वस्ति शूद्रजे ।
प्रतिग्रहं-प्रतिग्रहमन्त्रम् । मन्द्रं-मध्यमस्वरम् । ब्राह्मणे दात-

रि सोंकारं स्वस्तिवाचनं कुर्यात् इत्यर्थः। एवं महीपतौ इत्यादावपि योज्यम्।

अथ द्रव्यदेवताः।

विष्णुधर्मोत्तरे हेमाद्रौ—

अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै विष्णुदेवता।
कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्तिताः॥
(अ० पु०, प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदैवतः।)
तथा चैकशफं सर्वं कथितं यमदैवतम्।
महिषश्च तथा याम्य उष्ट्रो व नैर्ऋतो भवेत्॥
रौद्री धेनुर्विनिर्दिष्टा छागमाग्नेयमादिशेत्।
मेषं तु वारुणं विद्याद् वराहं वैष्णवं तथा॥
आरण्याः पशवः सर्वे कथिता वायुदेवताः।
जलाशयानि सर्वाणि वारिधानीं कमण्डलुम्॥
कुम्भं च करकं चैव वारुणानि निबोधत।
समुद्रजानि रत्नानि वारुणानि द्विजोत्तमाः॥
आग्नेयं कनकं प्रोक्तं सर्वलोहानि चाप्यथ।
प्राजापत्यानि सस्यानि पक्वान्नमपि च द्विजाः॥
ज्ञेयाश्च सर्वगन्धास्तु गान्धर्वा वै विचक्षणैः।
बार्हस्पत्यं स्मृतं वासः सौम्या ज्ञेया रसास्तथा॥
पक्षिणस्तु तथा सर्वे वायव्याः परिकीर्तिताः।
विद्या ब्राह्मी विनिर्दिष्टा विद्योपकरणानि च॥
सारस्वतानि ज्ञेयानि पुस्तकादीनि पण्डितैः।
सर्वेषां शिल्पभाण्डानां विश्वकर्मा तु दैवतः॥
द्रुमाणामथ पुष्पाणां शाकैर्हरितकैः सह।
फलानामपि सर्वेषां ज्ञेयो देवो वनस्पतिः॥
मत्स्यमांसे विनिर्दिष्टे प्राजापत्ये गजस्तथा।
छत्रं कृष्णाजिनं शय्यां रथमासनमेव च॥
उपानहौ तथा यानं यच्चान्यत्प्राणिवर्जितम्।

सर्वमाङ्गिरसत्वेन प्रतिगृह्णीत मानवः ॥
शूरोपयोगि यत्सर्वं शस्त्रवर्मध्वजादिकम् ।
रणोपकरणं सर्वं विज्ञेयं सर्व(विश्व)दैवतम् ॥
गृहं च शक्रदैवत्यं (सर्वदैवत्यं), यदनुक्तं द्विजोत्तमाः ।
तज्ज्ञेयं विष्णुदैवत्यं, सर्वं वा द्विजसत्तमाः ॥
द्रव्याणामथ सर्वेषां देवसंश्रयणान्नरः ।
वाचयेज्जलमादाय करेणाथ प्रतिग्रहम् ॥
दातुर्मन्त्रप्रयोगान्ते ह्यमुकस्मै सुराय वै ।
इदमों प्रतिगृह्णामि तदन्ते स्वस्ति कीर्तयेत् ॥

दातुर्मन्त्रप्रयोगस्यान्ते दातृसमर्पितं सकुशोदकं दक्षिणहस्तेनादाय 'अमुकदेवतायै' 'अमुकदेवताकम्' इति वा सर्वेषां द्रव्याणां प्रतिग्रहं देवाश्रयत्वेनोल्लिख्य द्रव्यं च विशेषतो निर्दिश्य 'ॐप्रतिगृह्णामि' इत्येवं वाचयेत् उच्चरेत् । तदन्ते च स्वस्तीति कीर्तयेत् । 'प्रतिगृह्णामि' इत्यतः पूर्वं पूर्वोक्तस्य "देवस्यत्वा" इति यजुषः पाठोऽपि कर्तव्यः ।

तत्रैव, द्रव्याण्यन्यान्यथादाय स्पृष्ट्वा तान् ब्राह्मणः पठेत् ।
कन्यादाने तु न पठेत् द्रव्याणां तु पृथक्पृथक् ॥
प्रतिग्रहे द्विजश्रेष्ठास्तत्रैवान्तर्भवन्ति ते । इति ।
एवं शय्यादानादावपि बोध्यम् ।

तथा तत्रैव—भूमेः प्रतिग्रहं कुर्याद् भूमिं कुर्वन् प्रदक्षिणम् ।
करे गृहीत्वा कन्यां तु दासदास्यौ द्विजोत्तमः ॥
करं तु हृदि विन्यस्य धर्म्यो ज्ञेयः प्रतिग्रहः ।
आरुह्य च गजस्योक्तः कर्णं चाश्वस्य कीर्तितः ॥
तथाचैकशफानां तु सर्वेषां, वा विशेषतः ।
प्रतिगृह्णीत ताञ्छृङ्गे, पुच्छे कृष्णाजिनं तथा ॥

शृङ्गिणामेकशफानां प्रतिग्रहः शृङ्गं स्पृष्ट्वा कार्यः, अन्येषामेकशफानां तु कर्णं स्पृष्ट्वेति व्यवस्था ।

कर्णेऽजः पशवः सर्वे ग्राम्याः पुच्छे विचक्षणैः ।

गृह्णीयान्महिषं शृङ्गे खरं वै पृष्ठदेशतः ॥
प्रतिग्रहमथोष्ट्रस्य यानानां चाधिरोहणात् ।
बीजानां मुष्टिमादाय रत्नान्यादाय सर्वतः ॥
वस्त्रं दशान्तादादद्यात्परिधायाथवा पुनः ।
आरुह्योपानहौ मञ्चमारुह्यैव च पादुके ॥
वर्मध्वजौ तु संस्पृश्य प्रविश्य च तथा गृहम् ।
अवतीर्य च सर्वाणि जलस्थानानि वै द्विजाः ॥
ईषायां तु रथो ग्राह्यः छत्रं दण्डे तथैव च ।
द्रुमांश्च प्रतिगृह्णीयान्मूले न्यस्तकरो द्विजः ॥
आयुधानि समादाय तथाऽऽमुच्य विभूषणम् । इति ।
ईषायाम्–रथाग्रदण्डे । आमुच्य–धारयित्वा ॥

हेमाद्रौ परिशिष्टे—
प्रतिगृह्णीत गां पुच्छे कर्णे वा हस्तिनं करे ।
मूर्ध्नि दासीमजां चैव पृष्टेऽश्वतरगर्दभौ ॥
पुत्रमुत्सङ्गमारोप्य प्रतिगृह्णीत दक्षकम् ।
रथं रथमुखे स्पृष्ट्वा प्रतिगृह्णीत कूबरे ॥ इति ॥

अथ दातृ-प्रतिग्रहीतृधर्माः ।

प्रजापतिः कर्मगुप्तेः पवित्रमसृजत् पुरा ।
रक्षोघ्नमेतत्परमं मुनिभिः कल्पितं सवे ॥
तस्मात् तत् करयोर्धार्यं ददता प्रतिगृह्णता ।
स्नान-होम—जपादीनि कुर्वता च विशेषतः ॥
संत्यज्य वैष्णवं मार्गं ब्रह्ममार्गविनिर्गतम् ।
सकृत्प्रदक्षिणीकृत्य पवित्रमभिधीयते ॥
ब्रह्ममार्गः कर्तुः संमुखो भागः । वैष्णवश्च तत्पृष्ठभागः ।
वायुपुराणे–दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च ॥
साङ्गुष्ठेन सदा कार्यमसुरेभ्योऽन्यथा भवेत् ।
साङ्गुष्ठेन–अङ्गुलीसंगताङ्गुष्ठेन ॥
एतान्येव च कार्याणि दानादीनि विशेषतः ।

अन्तर्जानु विधेयानि तद्वदाचमनं नृप ॥

ब्रह्माण्डपुराणे-नाधिकारी मुक्तकच्छो मुक्तचूडस्तथैव च।
दाने प्रतिग्रहे यज्ञे ब्रह्मयज्ञादिकर्मसु ॥
देवाः समेत्य वस्त्रं हि त्वचं पुंसामकल्पयन्।
ततश्च वाससा हीनमसंपूर्णं प्रचक्षते ॥

मनुः-योऽर्चितः प्रतिगृह्णाति योऽर्चयित्वा प्रयच्छति।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं-विपरीते विपर्ययः ॥

शातातपः-प्रश्नपूर्वं तु यो दद्याद्ब्राह्मणाय प्रतिग्रहम्।
स पूर्वं नरकं याति ब्राह्मणस्तदनन्तरम् ॥

प्रश्नपूर्वमित्यस्य 'एतमध्यायं यदि त्वमस्खलितं पठसि तदा तुभ्यमेतावद्ददामि' इत्युक्त्वा तथा पठितवते यद्दद्यादित्यर्थः।

नन्दिपुराणे-किं त्वं वेत्सीति वक्तव्यो न दात्रा ब्राह्मणः क्वचित्।
सोऽपि पृष्टः स्वयं तेन दानार्थं तं न कीर्तयेत् ॥

'यदि त्वमेतत्पठसि तदा तुभ्यमेतद्ददामि' इति साक्षात्परीक्षणमत्र निषिध्यते। पात्रत्वदोधार्थमुपायान्तरेण परीक्षणं त्वनुमतमेव।

तदुक्तं यमेन-शीलं संवसनाज्ज्ञेयं शौचं संव्यवहारतः।
प्रज्ञा संकथनाज्ज्ञेया त्रिभिः पात्रं परीक्ष्यते ॥

संकथनं-शुद्धभावेन विद्याकथा।

छन्दोगपरिशिष्टे-
अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कर्मकारिणाम्।
अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चायथाक्रिया ॥ इति।

अथ दक्षिणादिनिर्णयः।

भविष्यपुराणे-अदत्तदक्षिणं दानं व्रतं चैव नृपोत्तम।
विफलं तद्विजानीयाद्भस्मनीव हुतं हविः ॥

मैत्रायणीयपरिशिष्टे-
दक्षिणाऽलाभे मूलानां भक्ष्याणां ददाति नत्वेवं यजेत।

शतपथे च-"तस्मान्नादक्षिणं हविः स्यादिति" ॥

भविष्योत्तरे-काम्यं यद्दीयते किंचित् तत्समग्रं सुखावहम्।

असमग्रं तु दोषाय भवतीह परत्र च ॥
देयं दानं महाराज समग्रं फलकाङ्क्षया।
अन्यथा दीयमानं तदपकाराय केवलम् ॥
प्रत्यक्षतश्चार्थहानिर्नच तत् फलदं भवेत् ।
भगवान् व्यासः—सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।
सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणेष्यते ॥

एतच्च विशेषविहितगोवस्त्रादिदक्षिणाकदानवर्जं सामान्यविहितदक्षिणेषु दानेषु व्यवतिष्ठते । तत्रापि "परा दक्षिणा"इत्युपादानात् सुवर्णदक्षिणायाः श्रेष्ठत्वं न त्वन्यदक्षिणायाः सर्वथा निराकरणम् । दक्षिणाया ऋत्विगानत्यर्थत्वेन तस्याश्च पुरुषाहारौपयिकतण्डुलादिनाऽपि संभवात् ।

स्कन्दपुराणे—देयद्रव्यतृतीयांशं दक्षिणां परिकल्पयेत् ।
अनुक्तदक्षिणे दाने दशांशं वाऽपि शक्तितः ॥
तुलापुरुषादिदानान्यधिकृत्य—
लिङ्गपुराणे—दक्षिणां च शतं चार्धं तदर्धं वाऽपि दापयेत्।
ऋत्विजां चैव सर्वेषां दश निष्कान् प्रदापयेत् ॥
ब्रह्मवैवर्ते—दानकाले तु देवत्वं प्रतिमानां प्रकीर्तितम् ।
धेनूनामपि धेनुत्वं श्रुत्युक्तं दानयोगतः ॥
दातुर्वै दानकाले तु धेनवः परिकीर्तिताः ।
विप्रस्य व्ययकाले तु द्रव्यं तदिति निश्चयः ॥
दानसंबन्धि विप्रेण द्रव्यमागच्छता गृहम् ।
तत्सर्वं विदुषा तेन विक्रेयं स्वेच्छया विभो ॥
कुटुम्बभरणं कार्यं धर्मकार्यं च सर्वशः ।
अन्यथा नरकं यातीत्येवमाह पितामहः ॥

अथ द्रव्यमानम् ।

मनुः—लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ।
ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥
जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।

प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥
त्रसरेणवष्टकं ज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ।
ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥
सर्षपाः षड् यवो मध्यस्त्रियवं त्वेव कृष्णलः ।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥
ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः ।
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥
धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ।
चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥
नारदः, कार्षापणो दक्षिणस्यां दिशि रौप्यः प्रवर्तते ।
पणैर्निबद्धः पूर्वस्यां षोडशैव पणाः स तु ॥ पणास्तु—
मदनरत्ने, षोडशपणाः पुराणः, पणो भवेत्काकिणीचतुष्केण ।
पञ्चाहतैश्चतुर्भिर्वराटकैः काकिणी चैका ॥ इति ।

अथ धान्यमानम् ।

भविष्यपुराणे—पलद्वयं तु प्रसृतं द्विगुणं कुडवं मतम् ।
चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः ॥
आढकैस्तैश्चतुर्भिस्तु द्रोणस्तु कथितो बुधैः ।
कुम्भो द्रोणद्वयं शूर्पं खारी द्रोणास्तु षोडश ॥
खारी द्रोणचतुष्टयमित्यन्यत्र ।

अथ भूमानम् । आदित्यपुराणे,

जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत्प्रमाणानां परमाणुं प्रचक्षते ॥
त्रसरेणुस्तु विज्ञेयो ह्यष्टौ ये परमाणवः ।
त्रसरेणवस्तु ते ह्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृतः ॥
रथरेणवस्तु ते ह्यष्टौ वालाग्रं तत्स्मृतं बुधैः ।
वालाग्राण्यष्ट लिक्षा तु यूका लिक्षाऽष्टकं बुधैः ॥

अष्टौ यूका यवं प्राहुरङ्गुलं तु यवाष्टकम् ।
द्वादशाङ्गुलमात्रा वै वितस्तिस्तु प्रकीर्तिता ॥
अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश उच्यते ।
तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ॥
कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशाङ्गुलिका स्मृता ।
रत्निस्त्वङ्गुलपर्वाणि विज्ञेयस्त्वेकविंशतिः ॥
चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु ।
किष्कुः स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ॥
षण्णवत्यङ्गुलैश्चैव धनुर्दण्डः प्रकीर्तितः ।
धनुर्दण्डयुगं नालिः, ज्ञेया ह्येते यवाङ्गुलैः ॥
धनुषां त्रिशतीं नल्वमाहुः संख्याविदो जनाः ।
धनुःसहस्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते ॥
अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनं तु प्रकीर्तितम् । इति ।
मार्कण्डेयपुराणे—चतुर्हस्तो धनुर्दण्डो नालिका तद्युगेन तु ।
क्रोशो धनुःसहस्रे द्वे गव्यूतिश्च चतुर्गुणा ॥
द्विगुणं योजनं तस्मात् प्रोक्तं संख्यानकोविदैः ।
बृहस्पतिः—दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्तनम् ।
दश तान्येव गोचर्म ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ॥ इति ।
श्राद्धरत्नावल्यां—सप्तहस्तेन दण्डेन विस्तारायामतः समा ।
दण्डविंशतिका या तु कुडवेत्यभिधीयते ॥
लोके कुडवस्य (बीघा) इति प्रसिद्धिः ।
पञ्चारिसप्ताष्टनवदशान्यतमहस्ततः ।
प्रमितेन तु दण्डेन दीर्घविस्तारयोः समा ॥
एकदण्डमिता भूमिर्धूलीमात्रा (धूर) प्रकीर्तिता ।
तेन दण्डेन विस्तारे चैकदण्डमिता तु या ॥
दण्डविंशतिदीर्घा च सा काष्ठेति (कट्ठा) प्रमाणतः ।
दीर्घं चैव तु विस्तारे दण्डविंशतिमानतः ॥
प्रमिता या भवेत्तां तु दिशेत् कुडवनामतः ॥ इति ।

अत्र दण्डस्य लोके (लग्गा) इति प्रसिद्धस्य पञ्च-षट्-सप्त-अष्ट-नव-दशान्यतमहस्तमानत्वेन कुडवस्य (बीघा) इति प्रसिद्धस्यापि नानामानानि बोध्यानि। तानि च देशभेदेन व्यवस्थितानीति न विरोधः।

वसिष्ठः—दशहस्तेन वंशेन दश वंशान् समन्ततः।
पञ्च चाभ्यधिकान् दद्यादेतद्गोचर्म चोच्यते॥
सिद्धान्तशेखरे-जालान्तरगते रश्मौ दृश्यादृश्यं तु यद्रजः।
परमाणुः स उद्दिष्टो वालाग्रं तैस्तथाऽष्टभिः॥
वालाग्रैरष्टभिर्लिक्षा यूका लिक्षाऽष्टकेन च।
यूकाष्टकं यवं प्राहुर्यवानामुदरैस्तथा॥
अष्टभिश्चाङ्गुलं तिर्यग्यवानामुत्तमं मतम्।
सप्तभिर्मध्यमं प्रोक्तं षड्भिः स्यादधमाङ्गुलम्॥
मानाङ्गुलमिति ख्यातं मात्राङ्गुलमथोच्यते।
कर्तुः स्यान्मध्यमाङ्गुल्या मध्यमं पर्व दैर्घ्यतः॥
मात्राङ्गुलं च तच्छ्रेष्ठं पादोनं मध्यमं मतम्।
पर्वार्धमधमं ज्ञेयं लक्ष्माङ्गुलमथोच्यते॥
गृहीतं प्रतिमायामं तत् तालाङ्गुलसंख्यया।
विभज्य तेषु भागैकं तदाहुर्लक्ष्ममङ्गुलम्॥
प्रासादादिषु कुण्डेषु मानाङ्गुलमुदाहृतम्।
मात्राङ्गुलं तु कुण्डादौ गृहोपकरणादिषु॥
लक्ष्माङ्गुलेन कुर्वीत प्रतिमावयवं बुधः।
एवमङ्गुलमाख्यातं द्व्यङ्गुलं गोलकं मतम्॥
त्र्यङ्गुलं तु कला ज्ञेया भागः स्याच्चतुरङ्गुलः।
यावकं चाष्टभिर्मात्रैर्मुखं द्वादशभिर्मतम्॥
तालं च दशभिर्ज्ञेयं हस्तलक्षणमुच्यते।
चतुर्विंशतिमात्रो यः किष्कुर्हस्त इति स्मृतः॥
पञ्चविंशतिमात्रोच्चः प्राजापत्यः करो मतः।
षड्विंशत्यङ्गुलो हस्तो धनुर्मुष्टिरिति स्मृतः॥

सप्तविंशतिमात्रोच्चो धनुर्ग्रह इतीरितः ।
किष्कुहस्तेन कुर्वीत शयनासनमानकम् ॥
गृहप्रासादलिङ्गानि प्राजापत्येन कारयेत् ।
ग्रामखेटपुरादीनि धनुर्मुष्टिकरेण च ॥
धनुर्ग्रहेण कुर्वीत क्षेत्रमानं च योजनम् । इति ।
विष्णुधर्मोत्तरे-यदुत्पन्नमथाश्नाति नरः संवत्सरं द्विजः ।
एकं गोचर्ममात्रं तु भुवः प्रोक्तं विचक्षणैः ॥
मत्स्यपुराणे-दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डा निवर्तनम् ।
त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः ॥
वृद्धवसिष्ठः-गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठेदयन्त्रितः ।
एतद्गोचर्ममात्रं तु प्राहुर्वेदविदो जनाः ॥ इति ।

दानफलानि विस्तरेण हेमाद्र्यादितो ज्ञेयानि । संक्षेपेण क्वचित्प्रदर्शयिष्यन्ते ।

अथ तुलादानोपयोगिनिरूपणम् ।

तत्र-तुलापुरुषदानम्, हिरण्यगर्भदानम्, ब्रह्माण्डदानम्, कल्पपादपदानम्, गोसहस्रदानम्, हिरण्यकामधेनुदानम्, हिरण्याश्वदानम्, हिरण्याश्वरथदानम्, हेमहस्तिरथदानम्, पञ्चलाङ्गलदानम्, धरादानम्, विश्वचक्रदानम्, कल्पलतादानम्, सप्तसागरदानम्, रत्नधेनुदानम्, महाभूतघटदानं चेति षोडश महादानानि । तत्रापि तुलापुरुषदानं सर्वदानप्रकृतिभूतम् ।

तुलापुरुषयागोऽयं तेषामाद्योऽभिधीयते ।

इति मात्स्योक्तेः । आद्यः प्रकृतिभूत इति हेमाद्रिः । समग्राङ्गोपदेशस्य दानानामत्रैव कृतत्वात् । एषां काला अयन-विषव-षडशीतिमुख-विष्णुपदा-व्यतीपात-वैधृति-ग्रहण-युगादि-मन्वाद्या, देशाः प्रयागादयश्च तत्रैवोक्ताः । तुलादानस्य सर्वदानप्रकृतित्वेऽपि तदनुष्ठानं विना अन्यत्राधिकारो भवत्येव ।

एषामन्यतमं कुर्याद्वासुदेवप्रसादतः ।

इति मात्स्यवचनात् । एतेन मात्स्ये ततःशब्द-तदनन्तरश-

ऽदाभ्यां षोडशानां क्रमापादनमप्यशस्तम् । फलभेदेन प्रयोगविधिभेदेन च काम्येष्टिवत् क्रमाकाङ्क्षाऽभावाच्च ।

नित्यं नैमित्तिकं हित्वा सर्वमन्यत्समण्डपम् ।
इति कामिकोक्तेः,
विंशद्धस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव च ।
यद्वाऽष्टादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः ॥
इति लैङ्गोक्तेः,
षोडशारत्निमात्रं च दश द्वादश वा करान् ।
मण्डपं कारयेद्विद्वांश्चतुर्भद्राननं बुधः ॥

इति हेमाद्र्युक्तवचनाच्च मण्डपं तुलादानाद्यनुष्ठानाय कार्यम् । चतुर्भद्राननं—चत्वारि भद्रयुक्तानि आननानि द्वाराणि यस्य तत् ।

अत आदौ मण्डपनिर्माणप्रकारः कथ्यते ।

तस्य च प्राचीसाध्यत्वात्तस्याः साक्षात् साधनस्य च दुष्करत्वात् तत्साधनाय पूर्वमुदीचीसाधनप्रकारः कथ्यते । तथाहि—घटिकादिना मध्याह्नं ज्ञात्वा तस्मिन् काले सप्ताङ्गुलं शङ्कुं सूर्याभिमुखं संस्थाप्य छायां पश्येत् । अथ तस्याश्छायाया अग्रं यस्मिन्प्रदेशे लगति तामुदीचीं जानीयात् । तस्मात् प्रदेशात् शङ्कुमूलं यावत् सरलां रेखां कुर्यात् । तस्या रेखाया अग्रं दक्षिणां जानीयात् । दक्षिणोत्तरायतामेनां रेखां मण्डपप्रमाणानुसारेण वर्धयेत् । यथा दशहस्तमण्डपपक्षे दशहस्तां, द्वादशहस्तपक्षे द्वादशहस्तां कुर्यात् । एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम् । अथ तस्या रेखाया उदक्प्रान्ते एकं शङ्कुं दक्षिणप्रान्ते च अपरं निखन्य रेखाया द्विगुणं सूत्रं गृहीत्वा तस्य प्रान्तयोः पाशौ कृत्वा तन्मध्ये मस्यादिना एकं चिह्नं च कृत्वा एकं पाशमुत्तरशङ्कौ अपरं च दक्षिणशङ्कौ निवेश्य मध्यचिह्नं धृत्वा उदङ्मुखो दक्षिणतो वामतश्च क्रमेण कर्षेत् । तच्चिह्नं दक्षिणतो यत्र पतति तां प्राचीं जानीयात्, वामतो यत्र पतति तां पश्चिमाम् ।

इत्थमुदीचीसाधनपूर्वकं प्राच्यादिचतस्रो दिशः साधयित्वा मण्डपस्य चतुष्कोणत्वात्कोणान् साधयेत्। तद्यथा-साधितासु चतसृषु दिक्षु शङ्कून् निखन्य उभयतः पाशयुतं मध्येऽङ्कितं दक्षिणोत्तरायतरेखासंमितं सूत्रं गृहीत्वा तस्यैकं पाशं प्राचीशङ्कौ अपरं पाशं दक्षिणशङ्कौ निवेश्य मध्यचिह्नं धृत्वा कोणं प्रति आकर्षेत्, अथ यत्र चिह्नं पतति तदाग्नेयकोणम्। एवं दक्षिणशङ्कौ एकं पाशं पश्चिमशङ्कौ च अपरं निवेश्य मध्यचिह्नं धृत्वा कोणं प्रति सूत्रस्य आकर्षणे चिह्नपातस्थाने नैर्ऋतं कोणम्। एवं पश्चिमशङ्कौ एकम् उत्तरशङ्कौ अपरं निवेश्य मध्यचिह्नं धृत्वा कोणं प्रति सूत्राकर्षणे चिह्नपातस्थाने वायुकोणम्। एवमुत्तरशङ्कौ एकं पूर्वशङ्कौ अपरं निवेश्य मध्यचिह्नं धृत्वा कोणं प्रति सूत्राकर्षणे चिह्नपातस्थाने ऐशानं कोणम्।

इत्थं कोणानि साधयित्वा तेषु शङ्कून् निखन्य सर्वान् शङ्कून् सूत्रेण वेष्टयित्वा सूत्रानुसारेण रेखाः कृत्वा समचतुरश्रं क्षेत्रं मण्डपार्थं संपादयेत्।

इदं सर्वं भूमिं शोधयित्वा गणेशं संपूज्य ब्राह्मणैः पुण्याहं वाचयित्वा गन्धपुष्पादिभिः कूर्म-शेष-भूमीनां पूजनं कृत्वा कार्यम्। तत्प्रकारश्चाग्रे वक्ष्यते। मण्डपभूमिश्च तलाद् हस्तोच्छ्रिता वितस्त्युच्छ्रिता वा कार्या।

तलादर्धाङ्गुलोच्छ्रायं मण्डपस्थलमीरितम्।

इति सिद्धान्तशेखरोक्तेः।

उच्छ्रायो हस्तमानं स्यात् सुसमं च सुशोभनम्॥

इति कपिलपञ्चरात्रोक्तेश्च। मण्डपस्त्रिविधः-उत्तममध्यमाधमभेदात्। तत्र षोडशहस्त उत्तमः, द्वादशहस्तो मध्यमः, दशहस्तोऽधमः।

कनीयान् दशहस्तः स्यान्मध्यमो द्वादशोन्मितः।

तथा षोडशभिर्हस्तैर्मण्डपः स्यादिहोत्तमः॥

इति पञ्चरात्रोक्तेः। तुलादाने विंशतिहस्तोऽपि उत्तमत्वे-

नोक्तः । विस्तरस्तु कुण्डसिद्धिटीकादौ द्रष्टव्यः । मण्डपे आयामविस्तारौ समौ बोध्यौ । हस्तश्चात्र चतुर्विंशत्यङ्गुलो ज्ञेयः । अष्टौ यवा अङ्गुलम् । अष्टौ यूका यवः । अष्टौ लिक्षाः यूका । अष्टौ वालाग्राणि लिक्षा । अष्टौ रथरेणवो वालाग्रम् । अष्टौ त्रसरेणवो रथरेणुः । अष्टौ परमाणवस्त्रसरेणुः । एकविंशत्यङ्गुलो रत्निः । सार्धद्वाविंशत्यङ्गुलोऽरत्निः । अस्याः परिभाषाया अग्रे उपयोगो भविष्यति ।

मण्डपस्य चतसृषु दिक्षु मध्ये चत्वारि द्वाराणि कार्याणि । तानि च अधमे मण्डपे द्विहस्तानि, मध्यमे चतुरङ्गुलाधिकद्विहस्तानि, उत्तमे अष्टाङ्गुलाधिकद्विहस्तानि । किंच मण्डपस्य समानि नव कोष्ठानि कृत्वा मध्यकोष्ठे समा हस्तमात्रोच्छ्रिता वेदी कार्या ।

कनिष्ठे द्विकरं द्वारं, चतुरङ्गुलवृद्धितः ।
मध्यमोत्तमयोः, वेदी मण्डपस्य त्रिभागतः ॥

इति पञ्चरात्रोक्तेः ।

त्रिभागं मण्डपं कृत्वा मध्यभागे तु वेदिका ।
हस्तमात्रं तदुत्सेधं चतुरस्रं समन्ततः ॥

इति क्रियासारोक्तेश्च । तुलादाने पुनः मध्ये वेदी पञ्चहस्ता मध्यमाधममण्डपयोः, उत्तमे तु सप्तहस्ता भवेत् ।

पञ्चहस्ता भवेद्वेदी सप्तहस्ताऽथवा भवेत् ।

इति मात्स्योक्तेः । वैकल्पिकमपि सप्तहस्तत्वं लाघवात् उत्तममण्डपे व्यवस्थापनीयम् । अव्यवस्थितविकल्पस्याष्टदोषग्रस्तत्वात् ।

मण्डपस्येशानभागे ग्रहवेदिः आयामतो विस्तारतश्च हस्तमिता कार्या ।

"मण्डपस्येशानभागे ग्रहवेदिः करोन्मिता" इत्युक्तेः । सा च वितस्त्युच्छ्रिता द्विवप्रा च कार्या ।

गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम् ।
वप्रद्वययुतां वेदिं वितस्त्युच्छ्रायसंमिताम् ॥

इति मात्स्योक्तेः। मण्डपस्य पूर्वपश्चिमयोर्दक्षिणोत्तरयोश्च आयामविस्तारयोस्तृतीये तृतीये भागे अग्निकोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन यज्ञियवारणपलाशादिवृक्षोद्भवान् पञ्चहस्तप्रमाणान् समान् वलिकानिवेशनार्थचूडाकर्णान्यतरयुक्तान् दृढान् द्वादशस्तम्भान् धारयेत्। वेद्याः कोणेषु च अष्टहस्तप्रमाणान् चूडायुक्तांस्तादृशानेव चतुरः स्तम्भान् दध्यात्। एवं च षोडशस्तम्भा भवन्ति। स्तम्भपञ्चमांशं तु भूमौ निखनेत्। अत्र प्रमाणम्—

मण्डपार्धोच्छ्रितान्वेदसंख्यांश्चूडासमन्वितान्।
स्तम्भान् समांश्च संस्थाप्य स्तम्भद्वादशकं पुनः॥
बाह्येऽप्युक्तप्रकारेण तत्तृतीयावभागतः।

इति पञ्चरात्रवचनम्। मण्डपार्धोच्छ्रितानिति तु उत्तमषोडशहस्तमण्डपाभिप्रायेण।

"षोडशस्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तेषु मध्यमाः।
अष्टहस्तसमुच्छ्रायाः" इति शारदातिलकोक्तेः।

तस्मात् मध्यस्तम्भानामष्टहस्तत्वं व्यवस्थितम्। अग्निकोणोपक्रमश्च—

स्तम्भोच्छ्राये शिलान्यासे सूत्रयोजनकीलके।
खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरः॥

इति वचनात्। पञ्चमांशनिखननं तु वास्तुशास्त्रे—
"पञ्चमांशं खनेद् भूमौ सर्वसाधारणो विधिः" इति।

अथ प्रथमं वेदिकोणगेषु चतुर्षु स्तम्भेषु वलिकाख्यं 'दासा' इति प्रसिद्धं काष्ठचतुष्टयं चूडाप्रवेशनार्थान्तच्छिद्रयुक्तं स्तम्भचूडासु तिर्यग् निदध्यात्। तत्र पूर्वापरयोर्द्वयं दक्षिणोत्तरयोश्च द्वयं ज्ञेयम्। एवं द्वादशस्वपि बाह्यस्तम्भेषु द्वादश वलिकाः प्रान्तच्छिद्रवतीश्चूडासु तिर्यग् निधाय मध्यस्तम्भचूडानामेकैकस्याः पूर्वापरमेकं, दक्षिणोत्तरमेकं, कोणे चैकमित्येवं वलिकात्रयं बाह्यस्तम्भचूडासु तिर्यग निदध्यात्। एवमष्टाविंशतिः काष्ठानि

वलिकाख्यानि भवन्ति । दृढीकरणार्थं मध्ये मध्ये च सकर्णका-
नि काष्ठानि देयानि ।

ततो वेदिस्तम्भानामुपरि शिखराकारां रचनां कृत्वा म-
ण्डपं चत्वारि दिग्द्वाराणि वर्जयित्वा सरलवेणुभिः तृणपूलनिर्मि-
तैः कटैश्च (चटाई इतिप्र०) परितश्छादयित्वा स्तम्भान् वस्त्रादि-
भिर्भूषयेत् ।

नारिकेलदलैर्वाऽपि पल्लवैर्वाऽथ वेणुभिः ।
आच्छाद्या मण्डपाः सर्वे द्वारवर्जं तु सर्वतः ॥

इति क्रियासारोक्तेः ।

"दर्पणैश्चामरैर्घण्टैः स्तम्भान् वस्त्रैर्विभूषयेत्" ॥

इति पञ्चरात्रोक्तेश्च ।

मण्डपद्वाराद्बहिः हस्तमात्रे पूर्वादिदिक्षु क्रमेण वटोदुम्बरा-
श्वत्थप्लक्षकाष्ठैर्वा सर्वासु दिक्षु एषामन्यतमेन वा एषामभावे
शमीजम्बूखदिराणामन्यतमेन वा अधमादिमण्डपेषु क्रमेण पञ्च-
षट्-सप्तहस्तदीर्घाणि द्विहस्त-सपादद्विहस्त-सार्धद्विहस्तविस्तार-
युतानि तोरणानि कुर्यात् ॥

देवास्तोरणरूपेण संस्थिता यज्ञमण्डपे ।
विघ्नविध्वंसनार्थाय रक्षार्थमध्वरस्य च ॥
न्यसेत् न्यग्रोधमैन्द्र्यां तु याम्यां चौदुम्बरं तथा ।
वारुण्यां पिप्पलं चैव कौबेर्यां प्लक्षजं न्यसेत् ॥

इति महाकपिलपञ्चरात्रोक्तेः ।

"अलाभेष्वेकमेवैषां सर्वाशासु निवेशयेत् ।

इति पञ्चरात्रोक्तेः ।

पञ्चहस्तप्रमाणास्ते विस्तारेण द्विहस्तकाः ।
षडङ्गुलाभिवृद्धाश्च सप्तहस्तास्तथोत्तमे ॥

इति वास्तुशास्त्रोक्तेश्च । अधमोत्तमयोः पञ्चसप्तहस्तत्वे सति
मध्यमे षड्हस्तत्वमर्थात् सिध्यति । तोरणस्तम्भानां च पञ्चमांशं
भूमौ निखनेत् । "पञ्चमांशं न्यसेद् भूमौ" इति पूर्वोक्तवचनात् ।

स्तम्भायाममानार्धमानयुतानि तत्काष्ठफलकानि (पट्टिकाख्यानि) तिर्यञ्चि प्रान्तयोश्छिद्रेण युतानि तोरणस्तम्भे निदध्यात् । अर्थात् अधमादिषु मण्डपेषु सार्धहस्तद्वय-हस्तत्रय-सार्धहस्तत्रयायामानि फलकानि सिध्यन्ति ।

"तिर्यक्फलकमानं स्यात् स्तम्भानामर्धमानतः"

इति शारदातिलकोक्तेः ।

तोरणस्तम्भेषु निहितानां तिरश्चां चतुर्णां फलकानां मध्ये शिरोभागे शैवयागे त्रिशूलाकृतयः अधमादिमण्डपेषु नवकादशत्रयोदशाङ्गुलदीर्घाः क्रमेण सपादद्वय-पादोनत्रय-सपादत्रयाङ्गुलविस्तारयुतास्तोरणकाष्ठभवाः कीलाः अन्तःप्रवेशनार्थलघुकीलेन समन्विताः द्वि-त्रि-चतुरङ्गुलानि अन्तः प्रवेश्य उच्छ्रापणीयाः । नवाङ्गुलानां द्व्यङ्गुलम्, एकादशाङ्गुलानां त्र्यङ्गुलं, त्रयोदशाङ्गुलानां चतुरङ्गुलमन्तः प्रवेशः । त्रिशूले मध्यशृङ्गं सरलं, पार्श्वयोश्च किञ्चिद्वक्रं ज्ञेयम् ।

"शूलेन चिह्निताः कार्या द्वारशाखास्तु मस्तके ।
शूले नवाङ्गुलं दैर्घ्यं तुरीयांशेन विस्तृतिः ॥
ऋजु वै मध्यशृङ्गं स्यात् किंचिद्वक्रं तु पक्षयोः ।
प्रथमं तत्समाख्यातं द्व्यङ्गुलं रोपयेत्ततः ॥
शेषाणां द्व्यङ्गुला वृद्धिर्वेशश्चाङ्गुलवृद्धितः" ।

इति पिङ्गलमतोक्तेः । वेशः अन्तःप्रवेश इत्यर्थः ।

विष्णुयागे तु अधमादिषु मण्डपेषु दश-द्वादश-चतुर्दशाङ्गुलदीर्घाः सार्द्धद्वय-त्रि-सार्धत्रयाङ्गुलविस्तारयुताः अन्तःप्रवेशनार्थलघुकीलेन समन्वितास्तोरणकाष्ठभवाः पूर्वादिक्रमेण शङ्ख-चक्र-गदा-पद्माकाराः कीलास्तोरणफलकानां मध्ये पूर्ववत् द्व्यङ्गुलादि अन्तः प्रवेश्योच्छ्रापणीयाः—

मस्तके द्वादशांशेन शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम् ।
प्रागादिक्रमयोगेन न्यस्येत् तेषां स्वदारुजम् ॥

इति वास्तुशास्त्रोक्तेः । अधममण्डपतोरणशाखायाः प-

अहस्तत्वाद्विंशत्यधिकशताङ्गुलपरिमितित्वेन तद्द्वादशांशस्य दशाङ्गुलत्वाद्विष्णुयागे अधममण्डपे तोरणफलककीलानां दशाङ्गुलत्वं सिध्यति। एवं मध्यमोत्तममण्डपयोः कीलानां द्वादश-चतुर्दशाङ्गुलत्वमुन्नेयम्।

एवं सिद्धमण्डपस्य षोडशस्वपि स्तम्भमूलेषु फलातिनम्रान ऊर्ध्वपत्रान् कदलीस्तम्भान् स्थापयेत्। तथा परितः बहुपत्रैराम्रपल्लवैस्तं वेष्टयेत्। चामरैरादर्शैः वस्त्रफलपुष्पादिभिः विभूष्य तं वितानान्वितं कुर्यात्।

चूतपल्लवमालादिवितानैरुपशोभितम्।
विचित्रवस्त्रसंछन्नपट्टकूलविभूषितम्॥
सफलैः कदलीस्तम्भैः क्रमुकैर्नारिकेलजैः।
फलैर्नानाविधैर्भोज्यैर्दर्पणैश्चामरैरपि॥
भूषितं मण्डपं कुर्यात् रत्नपुष्पसमुज्ज्वलम्।

इति सिद्धान्तशेखरोक्तेः। मण्डपस्यान्यथाभावे दोष उक्तः पञ्चरात्रे —

"अनुक्तसाधनैः क्लृप्तो यदि वा कुटिलाकृतिः।
मानाधिकोऽथवा न्यूनो मण्डपः कर्तृनाशनः॥" इति।

अथ पञ्चहस्तदीर्घान् द्विहस्तविस्तारयुतान् प्राच्यादिदिक्षु क्रमेण पीत-रक्त-कृष्ण-नील-श्वेत-कृष्ण-श्वेत-कृष्णान् अष्टौ ध्वजान् गैरिकादिना लिखितहस्ति-मेष-महिष-सिंह-मत्स्य-मृग-हय-वृषस्वरूपदिक्पालवाहनान् दशहस्तवंशशिरोभागे संयोज्य वंशानां पञ्चमांशं निखन्य तान् निदध्यात्।

पीतरक्तादिवर्णाश्च पञ्चहस्ता ध्वजाः स्मृताः।
द्विपञ्चहस्तैर्दण्डैस्ते वंशजैः संयुता मताः॥

इति प्रतिष्ठासारसंग्रहोक्तेः।

मातङ्ग-बस्त-महिष-सिंह-मत्स्यैणवाजिनः।
वृषभं च यथान्यायं ध्वजमध्ये क्रमाल्लिखेत्॥

इति क्रियासारोक्तेश्च। पीतरक्तादीत्यत्रादिशब्देन य-

थोक्तकृष्णादिवर्णपरिग्रहः। दिक्पालवर्णस्यैव ध्वजेषु न्याय्यत्वात्। तेषां च तत्तद्वर्णत्वस्यान्यत्र प्रसिद्धत्वात्। एवं पूर्वोक्तपीतादिवर्णाः गैरिकादिना लिखितवज्र-शक्ति-दण्ड-खड्ग-पाश-अङ्कुश-गदा-त्रिशूलस्वरूपास्त्रयुताः सप्तहस्तदीर्घा एकहस्तविस्तारा अष्टौ पताकाश्च दशहस्तदीर्घेषु वंशेषु संयोज्य क्रमेण प्राच्यादिषु अष्टदिक्षु तान् वंशान् पञ्चमांशनिखननपूर्वकं निदध्यात्। ततश्चित्रवस्त्रं दशहस्तदीर्घं त्रिहस्तविस्तारयुतं प्रान्ते बद्धकिङ्किणीकं शीर्षचामरं दशहस्तवंशशिरोभागे संयोज्य तं वंशं मध्ये निखनेत्। एवं श्वेतां नवमीं पताकां पूर्वेशानयोर्मध्ये पूर्वोक्तगुणविशिष्टां न्यस्येत्।

प्रतिकुण्डं पताकास्तु प्रोक्ताः स्युः शास्त्रकोविदैः।
सप्तहस्ताः पताकाः स्युः सप्तमांशेन विस्तृताः॥
लोकपालानुवर्णेन नवमी तुहिनप्रभा।
पताकाश्च ध्वजाश्चापि गन्धपुष्पसमन्विताः॥

इति सारसंग्रहोक्तेः।

त्रिहस्तविततो दीर्घो दशहस्तो विचित्रितः।
चामरेणान्वितः शीर्षे प्रान्ते सक्षुद्रघण्टिकः॥
दशहस्तोद्धृते दण्डे पुष्पगन्धैः समन्वितः।

इति परशुरामकारिकोक्तेश्च।

अथ कुण्डनिरूपणम्।

नवकुण्डीपक्षे पूर्वस्यां चतुष्कोणम्, अग्निकोणे योन्याकारं, दक्षिणस्यां वृत्तार्धं, निर्ऋतिकोणे त्रिकोणं, पश्चिमायां वृत्तं, वायुकोणे षट्कोणम्, उदीच्यां पद्माकारम्, ईशानकोणे अष्टकोणं, पूर्वेशान्योर्मध्ये चतुष्कोणं वृत्तं वा नवममाचार्यकुण्डम्—एवं नव कुण्डानि कुर्यात्।

अष्टास्वाशासु रम्याणि कुण्डान्येतान्यनुक्रमात्।
चतुरश्रं, योनिरर्धचन्द्रं त्र्यश्रं च वर्तुलम्॥
षडश्रं पङ्कजाकारमष्टाश्रं तानि नामतः।

आचार्यकुण्डं मध्ये स्यात् गौरीपतिमहेन्द्रयोः ॥

इति शारदातिलकोक्तेः ।

"पुरन्दरेशयोर्मध्ये वृत्तं वा चतुरश्रकम् । तदाचार्यं विनिर्दिष्टम्" इति सिद्धान्तशेखरोक्तेश्च । अयं नवकुण्डीपक्ष उत्तमः । परन्तु तुलादानादौ नृपक्षत्रियपर एव । लक्ष्ये तमुद्दिश्यैवोक्तेः । पञ्चकुण्डीपक्षे पूर्वस्यां चतुरश्रम्, याम्यां वृत्तार्धम्, पश्चिमायां वृत्ताकारम्, उत्तरस्यां पद्माकारम्, ईशानकोणे चतुरश्रं वृत्ताकारं वा—इत्येवं पञ्च कुण्डानि कुर्यात् ।

यत्रोपदिश्यते कुण्डचतुष्कं तत्र कर्मणि ।
वेदाश्रमर्धचन्द्रं च वृत्तं पद्मनिभं तथा ॥
कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः ।
पञ्चमं कारयेत्कुण्डमीशदिग्गोचरं द्विज ॥

इति नारदोक्तेः । अयं मध्यमः पक्षः । तुलादिषोडशदानेषु तु—

कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः ।

इति मात्स्योक्तेश्चत्वार्येव कुण्डानि । मध्यवेद्याः कुण्डस्य चान्तरं सपादहस्तमितं कुर्यात् ।

कुण्डवेद्यन्तरं चैव सपादकरसंमितम् ।

इति नारदीयोक्तेः । एककुण्डपक्षे वेद्याः पश्चिमायाम्, उत्तरस्याम्, ऐशानकोणे वा चतुरश्रं कुण्डं कुर्यात् ।

एकं वा शिवकाष्ठायां प्रतीच्यां कारयेद्बुधः ।

इति सोमशम्भौ उक्तेः ।

अथवा दिशि कुण्डमुत्तरस्यां प्रविदध्याच्चतुरश्रमेकमेव ।

इत्याचार्योक्तेश्च । अयं कनिष्ठः पक्षः । विप्रादीनां चतुर्णां वर्णानां क्रमेण चतुष्कोण–वृत्त–वृत्तार्ध–त्रिकोणानि वा सर्वेषां चतुष्कोणान्येव वा कुण्डानि कुर्यात् ।

विप्राणां चतुरश्रं स्याद्राज्ञां वर्तुलमिष्यते ।
वैश्यानामर्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यश्रमीरितम् ॥

चतुरश्रं तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः ।

इति शारदातिलकोक्तेः ।

स्त्रियां यजमानायां कुण्डानि योन्याकाराणि कुर्यात्—

स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत् ।

इति सनत्कुमारोक्तेः ।

पञ्चाशन्मिते होमे रत्निपरिमितं, शतमिते अरत्निमितं, सहस्रमिते हस्तमितं, दशसहस्रहोमे द्विहस्तमितं, लक्षहोमे चतुर्हस्तं, दशलक्षहोमे षड्हस्तं, कोटिहोमे अष्टहस्तं वा दशहस्तं वा षोडशहस्तं वा कुण्डं कुर्यात् ।

मुष्टिमानं शतार्धे तु शते चारत्निमात्रकम् ।
सहस्रे त्वथ होतव्ये कुण्डं कुर्यात् करात्मकम् ॥
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुष्करम् ।
दशलक्षमिते होमे षट्करं संप्रचक्षते ॥
अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकम् ।

इति भविष्यपुराणोक्तेः ।

दशहस्तमितं कुण्डं कोटिहोमेऽपि शस्यते ।

इति शारदातिलकोक्तेः ।

कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरश्रं समन्ततः ।

इति स्कान्दोक्तेश्च ।

अत्र पञ्चाशदधिके शतन्यूनहोमे रत्निपरिमितमेव कुण्डं कुर्यात्, नतु अरत्निपरिमितम् ।

न्यूनसंख्योदिते कुण्डेऽधिको होमो विधीयते ।
न न्यूनसंख्यो होमश्चाधिककुण्डे कदाचन ॥

इति दानकमलाकरादौ कारिकोक्तेः युक्तं चैतत् । अधिकसंख्यायां न्यूनसंख्याया अन्तर्भावेण न्यूनसंख्योदितकुण्डेऽधिकहोमस्य न्याय्यत्वात् । तदनङ्गीकारे मध्ये नैमित्तिकप्रायश्चित्तहोमप्रसक्तौ कुण्डान्तरकरणापत्तेश्च । एवं सहस्राधिके दशसहस्रन्यूनहोमेऽपि एकहस्तमितमेव कुण्डम् । एवं सर्वत्रोह्यम् ॥

एकहस्तकुण्डे चतुर्विंशत्यङ्गुलानि आयामो विस्तारश्च, द्विहस्ते ३४ अङ्गुलानि, चतुर्हस्ते ४८, षट्करे पादोनानि ५९, अष्टहस्ते यवोनानि ६७, दशहस्ते यवोनानि ७६, षोडशहस्ते ९६ अङ्गुलानि।

प्राच्याम्, अग्निकोणे, दक्षिणस्यां च कुण्डेषु योनिः दक्षिणतः उदगग्रा स्यात्। अतस्तत्र हवनकर्ता उदङ्मुख उपविशेत्। त्रिकोण–वृत्त–षडस्रि–पद्माकाराष्टकोणेषु पञ्चसु कुण्डेषु पश्चिमतो योनिः प्रागग्रा स्यात्, अतस्तत्र हवनकर्ता प्राङ्मुख उपविशेत्। नवमे आचार्यकुण्डेऽपि दक्षिणतो योनिरुदगग्रा स्यात्। योनिश्च मध्यभागे कार्या, नतु कुण्डकोणेषु। योनिकुण्डे तु योनिर्न कार्या।

प्रागग्नियाम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखी।
पूर्वामुखाः स्थिताः शेषा यथाशोभं व्यवस्थिताः॥ इति स्वायंभुवोक्तेः।

नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षदले स्थिता।
इति त्रैलोक्यसारोक्तेः।

नार्पयेत्कुण्डकोणेषु योनिं तां तन्त्रवित्तमः।
योनिकुण्डे तथा योनिं पद्मे नाभिं च वर्जयेत्॥
इति संग्रहोक्तेश्च।

प्रागग्नियाम्यकुण्डानां योनेरुदङ्मुखत्वं नवकुण्डीपक्षे एव नत्वन्यत्रेति दानकमलाकरः।

अथ चतुरस्रकुण्डनिर्माणप्रकारः।

एकहस्तकुण्डपक्षे द्विहस्तं सूत्रं गृहीत्वा चतुर्थे चतुर्थे भागे तमङ्कयित्वा तस्य कोणयोः पाशौ कृत्वा पूर्वोक्तप्रकारेण साधितासु पूर्वादिचतसृषु दिक्षु शङ्कून् निखन्य सूत्रपाशौ पूर्वपश्चिमस्थयोः शङ्क्वोर्दत्त्वा सूत्रमध्यचिह्नं यथा दक्षिणशङ्कुसंस्थं भवति तथा सूत्रचतुर्थांशचिह्नं गृहीत्वा कोणयोः कर्षेत् तथा सति तच्चिह्नपातस्थाने आग्नेयीनैर्ऋत्यौ। एवं सूत्रमध्यचिह्नमुत्तरशङ्कुसंस्थं यथा भवति तथा सूत्रचतुर्थांशचिह्नं गृहीत्वा कोणयोः क्रमेण चिह्नपातस्थानयोर्वायव्यैशान्यौ बोध्ये। एवं कृते समचतुरश्रं स्यात्। तत्र

खननादिना कुण्डं कुर्यात् । इदमेव सर्वेषां कुण्डानां प्रकृतिभूतम् ।

चतुरश्रमिदं प्रोक्तं सर्वकुण्डेषु कारणम् ।

इत्युक्तेः । अस्य च क्षेत्रफलं षट्सप्तत्यधिका पञ्चशती । योन्यादिकुण्डानां च एतत्प्रकृतिकत्वात् यथा क्षेत्रफलम् ५७६ भवेत् तथा त्रिकोणादिकं कल्पयित्वा तानि संपाद्यानि ॥ १ ॥

अथ योनिकुण्डनिर्माणप्रकारः ।

तथाहि । उक्तविधिना चतुरस्रं क्षेत्रं पूर्वं संपाद्य अग्निकोणे उदगग्रयोनिकुण्डनिर्माणार्थमुदङ्मुखो भूत्वा चतुरश्रक्षेत्रस्य चतुर्विंशतिभागान् कल्पयित्वा तेभ्यः पञ्च भागान् गृहीत्वा तेषु तदीयद्वात्रिंशत्तमभागं संयोज्य तावत्प्रमाणामुदगग्रां रेखां पूर्वापरायतायाश्चतुरस्रक्षेत्रस्योत्तररेखाया मध्यात् कुर्यात् । तस्या रेखाया अग्रात् । प्राचीशङ्कुपर्यन्तमेकां सरलां रेखां, प्रतीचीशङ्कुपर्यन्तं चापरां कुर्यात् । ततश्चतुरस्रक्षेत्रस्य चत्वारि समचतुरस्राणि कल्पयित्वा तेषु दक्षिणस्थयोश्चतुरस्रयोर्मध्यस्थानं केन्द्रत्वेन परिकल्प्य केन्द्रात् कोणान्तगामिना सूत्रेण वृत्तार्धद्वयं कुर्यात् । एवं कृते भगाकारं क्षेत्रं संपद्यते । तत्र च खननादिना योनिकुण्डं कुर्यात् ॥ २ ॥

वृत्तार्धकुण्डनिर्माणप्रकारः ।

यवाधिकोनत्रिंशत्यङ्गुलमितेन कर्कटकेन सूत्रेण वा व्यासार्धेन वृत्तं कृत्वा केन्द्रस्पर्शिनीं पूर्वापरायतां सरलां पूर्वपरिधिप्रान्तात् पश्चिमपरिधिप्रान्तं यावत् रेखां कृत्वा उदगर्धं परिमार्ज्य वृत्तार्धं क्षेत्रं संपाद्य तत्र खननादिना कुण्डं कुर्यात् ॥ ३ ॥

त्र्यश्रिकुण्डनिर्माणप्रकारः ।

चतुरस्रक्षेत्रतृतीयांशमितां रेखां प्रागग्रां चतुरस्रक्षेत्रस्य प्राचीशङ्कोः सकाशात् कृत्वा तदग्रे शङ्कुं निखन्य तस्यैव क्षेत्रस्य वायुकोणात् तच्चतुर्थांशमितामुदगग्रां सरलामेकां रेखां निर्ऋतिकोणाच्च तन्मितामेव दक्षिणाग्रामपरां रेखां कृत्वा तदग्रयोः शङ्कू निखन्य त्रिष्वपि शङ्कुषु सूत्रार्पणात् त्र्यस्रि क्षेत्रं संपाद्य कुण्डं खननादिना कुर्यात् ॥ ४ ॥

वृत्तकुण्डनिर्माणप्रकारः ।

सार्धत्रयोदशाङ्गुलमितव्यासार्धेन वृत्तं क्षेत्रं संपाद्य खननादिना कुण्डं कुर्यात् । अत्राङ्गुलशब्देन चतुरस्रक्षेत्रचतुर्विंशतितमो भागो ज्ञेयः । तेन द्विहस्तचतुरस्रक्षेत्रे अङ्गुलं सपादयवत्रयसहितं भवति । ततश्च द्विहस्तवृत्तक्षेत्रं सार्धाष्टादशाङ्गुलमितव्यासार्धेन संपाद्यम् । एवं चतुर्हस्तादावपि बोध्यम् ॥ ५ ॥

षडश्रिकुण्डनिर्माणप्रकारः ।

सपादाष्टादशाङ्गुलपरिमितेन व्यासार्धेन वृत्तं संपाद्य तस्य उत्तरतः शङ्कुं निखन्य ततः क्रमेण वृत्तस्य षष्ठे षष्ठे भागे शङ्कुं निखन्य वृत्तव्यासार्धद्वादशगुणं सूत्रं गृहीत्वा तस्य द्वादशे द्वादशे स्थाने चिह्नं कृत्वा प्रान्ते पाशं विधाय तमुत्तरशङ्कौ दत्त्वा सूत्रस्य प्रथमचिह्नं धृत्वा तथा वृत्तमध्ये कर्षेत् यथा द्वितीयं चिह्नं धृत्वाकर्षणे तच्चिह्नमीशानकोणगतशङ्कौ पतेत् । ततः उत्तरशङ्कुस्थानात्प्रथमचिह्नपातस्थानं यावत् सरलां रेखां कृत्वा तद्रेखाग्रात् ईशानशङ्कुपर्यन्तं रेखां कुर्यात् । ततः ईशानशङ्कुस्थानात् सूत्रस्य तृतीयचिह्नं गृहीत्वा वृत्तमध्ये तथा कर्षेत् यथा चतुर्थचिह्नं धृत्वाकर्षणे अग्निकोणस्थशङ्कौ तच्चिह्नं पतेत् । ततस्तृतीयचिह्नपातस्थानपर्यन्तमीशानशङ्कुस्थानात्सरलां रेखां कृत्वा तदग्रात् अग्निकोणशङ्कुस्थानं यावद्रेखां कुर्यात् । ततोऽग्निकोणशङ्कुस्थानात् पञ्चमचिह्नं धृत्वा पूर्ववद्वृत्तमध्ये आकृष्य षष्ठचिह्नं धृत्वा दक्षिणशङ्कुपर्यन्तमाकृष्य पूर्ववद्रेखाद्वयं कुर्यात् । ततो दक्षिणशङ्कुस्थानात्सप्तमचिह्नं धृत्वा वृत्तमध्ये आकृष्य पूर्ववदष्टमचिह्नं धृत्वा निर्ऋतिकोणशङ्कुपर्यन्तमाकृष्य पूर्ववद्रेखाद्वयं कुर्यात् । ततो निर्ऋतिकोणशङ्कुस्थानात् नवमचिह्नं धृत्वा पूर्ववद्वृत्तमध्ये आकृष्य दशमचिह्नं धृत्वा वायुकोणपर्यन्तमाकृष्य पूर्ववद्रेखाद्वयं कुर्यात् । ततो वायुकोणशङ्कुस्थानादेकादशचिह्नं धृत्वा पूर्ववद्वृत्तमध्ये आकृष्य सूत्रप्रान्तं धृत्वा उत्तरशङ्कुपर्यन्तमाकृष्य पूर्ववद्रेखाद्वयं कुर्यात् । एवं कृते षडस्रि क्षेत्रं वृत्तपरिधिमार्जनेन संपद्यते । तत्र खननादिना कुण्डं कुर्यात् ॥ ६ ॥

पद्मकुण्डनिर्माणप्रकारः ।

चतुर्विंशत्यङ्गुलायामविस्तारात्मकक्षेत्रस्य अष्टमांशभूतेन त्र्यङ्गुलमितेन व्यासार्धेन कर्णिकास्थानीयमान्तरं प्रथमं वृत्तं कृत्वा, तद्द्विगुणेन षडङ्गुलमितेन व्यासार्धेन ततो बहिः केसरस्थानीयं द्वितीयं, तत्त्रिगुणेन नवाङ्गुलमितेन व्यासार्धेन ततो बहिस्तृतीयम्पत्रमध्यस्थानीयं, तच्चतुर्गुणेन द्वादशाङ्गुलमितेन व्यासार्धेन ततो बहिश्चतुर्थं पत्रोपान्तस्थानीयं कृत्वा, क्षेत्रस्य अष्टमांशो यस्त्र्यङ्गुलात्मकस्तदीयाष्टात्रिंशत्तमांशेन ऊनितेन क्षेत्राष्टमांशपञ्चगुणेन अर्थात् पञ्चयूकोनपञ्चदशाङ्गुलमितेन व्यासार्धेन ततो बहिः अवध्याख्यं पत्राग्रस्थानीयं पञ्चमं वृत्तं कुर्यात् । तस्मिन् अवध्याख्ये वृत्ते षोडशसु स्थानेषु साम्येन विभक्तेषु षोडश चिह्नानि कुर्यात् । तेषां मध्ये पूर्वाग्निकोणचिह्नयोर्मध्यचिह्ने शङ्कुं निखन्य एवमेव सर्वेषु दिग्विदिक्चिह्नान्तरालचिह्नेषु शङ्कुं निखन्य ततः चतुर्थवृत्तस्थदिग्विदिक्चिह्नेषु शङ्कुं निखन्य उभयवृत्तस्थसर्वशङ्कुवेष्टनयोग्यं प्रान्तयोः पाशयुक्तं सूत्रमादाय तस्य एकं पाशं चतुर्थवृत्तस्थपूर्वदिक्शङ्कौ दत्त्वा सूत्रं पूर्वाग्निकोणयोर्मध्यवर्तिनं पञ्चमवृत्तस्थशङ्कुं नीत्वा सूत्रेण संवेष्ट्य ततश्चतुर्थवृत्तस्थाग्निकोणशङ्कुं, ततः पञ्चमवृत्तस्थमग्निकोणदक्षिणदिगन्तरालवर्तिशङ्कुं, ततश्चतुर्थवृत्तस्थं दक्षिणशङ्कुम् इत्येवं क्रमेण सर्वान् शङ्कून् सूत्रेण संवेष्ट्य अपरं सूत्रमान्तपाशं चतुर्थवृत्तस्थपूर्वदिक्शङ्कौ निवेशयेत् । ततो वृत्तकेन्द्रतः चतुर्थवृत्तस्थदिग्विदिक्शङ्कुषु चतुर्थवृत्तव्यासार्धसूत्राण्यष्टौ दत्त्वा तानि शङ्कुवेष्टनसूत्रं चानुसृत्य रेखाङ्कनेन अष्टौ पत्राणि संपाद्य षडङ्गुलव्यासं कर्णिकावृत्तं पञ्चमवृत्तस्थामर्धभुवं च परित्यज्य केसरभुवि केसरचिह्नानि च कुर्वन् खननादिना कुण्डं कुर्यात् । कर्णिकावृत्तं च त्र्यङ्गुलोच्चं कुर्यात् ।

उत्सेधं तु ततः कुर्यात् कर्णिकाऽर्धांशमानतः ।

इति कामिकोक्तेः । कुण्डसिद्धौ तु कर्णिकाया आयामोच्चत्वमुक्तम् । प्रतिपत्रं द्वौ द्वौ केसरौ कर्णिकावृत्ते लग्नमूलौ

केसरवृत्ते लग्नाग्रौ अग्रभागे किञ्चित्स्थूलौ वक्रकरणेन अन्योन्याभिमुखौ कार्यौ।

दलमूलेषु युगशः केसराणि प्रकल्पयेत्।
एतत्साधारणं प्रोक्तं पङ्कजं तन्त्रवेदिभिः॥

इति शारदोक्तेः। ततश्च षोडश केसराः संपद्यन्ते। अत्र कर्णिकां विहाय पत्रोपान्ताख्यचतुर्थवृत्तं यावत् सर्वस्य खननात् दलान्तराले च पृथक् खननाभावेन दलानां न तावद्भागावच्छेदेन पार्थक्यावभासः। परिध्याख्यपञ्चमवृत्ते च अर्धभुवं संगृह्य खननेन दलाग्रावच्छेदेन पार्थक्यं स्पष्टतयाऽवभासते। दिग्विदिगन्तरालेष्वेव दलाग्रकरणात् पश्चिमभागे योनिनिवेशेऽपि न दलाकृतिभङ्गः। दिग्विदिक्षु दलाग्रकरणे तु योनिनिवेशकृतो दलाकृतिभङ्गो दुर्वार एव। तस्मात् दिग्विदिगन्तराले एव दलाग्रकरणं युक्तम्। सर्वोऽप्ययं पद्मकुण्डनिर्माणप्रकारः स्मृतिकौस्तुभे माघमासीयपर्वनिरूपणप्रस्तावे अयुतहोमनिरूपणप्रसङ्गेन 'अन्येतु' इत्यादिनाऽभिहितः। अधिकजिज्ञासुभिस्तत्रैव द्रष्टव्यः॥ ७॥

अष्टाश्रिकुण्डनिर्माणप्रकारः।

यूकासहितपञ्चयवाधिकाष्टादशाङ्गुलपरिमितेन व्यासार्धेन वृत्तं कुर्यात्। वृत्तस्य तस्य विदिग्दिशोरन्तरालेऽन्तराले अष्टसु स्थानेषु चिह्नं कुर्यात्। ततः ईशानपूर्वान्तरालवर्तिचिह्नात् मध्यचिह्नद्वयं परित्यज्य दक्षिणनिर्ऋतिकोणान्तरालवर्तिचिह्नं यावत् सरलां रेखां कृत्वा ततः तस्मात् स्थानान्मध्यचिह्नद्वयं त्यक्त्वा उत्तरवायुकोणान्तरालचिह्नं यावद् द्वितीयां रेखां कृत्वा ततस्तस्मात्स्थानात् मध्ये चिह्नद्वयं विहाय पूर्वाग्निकोणमध्यचिह्नं यावत् तृतीयां रेखां कृत्वा ततस्तस्मात्स्थानात् मध्यचिह्नद्वयं वर्जयित्वा पश्चिमनिर्ऋतिमध्यचिन्हं यावत् चतुर्थीं रेखां कृत्वाततस्तस्मात्स्थानात् चिह्नद्वयं विहाय उत्तरेशानमध्यचिन्हं यावत्पञ्चमीं कृत्वा ततस्तस्मात्स्थानात् मध्यचिन्हद्वयं परित्यज्य अग्निकोणदक्षिणमध्यचिह्नं यावत् षष्ठीं कृत्वा ततस्तस्मात्स्थानान्मध्यचिह्नद्वयं त्यक्त्वा पश्चिमवायुकोणमध्यचिन्हं यावत्सप्तमीं कृत्वा

तस्मात् स्थानात् मध्यचिन्हद्वयं विसृज्य ईशानपूर्वमध्यचिह्नं यावत् अष्टमीं रेखां कुर्यात् । एवं कृते वृत्तपरिधिमार्जनात् मध्यदोःखण्ड-मार्जनाच्च अष्टास्त्रिक्षेत्रं संपद्यते। तत्र खननादिना कुण्डं कुर्यात् ॥८॥

खातं च कुण्डक्षेत्रतुल्यं कुर्यात् ।

"खातं कुण्डप्रमाणं स्यात्" इति सिद्धान्तशेखरोक्तेः । तच्च प्रमाणमाद्यमेखलायुतं ज्ञेयमिति केचित् । "ऊर्ध्वं मेखलया युतम्" इति तत्रैव तदुत्तरोक्तेः । मेखलाप्रमाणातिरिक्तमेव आयामप्रमाणं ग्राह्यमित्यन्ये ।

यावान्कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम् ।

इति शारदातिलकोक्तेः ।

चतुरस्रं चतुष्कोष्ठं सूत्रैः कृत्वा यथा पुनः ।
हस्तमात्रेण तन्मध्ये तावन्निम्नायतं भवेत् ॥

इति प्रयोगसारोक्तेश्च । अनयोश्च पक्षयोर्होमाल्पत्वबहुत्वाभ्यां व्यवस्था । योन्यादिकुण्डेषु तु चतुरस्रक्षेत्रस्यैवायामविस्तारानुसारेण हस्तमात्रमेव खनेत् । तेषामायामविस्तारयोरनियतत्वात् । खातमेखलाभ्यन्तरे अङ्गुलमानः कण्ठः कार्यः ।

खाताद्बाह्येऽङ्गुलः कण्ठः सर्वकुण्डेष्वयं विधिः ।

इति कलोत्तरोक्तेः। अङ्गुलश्चात्र क्षेत्रचतुर्विंशो भागः ।

चतुर्विंशतिमो भागः कुण्डानामङ्गुलं स्मृतम् ।

इति तत्रैवोक्तेः ।

कुण्डं च त्रिमेखलं, द्विमेखलम्, एकमेखलं वा कुर्यात् ।

नाभियोनिसमायुक्तं कुण्डं श्रेष्ठं त्रिमेखलम् ।
कुण्डं द्विमेखलं मध्यं नीचं स्यादेकमेखलम् ॥

इति क्रियासारोक्तेः ।

मेखलासहितहस्तमात्रखातपक्षे पञ्चदशाङ्गुलैर्भुवं खनेत् । अथ खाताद् बहिरेकाङ्गुलमन्तरं विहाय चतुरङ्गुलोत्सेधा नवाङ्गुलविस्तारा च कुण्डाकारा प्रथमा मेखला कार्या । तदुपरि द्व्यङ्गुलमितं बाह्यभागं त्यक्त्वा त्र्यङ्गुलोत्सेधा सप्ताङ्गुलविस्तारा ताह-

श्येव द्वितीया कार्या। तदुपरि त्र्यङ्गुलमितं बाह्यभागं त्यक्त्वा द्व्यङ्गुलोत्सेधा चतुरङ्गुलविस्तारा तादृश्येव तृतीया मेखला कार्या। मेखलारहितहस्तमात्रखातपक्षे तु हस्तमात्रं खनित्वा उक्तप्रकारेण मेखलात्रयं कार्यम्।

> व्यासात्खातः करः प्रोक्तो निम्नं तिथ्यङ्गुलेन तु।
> कण्ठात्परं मेखला तु उन्नता सा नवाङ्गुलैः॥
>
> इति विश्वकर्मोक्तेः।
>
> प्रधानमेखलोत्सेधमुक्तमत्र नवाङ्गुलम्।
> तद्बाह्यमेखलोत्सेधं पञ्चाङ्गुलमिति स्मृतम्॥
> तद्बाह्यमेखलोत्सेधमङ्गुलद्वितयं क्रमात्।
> चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलव्यासो मेखलात्रितयस्य तु॥

इति क्रियासारोक्तेश्च। अत्र चतुरङ्गुलोत्सेधत्वं नवाङ्गुलविस्तारत्वं च प्रथमायाः, त्र्यङ्गुलोत्सेधत्वं सप्ताङ्गुलविस्तारत्वं च द्वितीयायाः, द्व्यङ्गुलोत्सेधत्वं चतुरङ्गुलविस्तारत्वं च तृतीयायाः क्रियासौकर्याभिप्रायेणोक्तम्। तथाकृते यथोक्तं मेखलानां मानं सिध्यतीति अन्यथा मानं प्रोक्तमिति न भ्रमितव्यम्।

सर्वेषु कुण्डेषु कुण्डाकारा नाभिर्द्व्यङ्गुलोच्चा चतुरङ्गुलायामविस्तारा कार्या। पद्मकुण्डे तु नाभिर्न भवति। तत्र तत्स्थानीयायाः कर्णिकायाः सत्त्वात्।

> "कुण्डानां कल्पयेदन्तर्नाभिमम्बुजसंमिताम्।
> तत्तत्कुण्डानुरूपां वा मानमस्या निगद्यते॥
> मुष्टयरत्न्येकहस्तानां नाभेरुत्सेधयापता।
> नेत्रवेदाङ्गुलोपेता" इति शारदोक्तेः।

योनिकुण्डं विहाय अन्येषु सर्वेषु कुण्डेषु द्वादशाङ्गुलदीर्घा अष्टाङ्गुलविस्तारा एकाङ्गुलोच्चा एकाङ्गुलमेखलायुता कुण्डप्रविष्टैकाङ्गुलाग्रभागा योनिकुण्डोक्तरीत्या साध्यवृत्तार्धद्वययुता अधो विशाला उपरि किंचित्संकोचवती मूलादारभ्य मध्ये सच्छिद्रपत्र-

नालाकारयुता घृतयुक्तस्रुग्धारणार्थंगर्तमध्याऽश्वत्थपत्राकृतिर्योनिः मेखलामध्ये कार्या ।

मेखलामध्यतः कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा ।
शोभनां मध्यतःकिंचिन्निम्नामुन्मीलितां शनैः ॥
इति वायवीयोक्तेः ।
दीर्घा सूर्याङ्गुला योनिस्त्र्यंशोना विस्तरेण तु ।
एकाङ्गुलोच्छ्रिता सा तु प्रविष्टाऽभ्यन्तरे तथा ॥
कुम्भद्वयार्धसंयुक्ता चाश्वत्थदलवन्मता ।
अङ्गुष्ठमेखलायुक्ता मध्ये त्वाज्यधृतिक्षमा ॥
इति त्रैलोक्यसारोक्तेः ।
अर्काङ्गुलोच्छ्रितां योनिं विदध्यात्तावदायताम् ।
इति पञ्चरात्रोक्तेश्च ।

अर्काङ्गुलोच्छ्रायत्वं च द्व्यङ्गुलोच्छ्रायत्वं योनेरङ्गीकृत्य नवाङ्गुलमेखलाया उच्छ्रायं परिधेरेकाङ्गुलोच्छ्रायं च गृहीत्वा बोध्यम् । एकाङ्गुलोच्छ्रायत्वस्यैव बहुसंमतत्वात् पूर्वोक्तमेखलापरिध्युच्छ्राययोजनेन एकादशाङ्गुलोच्छ्रायत्वमेव बहुसंमतमिति दिक् ।

कुण्डकरणाशक्तौ चतुरङ्गुलोच्चमेकाङ्गुलोच्चं वा चतुष्कोणं हस्तमात्रायामविस्तारं स्थण्डिलमेव कुर्यात् ।

मृदा सुवर्णया वाऽपि मृद्भवालुकयाऽपि वा ।
अङ्गुलोच्चं तथा वेदाङ्गुलोच्चं स्थण्डिलं विदुः ॥
चतुष्कोणमुदक्प्राचीप्लवमल्पाहुतौ शुभम् ।
पञ्चाङ्गुलोच्चमथवा वस्वङ्गुलसमन्वितम् ॥
इति तन्त्रान्तरोक्तेः ।

तुलापुरुषदानोपयोगी तुलादण्डश्च शाकादिवृक्षान्यतमकाष्ठभवः सार्धहस्तचतुष्टयदीर्घो *दशाङ्गुलव्यासवलयाकृतिसूत्रसंमितो मध्ये सुवर्णपट्टाभरणः अन्यत्र चतुर्विंशतिताम्रादिधातुबन्धयुतः कार्यः ।

---

* पृथुत्वमस्यास्तु दशाङ्गुलानि इति मात्स्योक्तेः ।

विशेषदानं कथितं तुलादि तस्मात्तुलालक्षणमुच्यते प्राक् ।
तुलाप्रमाणं स्मृतमङ्गुलानि दैर्घ्येऽखिले षण्णवतिः प्रमाणैः ॥
प्रान्तद्वयेऽप्यङ्गुलषट्कमुक्तं शतं तुलाऽष्टोत्तरमङ्गुलानाम् ।
स्युर्विंशतिः पञ्च च धातुबन्धा बन्धेष्वधिष्ठातृसुरा निवेश्याः ॥
ईशः शशी मारुत इन्द्र सूर्याः स्याद्विश्वकर्मा गुरुरङ्गिरोऽग्नी ।
प्रजापति विश्वं जगद्विधाता पर्जन्यशम्भू पितृ देवताश्च ॥
सोमश्च धर्मोऽपरराज दस्रौ जलेशमित्रावरुणौ मरुद्गणाः ।
धनेश गन्धर्व जलेश विष्णुरेते चतुर्विंशतिरेव देवाः ॥
स्यात्पञ्चविंशः पुरुषः पुराणो यस्तोल्यमानस्तुलया महात्मा ।
एता विधेयास्तपनीयमय्यो रत्नाचिता दैवतमूर्तयस्ताः ॥
षडङ्गुलः स्याच्चतुरस्रपिण्डः प्रान्तद्वये विष्णुरनन्तनामा ।
तुलोर्ध्वभागे कलशद्वयं स्यात् तथाऽङ्कुटद्वंद्वमधस्तुलान्ते ॥
षडङ्गुलोऽप्यङ्कुटकश्च पिण्डोऽप्येकाङ्गुलो विष्णुरनन्तनामा ।
पाशद्वयं तच्चतुरङ्गुलं स्यादेवं मया ते कथितं प्रमाणम् ॥
मध्याङ्कुटे शृङ्खलिकाऽङ्गुलानि पञ्चाधिका विंशतिरेव दैर्घ्ये ।
एकाङ्गुलोऽस्या भवतीह पिण्डस्तत्राधिदेवः किल वासुकिः स्यात् ॥
एकैकरज्जुर्लभतेऽङ्गुलानि त्रिसप्ततिः पिण्डगताङ्गुला च ।
तच्चेलकद्वंद्वमथाङ्गुलानि त्रिंशत्तथा पञ्चदशाधिका च ॥
सद्धातुबन्धं शुभकाष्ठघाटं पिण्डेऽङ्गुलद्वंद्वमथो विधेयम् ।
अधोद्वये भूम्यधिदेवता स्यात् तुलान्तरे भूमिपतिर्निवेश्यः ॥
इति मदनरत्ने विश्वकर्मोक्तेः ।

अत्र पञ्चविंशः पुरुषः पञ्चाङ्गुलविस्तृतसुवर्णपट्टबद्धे तुलामध्यभागे स्थितषडङ्गुलदीर्घकण्टके एकाङ्गुलस्थूलपञ्चविंशत्यङ्गुलदीर्घशृङ्खलयाऽवलम्बनीयः ।

समानजातिश्च तुलाऽवलम्ब्या हैमेन मध्ये पुरुषेण युक्ता ।
इति मात्स्योक्तेः । समानजातिः तोरणसमानजातिः ।

पञ्चविंशस्य हैमपुरुषस्य स्वरूपं पञ्चरात्रे उक्तम्—

अधश्चक्रं गदामूर्ध्वे दक्षिणे वामयोः क्रमात् ।

ऊर्ध्वे शङ्खमधः पद्मं गोविन्दः कपिलाङ्कः ॥ इति ।
एता दैवतमूर्तयः ईशादिमूर्तयः तपनीयमय्यः सुवर्णमय्यो रत्नखचिताः कार्याः । षडङ्गुलः स्याच्चतुरस्रपिण्ड इति । तुलायाः प्रान्तद्वये यः षडङ्गुलो भाग उक्तः स चतुरस्रः स्यात् । अर्थात् तुलाया वर्तुलत्वं प्रान्तभागीयषडङ्गुलं विहाय बोध्यम् । तयोश्च अनन्तनामा विष्णुरधिदेवः स्यात् । तुलान्ते तुलाप्रान्ते तुलाया उभयोः प्रान्तयोः ऊर्ध्वभागे कलशाकारद्वयम्, अधोभागे अङ्कुटद्वन्द्वं बडिशाकारलोहमयपाशद्वयम् । तच्च चतुरङ्गुलदीर्घं स्यात् । पाशद्वयं तच्चतुरङ्गुलं स्यादिति अग्रिमश्लोके वक्ष्यमाणत्वात् । षडङ्गुलोऽपीति । तुलामध्ये च उत्तराङ्गकाष्ठ-मध्यावलम्बितषडङ्गुललोहकण्टके तुलाया अवलम्बनार्थं लोहमयोऽङ्कुटको बडिशाकारः कार्यः । तस्याप्यधिष्ठाताऽनन्त-नामा विष्णुः । मध्याङ्कुटे इति वक्ष्यमाणोक्त्या च अत्र तुला-मध्ये इति योजितम् । अयं च षडङ्गुलदीर्घ एकाङ्गुलस्थूलः । प्रान्तद्वयगताङ्कुटद्वयं च चतुरङ्गुलं पाशद्वयसंज्ञकं चेलकावलम्ब-नार्थशृङ्खलावलम्बनार्थं ज्ञेयम् । तुलामध्योर्ध्वभागे अङ्गुलस्थूलं षडङ्गुलदीर्घं कण्टकं योजयित्वा तत्र एकाङ्गुलव्यासां पञ्चविंशत्य-ङ्गुलदीर्घां शृङ्खलां लोहमयीं रज्जुरूपां वा गोविन्दप्रतिमाऽवल-म्बनार्थं योजयेत् । अस्याः शृङ्खलाया अधिपतिर्वासुकिर्ज्ञेयः । चेलकं फलकम् । तच्च पञ्चचत्वारिंशदङ्गुलदीर्घं द्व्यङ्गुलस्थूलं काष्ठजं कार्यम् । सति संभवे ताम्रेण फलकद्वयं विधेयम् ।

शुल्बजौ तु दृढौ विद्वान् बन्धनेन तु कारयेत् ।
शिक्याधस्तात्प्रकर्तव्यौ पञ्चप्रादेशविस्तरौ ॥

सहस्रेण तु कर्तव्यौ पलैराधारकावुभौ ।
शताष्टकेन वा कुर्यात् पलानां षट्शतेन वा ॥
चतुस्तालप्रविस्तारं मध्यमं परिकीर्तितम् ।
सार्धत्रितालविस्तारं कनीयश्च विधीयते ॥

पञ्चमात्रं चतुर्मात्रं त्रिमात्रं फलमुच्यते । इति लैङ्गोक्तेः ।

तालः मध्यमासहिताङ्गुष्ठविस्तारः । मात्रम् अङ्गुलम् । शुल्वं ताम्रम् । फलं फलकयोः प्रान्तभागः । पलसहस्रमितेन ताम्रेण फलकद्वयमुत्तमम् । तद्व्यासः प्रादेशपञ्चकमितः । तत्प्रान्तभागश्च पञ्चाङ्गुलोच्छ्रितः । पलशताष्टकमितेन तु मध्यमम् । तद्विस्तारः तालचतुष्टयमितः । प्रान्तभागश्च चतुरङ्गुलोच्छ्रितः । पलशतषट्कमितेन तु कनिष्ठम् । तस्य विस्तारः सार्धतालत्रयमितः । प्रान्तभागश्च त्र्यङ्गुलोच्छ्रितः । ताम्रफलकद्वयं च वर्तुलं कार्यम् । व्यासपर्यायविस्तारपदोपादानात् । तच्च ताम्रवलयचतुष्टयान्वितं विधाय त्रिसप्तत्यङ्गुलदीर्घाभिरेकाङ्गुलस्थूलाभिश्चतसृभिः शृङ्खलाभिस्तद्वलययोजिताभिस्तुलाप्रान्तनिविष्टचतुरङ्गुलपाशयोरवलम्बयेत् , यथा भूमेः फलकयोश्च प्रादेशमात्रं चतुरङ्गुलमात्रं वाऽन्तरं भवेत् ।

प्रादेशं वा चतुर्मात्रं भूमिं त्यक्त्वाऽवलम्बयेत् । इति लैङ्गोक्तेः । वेद्याः पूर्वतः पश्चाच्च यथासंभवम् उत्तमादिमण्डपेषु भूमिं त्यक्त्वा दशाङ्गुलस्थूलं चतुरश्रं सप्तहस्तदीर्घं तोरणनिवेशनार्थं हस्तमात्रोपरिभागकृतचूडं शाकादियज्ञियवृक्षकाष्ठजं स्तम्भद्वयं हस्तचतुष्टयान्तरालं वेदिमध्ये पूर्वपश्चिमयोर्हस्तद्वयं निखन्य तयोरुपरि चतुरङ्गुलाधिकपञ्चहस्तदीर्घं स्तम्भाद्बहिर्निर्गतचतुरङ्गुलपूर्वपश्चिमप्रान्तभागं मध्ये तुलावलम्बनार्थषडङ्गुलदीर्घदृढलोहकण्टकयुतं, स्तम्भचूडयोर्निवेशनार्थं प्रान्तद्वये कृतच्छिद्रं दशाङ्गुलस्थूलं तोरणाख्यं काष्ठं निधाय* तन्मध्यभागीयषडङ्गुललो-

* तुलामध्यभागीयावलम्बनार्थबडिशाकारलोहकण्टकस्य "षडङ्गुलोऽप्यङ्कुटकश्च" इत्यनेन षडङ्गुलत्वस्य कथनात् अवलम्बनार्थतोरणमध्यभागीयलोहकण्टकस्यापि षडङ्गुलत्वमुचितमिति भावः । अतएव हेमाद्रिणाऽपि "समानजातिश्च तुलाऽवलम्ब्या" इति "तोरसमानजातिस्तुला उत्तराङ्गमध्ये द्वादशभिरङ्गुलैरधस्तादुदग्राऽवलम्ब्या" इति व्याख्यातम् । उभयोरवलम्बनकण्टकयोः षडङ्गुलत्वे तोरणाधस्ताद् द्वादशाङ्गुलावलम्बनस्य फलितत्वादिति ।

हकराटके पूर्वोक्तां तुलां दक्षिणोत्तरायतां तुलोर्ध्वमध्यभागीयषड-
ङ्गुललोहकराटकेनावलम्बयेत् ।

शाकेङ्गुदीचन्दनदेवदारुश्रीपर्णिबिल्वप्रियकाञ्जनोत्थम् ।
स्तम्भद्वयं हस्तयुगावखातं कृत्वा दृढं पञ्चकरोच्छ्रितं च ॥
तदन्तरं हस्तचतुष्टयं स्यात् तयोत्तराङ्गं चतुरस्रमेव ।

इति मात्स्योक्तेः। पूर्वोक्तगुणविशिष्टतोरणस्यासत्त्वे यज्ञिय-
वृक्षकाष्ठजे स्तम्भे एव तुलां बध्नीयात् ।

आश्वत्थीं खादिरीं वाऽपि पालाशीं वा सुवृत्तजाम् ।
चतुर्हस्तप्रमाणेन सुश्लक्ष्णां सुदृढां नवाम् ॥
सुवर्तुलां समां तद्वत् स्निग्धां छिद्रत्रयान्विताम् ।
मौञ्जशिक्याभयोपेतां बद्धां स्तम्भे तु यज्ञिये ॥

इति वह्निपुराणोक्तेः । छिद्राणि तु द्वयोः प्रान्तयोर्द्वे मौञ्ज-
शिक्यद्वयावलम्बनार्थे, एकं स्तम्भमध्ये तुलाया बन्धनार्थम्
इति त्रीणि । स्तम्भश्च सप्तहस्तो हस्तद्वयं भूमौ निखेयः । एता-
दृशस्य स्तम्भस्याप्यभावे क्वचिदपि कथंचित् तुलामवलम्बयेत् ।
ताम्रमययोः काष्ठमययोर्वा फलकयोः पूर्वोक्तगुणविशिष्टयोरभावे
मुञ्जवंशादिनिर्मिते पिटके एव संपादयेत् ।

शक्त्या द्वयं तु बध्नीयात् स्थापयेत् पिटके ततः ।
तत्रारोहेत् सवस्त्रास्त्रः पुष्पालङ्कारभूषितः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तेः । सौवर्णं पट्टं, सौवर्णं वासुदेवं
च तुलामध्ये स्वशक्त्यनुसारेण बध्नीयादिति आद्यपादार्थः ।
तदनन्तरं पिटके—पिटकद्वयं स्थापयेत्, तत्र च वस्त्रादिविशिष्ट
आरोहेदिति पादत्रयार्थः । तुला च दक्षिणोत्तरायता बन्धनीया ।

दक्षिणे तु सुवर्णं स्यादुत्तरे तु नराधिपः ।

इति गोपथब्राह्मणोक्तेः ।

स्वमेयं चैन्द्रदिग्भागे सुवर्णं तत्र निक्षिपेत्—

इति लैङ्गोक्तेः कैश्चित् तुलायाः प्राक्पश्चिमायतत्वमप्युक्तम् ।
तत् यथासमाचारं व्यवस्थापनीयम् ।

अथ एककुण्डपक्षमाश्रित्य तुलादानप्रयोगो लिख्यते ।

तत्र तुलादानदिनात्पूर्वं तृतीय–षष्ठ–नवमदिनानि वर्जयित्वा कस्मिंश्चिच्छुभदिने शुभदेशे यजमानः कृतनित्यक्रियो दीपं प्रज्वलय्याचम्य प्राणानायम्य शान्तिपाठं (स्वस्तिवाचनं) कृत्वा गणेश–विष्णु–कुलदेवता—महेश्वर–सूर्यान् पुष्पाञ्जल्युपहारपूर्वकं नमस्कृत्य गणेश–कूर्म–वसुधा–ऽनन्तानां पूजनं कृत्वा मण्डपादिकं कुर्यात् । तत्रादौ अद्येह अमुकोऽहं करिष्यमाणमण्डपादिकरणकर्मणि निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं श्रीमद्भगवतो गणेशस्य यथालब्धोपचारैः पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य उक्तविधिना गणेशं संपूज्य अद्येह करिष्यमाणमण्डपाद्यङ्गत्वेन भूमि—कूर्मानन्तानां पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य तान् पूजयेत् । तत्र पूर्वं भूमिदेवतां पूगफलादौ एतं त इति प्रतिष्ठाप्य—

चतुर्भुजां शुक्लवर्णां कूर्मपृष्ठोपरि स्थिताम् ।
पद्मशङ्खचक्रशूलधरां स्मितवराननाम् ॥ इति ध्यात्वा—
आगच्छ सर्वकल्याणि वसुधे लोकधारिणि ।
पृथिवि ब्रह्मदत्ताऽसि काश्यपेनाभिवन्दिता ॥

इत्यावाह्य ॐभूरसि इति वैदिकमन्त्रेण ॐभूम्यै नमः इति नाममन्त्रेण वा भूमिं गन्धाद्युपचारैरभ्यर्च्य—

उपचारानिमांस्तुभ्यं ददामि परमेश्वरि ।
भक्त्या गृहाण देवेशि त्वामहं शरणं गतः ॥

इति पूजां निवेदयेत् । ततः—

पूजिते परमाचार्यैर्गन्धमाल्यैरलंकृते ।
भव भूतिकरी देवि गृहे भार्गवि रम्यताम् ॥

इत्येवं तां प्रार्थयेत् । ततः ॐकूर्माय नमः इत्यनेन कूर्मम्, ॐअनन्ताय नम इत्यनेन अनन्तं च पूजयेत् । दानकमलाकरे तु एतेषां पूजनानन्तरं ताम्रपात्रस्थमर्घ्यं गृहीत्वा—

आगच्छ सर्वकल्याणि वसुधे लोकधारिणि ।
उद्धृताऽसि वराहेण सशैलवनकानना ॥

मण्डपं कारयाम्यद्य त्वदूर्ध्वं शुभलक्षणम् ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसन्ना शुभदा भव ॥

इति भूम्यै अर्घ्यदानमप्युक्तम् । अथ मार्जनादिभिर्भूमिं संशोध्य पञ्चगव्येनाभ्युक्षेत् । तत्प्रकारश्च गायत्र्या पलमितं माषाष्टकमितं वा गोमूत्रं गृहीत्वा सुवर्णताम्रादिधातुपात्रे पलाशादिपत्रपुटे वा स्थापयेत् । तदर्धं गोमयं गन्धद्वारामिति मन्त्रेण गृहीत्वा तत्रैव स्थापयेत् । गोमूत्रत्रिगुणं क्षीरम् आप्यायस्वेति गृहीत्वा तत्रैव स्थापयेत् । गोमूत्रद्विगुणं दधि दधिक्राव्ण इति गृहीत्वा तत्रैव स्थापयेत् । गोमूत्रद्विगुणं घृतं तेजोऽसि इति गृहीत्वा तत्रैव स्थापयेत् । गोमूत्रसमं कुशोदकं देवस्यत्वा इत्यनेन गृहीत्वा तत्रैव स्थापयेत् । प्रणवेन हस्तेनालोड्य प्रणवेनैव यज्ञियकाष्ठेन निर्मथ्य प्रणवेनैवाभिमन्त्रयेत् ए सिद्धेन पञ्चगव्येन आपोहिष्ठा इति त्र्यृचेन भूमिमभ्युक्षेत् । एवं शोधितायां भूमौ पूर्वोक्तविधिना मण्डपादिकं विदध्यात् । रुद्रायतनादौ तु समीकरणपञ्चगव्याभ्युक्षणसंस्कारानपेक्षयैव मण्डपादिकं विधेयम् । गणेशभूम्यादिपूजनं तु तत्रापि कर्तव्यमेव ।

पूर्वोक्तविधिना स्तम्भादियुक्तमण्डपानुष्ठानासंभवे कूटमेव कुर्यात् । "मण्डपं कूटमेव वा" इति लैङ्गोक्तेः । कूटं छायामात्रम् । कूटमेव शालाशब्देन व्यवह्रियते कैश्चित् । तत्रापि पताकाद्यलंकारादयो मण्डपधर्मा भवन्त्येव यवेषु व्रीहिधर्मा इव । तेषामपूर्वप्रयुक्तत्वात् । तस्य च वैकल्पिके विद्यमानत्वात् ।

इत्थं मण्डपं कूटं वा सम्पाद्य करिष्यमाणतुलादानाधिवासनदिनात् पूर्वेद्युः कृतैकभक्तादिनियमः करिष्यमाणतुलादानदिनात् पूर्वदिने सुस्नातः परिहितशुक्लधौतवासाः कुङ्कुमादिना कृततिलकः प्राङ्मुखो यजमानः शुभासन उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य प्राणानायम्य शान्तिपाठं (स्वस्तिवाचनं) कारयित्वा गणेशादीन् सुमुखश्चेत्यादिभिः नमस्कृत्य तेषु पुष्पाञ्जलिं

च समर्प्य देशकालौ संकीर्त्य श्वःकरिष्यमाणतुलापुरुषमहादान-कर्मणि निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं श्रीमद्भगवतो गणेशस्य पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य यथाविधि तं संपूज्य प्रधानसंकल्पं कुर्यात्—

कुशतिलयवसहितं जलमादाय करिष्यमाणदानाधिकरण-तिथ्यादीनुल्लिख्य अमुकोऽहम् *ब्रह्महत्यादिसकलपापक्षयपूर्वकं

---

*यद्यपि योगसिद्ध्यधिकरणन्यायेनैकस्मात् प्रयोगात् एक-मेव फलं युक्तम्, तथापि जातेष्टौ पुत्रगतपूतत्वादीनामिव तुला-दानादौ वह्निपुराणादौ श्रुतानां ब्रह्महत्यादिपापक्षयादीनां समुदि-तानामेकफलत्वमेव । साहित्यस्यैव रात्रिसत्रन्यायेन कार्यतावच्छे-दकत्वकल्पनात् एकस्यैव कामशब्दस्य कल्पनाच्च । सर्वेभ्यः कामेभ्यो दर्शमासौ इत्यादौ तु नानाकामशब्दैकशेषश्रवणान्नाना-फलत्वाद्द योगसिद्धिन्यायावतारः । अत एव मदनरत्नादौ सर्वेषां फलानां समुच्चयेनोल्लेखः कृत इति दिक् ।

मात्स्यादिनानापुराणेषु उक्तस्य तुलादानादेः कर्मणः शाखा-न्तराधिकरणन्यायेन स्मार्तद्वादशवार्षिकादिव्रतानामिवैक्यस्यैव न्याय्यत्वात्सर्वाङ्गोपसंहारे लैङ्गे नृपक्षत्रियपदयोरुपादानात्तुलादाना-दौ विप्रादीनामनधिकारो यद्यपि प्राप्नोति तथापि लैङ्गव्यतिरिक्त-सर्वपुराणस्वारस्येन तुलादानादेः सर्वसाधारण्यमेव । लैङ्गं तु क्षत्रि-यस्य नृपस्य धर्मविशेषविधानार्थम् ।

तेन नवकुण्डी-सहस्रनामपूजादिप्रकारस्तत्रोक्तो नृपक्षत्रियस्यैव नान्येषाम् । मात्स्याद्युक्तस्तु सर्वेषाम् । पुराणभेदेन तुलादानादि-कर्मभेदवादिनामपि अन्यत्रोक्तानामङ्गानामन्यत्र नाम्नाऽतिदेशः स्या-देव कुण्डपायिनामयनस्थे नित्याग्निहोत्रधर्माणामिव । अत एव—

आत्मतुल्यं सुवर्णं वा दद्याद्ब्रह्मवधे पुमान् ।

इति चातुर्वर्ण्याधिकारे मनूक्तिः,

ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां कर्तव्या यत्नतो नृप ।

इति कामधेनुदाने आग्नेयोक्तिः,

स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत् ।

इति मात्स्योक्तिश्च संगच्छते । ननु गृह्यसूत्राद्युक्तहोमाङ्गकुण्डक-ण्डिकाद्यङ्गापेक्षेषु तुलादानादिषु तदध्ययनाभावे कथं स्त्रीशूद्राणाम-धिकार इति चेन्न । 'स्त्रीभिः शूद्रैश्च पुराणानि श्रोतव्यानि' इत्यस्य नियमविधित्वलाघवानुरोधेन अर्थज्ञानरूपदृष्टार्थत्वात्दर्थज्ञानस्य च कर्मानुष्ठानोपयोगित्वात् पौराणेषु कर्मसु तेषामधिकारध्रौव्यात् ।

चतुर्दशमन्वन्तरकालावच्छिन्नमतिलोकपालस्थानाधिकरणकनिवा-सोत्तरकालाप्सरोगणाधिष्ठितकलरणत्करणकिङ्किणीगणमण्डिता-र्कवर्णविमानकरणकवैकुण्ठभुवनगमनानन्तरकल्पकोटिशतावच्छि-न्नवकुण्ठभोग्यभोगोत्तरकालाखिलभूपालमौलिमाणिक्यमालोपर-ञ्जितचरणपीठत्वविशेषितराजराजत्व—श्रद्धानुविद्धयज्ञसहस्रयाजि-त्व—प्रदीप्तप्रतापानलाशेषमहीपालविजयमाप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वर-प्रीतिकामः (श्रीपरमेश्वरप्रीतिमात्रकामो वा) श्वस्तुलापुरुषमहा-दानं करिष्ये इति । सद्योऽधिवासनपक्षे अद्य तुलापुरुषमहादानं करिष्ये इत्येवमुल्लेखः । ततः तुलापुरुषमहादानकर्मणि निर्विघ्नता-सिद्ध्यर्थं (१)गोविन्दस्योमापतेः विनायकस्य च पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य यथाशक्ति लब्धोपचारैः ॐगोविन्दाय नमः ॐउमा-

---

अन्यथा तेषां तच्छ्रवणस्य वैफल्यापत्तेः । गृह्योक्ताङ्गस्नानं तु उपदे-शादिना सम्भवत्येव । प्रधानानुरोधेन तदाक्षेपात् । वरणाभावेन ऋत्विक्कर्तृकत्वेनैव प्रयोगविधिविधेयत्वाच्च ।

तत्र ऋत्विक्कर्तृकहोमे वैदिकमन्त्रो भवत्येव ।

अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते ।

इति वाराहोक्तेः । मन्त्रेण मन्त्रपाठेन तदर्थं विप्रो गृह्यते स्वी-क्रियते इत्यर्थः ।

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः ।

ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥

इति पराशरोक्तेश्चेति माधवो गौडा मैथिलाश्च । वैदिके याजमाने मन्त्रे शूद्रस्य नमोमन्त्र एव । "अनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मन्त्र" इति गौतमोक्तेः । पौराणे याजमाने मन्त्रे शूद्रस्य पाठ एवेति कल्पतरु-स्मार्तगौडादयः । श्रवणमात्रस्यैव विधानेन "श्रुतैर्मन्त्रैरर्थस्मृति कुर्यात्" इत्यर्थेन शूद्रस्य पौराणमन्त्रश्रवणमात्रमिति कमलाकरः । एतत्सर्वं दानकमलाकरे विस्तरेण निरूपितम् । अधिकजिज्ञासुभिस्त-त्रैव द्रष्टव्यम् ।

(१) तस्मादाराध्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ ।

महादानमखं कुर्यात् विप्रैश्चैवानुमोदितः ॥

इति मात्स्योक्तेन तेषां पूजनस्य विहितत्वात् । वक्ष्यमाणं वि-प्रानुज्ञापनं चानेनैव विहितमिति बोध्यम् ।

पतये नमः ॐ विनायकाय नमः इति नाममन्त्रैस्तान् संपूज्य अनुमतिग्रहणाय चतुरस्त्रीन् वा ब्राह्मणान् उदङ्मुखान् स्वदक्षिणतः प्राक्संस्थानुपवेश्य गन्धादिभिः संपूज्य वस्त्रादिदानेन सत्कृत्य 'तुलापुरुषमहादानमहं भवदाज्ञया करिष्ये' इत्येवं प्रार्थयेत । 'क्रियताम्' इत्येवं तैरनुज्ञातः करिष्यमाणतुलापुरुषमहादानाङ्गत्वेन गणपतिसहितगौर्यादिषोडशमातॄणां पूजनं नान्दीश्राद्धं पुण्याहवाचनमाचार्यब्रह्मर्त्विग्जापक-द्वारपालानां वरणं च करिष्ये इति संकल्प्य संस्कारदीपकप्रथमभागोक्तरीत्या मातृपूजनं नान्दीश्राद्धं पुण्याहवाचनं च कृत्वा वेदार्थविदमार्यदेशोत्पन्नं कुलशीलाभिरूपं पुराणाभिरतं कर्मदक्षं प्रसन्नगम्भीरवाचं ब्राह्मणमुदङ्मुखमुपवेश्य—

आपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥

इति मन्त्रेण पादप्रक्षालनपूर्वकं "भूमिदेवाग्रजन्मासि त्वं विप्रपुरुषोत्तम । प्रत्यक्षो यज्ञपुरुषो ह्यर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम्" ॥ इत्यर्घ्यं दत्त्वा गन्धादिभिः संपूज्य वस्त्रद्वय-हेमसूत्र-कुण्डल-केयूर-कण्ठाभरण-मुद्रिकादिभिः सत्कृत्य 'अस्मिंस्तुलापुरुषमहादानकर्मणि एभिर्गन्धाक्षतपुष्पमालादिभिः तदङ्गभूतसकलकर्म कर्तुं कारयितुं च अमुकगोत्रममुकशर्माणममुकवेदाध्यायिनममुकशाखिनं त्वाम् आचार्यत्वेनाहं वृणे' इत्येवं वृणुयात् । स च 'वृतोऽस्मि' इति प्रतिवदेत् । ततस्तं—

यथा शक्रस्य वागीश आचार्यः सर्वकर्मसु ।
तथा मया त्वमाचार्यो वृतोऽस्मिन् यज्ञकर्मणि ॥
आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः ।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत ॥

इत्येवं प्रार्थयेत् । ततः कुलादिसंपन्नम् "अस्मिन् कर्मणि कृताकृतावेक्षणादि कर्म कर्तुम् एभिर्गन्धादिभिः ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे" इति ब्रह्माणं वृणुयात् । 'वृतोऽस्मि' इति तेनोक्ते—

यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदविदां वरः ।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ॥

इति प्रार्थयेत् । ततो यजमानः स्वशाखीयम् पूर्वोक्तगुणविशिष्टम् ब्राह्मणं स्वशाखीयमन्त्रैः (१)तिलहोमकरणार्थमृत्विक्त्वेन पूर्वोक्तरीत्या वृणुयात् । तद्यथा—गन्धादिभिः संपूज्य वस्त्रादिना सत्कृत्य च 'अस्मिन् कर्मणि ऋत्विक्त्वेन त्वामहं वृणे' इति वृणुयात् । आज्यहोममाचार्यः कुर्यात् । तत ऋत्विजं—

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः ।
काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक्त्वं मे मखे भव ॥

इति प्रार्थयेत् । ततः मण्डपस्य पूर्वद्वारे उभयोः पार्श्वयोः (२)श्रीसूक्त-

---

(१) कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः । इत्युपक्रम्य हस्तप्रमाणानि तिलाज्यधूपपुष्पोपहाराणि सुशोभनानि ।

इति मात्स्योक्तेस्तिलाज्याभ्यां होमो लभ्यते । अतः सौकर्यार्थ द्वयोस्तयोर्युगपद्धोमायाचार्यातिरिक्तस्य ऋत्विजो वरणम् ।

स्वल्पे तु होमं गुरुरेक एव कुर्याद्यथैकाग्निविधानयुक्त्या ।

इति हेमाद्रौ ब्रह्माण्डदानप्रकरणे मात्स्योक्तेः क्रमेणैवानुष्ठाने तु नान्यस्य ऋत्विजो वरणम् । तिलाज्याभ्यां होम एव मदनरत्ने नारायणभट्टीये तुलादानप्रयोगे चोक्तः । लैङ्गे तु—

समिद्धोमश्चरूणां च घृतस्य च यथाक्रमम् ।

इति चरुसमिधोरपि होम उक्तः । तद्रीत्याऽनुष्ठाने सौकर्यार्थं युगपत्सर्वहोमानुष्ठाने च त्रयाणामन्येषामृत्विजां वरणम् । तिलहोमस्यापि उपसंहारात् । दानकमलाकरे तु समिदाज्यतिलैर्होम उक्तः ।

समिधश्चात्र कर्तव्या अष्टोत्तरसहस्रकाः ।
अष्टोत्तरशतं वापि अष्टाविंशतिरेव वा ॥

इति महार्णवे ग्रहहोमप्रकरणे उक्तेः । अत्रापि ग्रहादीनां देवतात्वात् । तत्र लैङ्गोक्तः प्रकारस्तु नृपक्षत्रियपर एवेति पूर्वमुक्तम् ।

(२) श्रीसूक्तं पावमानं च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ।
शान्त्यध्यायं चेन्द्रसूक्तं रक्षोघ्नं चेति बह्वृचौ ॥
दक्षिणे तु द्वारपालौ रुद्रान् पुरुषसूक्तकम् ।
श्लोकाध्यायं शुक्रियं च मण्डलाध्यायमेव च ॥
वामदेव्यं बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम् ।
तथा पुरुषसूक्तं च रुद्रसूक्तमतः परम् ॥

पावमानसूक्त-सोमसूक्त-सुमङ्गलसूक्त-शान्त्यध्याय-इन्द्रसूक्त-रक्षोघ्नसूक्तपाठार्थं बह्वृचौ द्वौ, दक्षिणद्वारे उभयोः पार्श्वयोः रुद्राध्याय-पुरुषसूक्त-श्लोकाध्याय-शुक्रिय-मण्डलाध्यायपाठार्थं शुक्लयजुर्वेदिनौ द्वौ, पश्चिमद्वारे उभयोः पार्श्वयोः वामदेव्य-बृहत्-ज्येष्ठ-रथन्तर-पुरुषसूक्त-रुद्रसूक्त-आज्यदोह--शान्तिक--भारुण्डसामगानार्थं सामवेदिनौ द्वौ, उत्तरद्वारे उभयोः पार्श्वयोः आथर्वणसूक्त-आङ्गिरससूक्त-नीलरुद्र-अपराजितादेवी-मधुसूर :-शान्तिकाध्यायपाठार्थमाथर्वणौ द्वौ द्वारपालत्वेन वृणुयात्। वृत्वा च-

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः।
अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु॥
कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः।
काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु॥
सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः।
भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु॥
बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः।
वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु॥

इति क्रमेण तान् प्रार्थयेत्। एकैकमेव वा द्वारपालत्वेन वृणुयात्।

एवंत्वशक्तावर्धेन विधिर्दृष्टः स्वयंभुवा।
अल्पेष्वेकाग्निवत्कुर्यात् वित्तशाठ्यादृते नरः॥
इत्युत्सर्गमयूखे मात्स्योक्तेः। (अ० ५८)

ततः शान्त्यध्यायजपार्थं प्रतिद्वारं द्वौ द्वौ ऋगादिविदौ एकैकं वा जापकत्वेन वृणुयात्, पूर्ववत् प्रार्थयेच्च। गणेशमन्त्रजपार्थं च स्वशाखीयमेकं वृणुयात्।

आज्यदोहानि सामानि शान्तिकाध्यायमेव च।
भारुण्डानि च सामानि पश्चिमे सामवेदिनौ॥
अथर्वाङ्गिरसं नीलरुद्रं देव्यपराजिता।
मधुसूक्तं रौद्रसं च शान्तिकाध्यायमेव च॥
आथर्वणौ द्वारपालौ पठेतामुत्तराश्रितौ।
इति द्वारपालपाठ्यानि सूक्तादीनि मदनरत्नावाद्युक्तानि।

शान्त्यध्यायस्तु ऋग्वेदिनाम् "शंनइन्द्राग्नी" इत्यादिः। यजुर्वेदिनाम् "ऋचंवाचम्" (य० सं० अ० ३६) इत्यादिः। सामवेदिनाम् "अबोध्यग्निः" इत्यादिः। अथर्ववेदिनाम् "शान्ताद्यौः" "शं न इन्द्राग्नी""शं नः सत्यस्य" इति सूक्तत्रयम्। सति विभवे सर्वेषां हैमालंकारैर्वरणं कार्यम्।

(तुलादानप्रकरणे जापकानामेव (१) श्रवणात् न द्वारपाला-नामत्र पृथग्वरणम्। ते चाष्टाविति कल्पतरुः।

जापकाश्चात्र चत्वार एव।

जपेयुः शान्तिकाध्यायं जापकाः सर्वतो दिशम्।

इति सर्वदिग्द्वारमात्रसम्बन्धश्रवणात् अष्टत्वसंख्याया अश्र-वणात् अस्य सर्वदानप्रकृतित्वेन सर्वाङ्गोपेतत्वेन च जलाशयोत्सर्ग-विकृतित्वाभावेन तद्गतजापकाष्टत्वसंख्याया अनतिदेशाच्च' इति रत्नाकरादयः। एवं च एककुण्डपक्षे आचार्यः, ब्रह्मा, होता चैको द्वौ वा, जापकाश्चत्वारः इति सप्ताष्टौ वा ब्राह्मणा आवश्यकाः। क्रमेण होमे तु ऋत्विजोरप्यनावश्यकत्वात् षडेव)।

सति संभवे सर्वपामृत्विजां मधुपर्केणार्चनं कुर्यात्। इत्थमाचार्या-दीन् वृत्वा "यथाविहितं कर्म कुरुत" इत्येवं तान्प्रार्थ्य 'करवाम' इति तैरभ्युपगमय्य शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः साचार्यो यजमान ऋत्विक्सहितो जलपूर्णकलशहस्तो मङ्गलघोषपुरःसरम् "भद्रंकर्णेभिः"इति मन्त्रेण मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य(२)पश्चिमद्वारेण प्रविशेत्। तत्राचार्यः पश्चिमदेशे स्वासने प्राङ्मुख उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य गणेशादीन् संस्मृत्य अर्घं संस्थाप्य प्राणानायम्य अपसर्पन्त्विति अपक्रामन्त्विति च गौरसर्षपान् विकार्य गायत्र्यादीन् रक्षाविधानोक्तान् (सं० दी० प्र० ० १५८) द्वादश मन्त्रान्पठित्वा

---

(१) "जपेयुः शान्तिकाध्यायं जापकाः सर्वतो दिशम्" इति हेमाद्रौ मात्स्ये इति शेषः। (अ० २७४)

(२) पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम्। इत्युत्सर्गमयूखे मात्स्योक्तेः। (५८)

त्रिसूत्र्या मण्डपमावेष्ट्य तालत्रयनादपूर्वकं विघ्नानुत्सार्य पूर्वोक्तविधिना निष्पादितेन पञ्चगव्येन "आपो हिष्ठा" इत्यादिभिस्त्रिभिर्मन्त्रैः कुशैः सर्वत्र प्रोक्षेत्। ततः देशकालौ संकीर्त्य करिष्यमाणतुलापुरुषमहादानाङ्गतयाऽधिवासनं करिष्ये तदङ्गतया मण्डपदेवतास्थापनादि करिष्ये इति संकल्प्य प्रधानदीपं पूर्वस्यां दिशि संस्थाप्य संपूज्य च ईशानादिषु चतुर्षु कोणेषु—

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः।
तिष्ठन्तु मण्डपे चास्मिन्नायुर्बलकराः सदा॥

इति चतुरः शङ्कून् निखन्य—

अग्निभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तत्समाश्रिताः।
तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम्॥

इति शङ्कूनां पार्श्वेषु तेनैव क्रमेण माषभक्तबलीन् दद्यात्। ततः पूर्वद्वाराभिमुखे निहितं शङ्खाङ्कितं तोरणं स्पृष्ट्वा "अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्"॥

इति पठेत् (१)। ततः 'एतंते' इत्यादिना 'सुदृढतोरण इहा-

---

(१) "अग्निमीळेतिमन्त्रेण प्रदद्यात्पूर्वतोरणम्। इषेत्वेत्यादिमन्त्रेण दक्षिणे तोरणं न्यसेत्॥ अग्नआयाहिमन्त्रेण पश्चिमस्य निवेशनम्। शंनोदेवीतिमन्त्रेण दद्यादुत्तरतोरणम्॥" इति स्मृतिकौस्तुभोद्धृतसारसंग्रहे तोरणस्थापने विनियुक्तानां मन्त्राणां "सिद्धे मन्त्राः प्रयोक्तव्याः" इत्यनेन स्थापितानां स्पर्शने विनियोगः।

"पूर्वादौ तोरणार्थं तु पिप्पलादुम्बरौ वटम। प्लक्षं सुशोभनं पूर्वं सुभद्रं दक्षतोरणम्॥ सुकर्म च सुहोत्रं च आप्ये सौम्ये समुच्छ्रयम्। पञ्चहस्तं तु संस्थाप्य स्योनापृथ्वीति पूजयेत्॥ तोरणस्तम्भमूले तु कलशान् मङ्गलाङ्कुरान्। प्रदद्यादुपरिष्टाच्च कुर्याच्चक्रं सुदर्शनम्॥" इति अग्निपुराणे (अ० ५६) सुशोभन-सुभद्र-सुकर्म-सुहोत्रेति पूर्वादितोरणनामान्युपलभ्यन्ते। अत्र तु दानकमलाकरानुरोधेन पूर्वतोरणस्य सुदृढेति नाम निर्दिष्टम्। अन्येषां तूभयत्र समानान्येव नामानि। यद्यप्यत्र तोरणस्योपरिष्टाच्चक्रमेव कर्तव्यत्वेन निर्दिष्टं तथापि "मस्तके द्वादशांशेन शङ्खचक्रगदाऽम्बुजम्। प्रागा-

दिक्क्रमयोगेन न्यसेत्तेषां स्वदारुजम् ॥" इति हेमाद्रौ वास्तुशास्त्रोक्तः शङ्क्वाद्यङ्कनमन्त्रोक्तम् ।

(मत्स्य० अ० २६४) "चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः" । इत्युपक्रम्य "कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत् । अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान् ॥ चूतपल्लवसंछन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान् । सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान् ॥ एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः । पताकारोपणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ॥ ध्वजांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत् । पताका जलदाकारा मध्ये स्यान्मण्डपस्य तु ॥ गन्धधूपादिकं कुर्यात् स्वैः स्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात् । बलिं च लोकपालेभ्यः स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्निवेदयेत् ॥ ऊर्ध्वं तु ब्रह्मणे देयस्त्वधस्ताच्छेषवासुकेः । संहितायां तु ये मन्त्रास्तद्दैवत्याः श्रुता स्मृताः ॥ तैः पूजा लोकपालानां कर्त्तव्या च समन्ततः ।" इति, (अ० २७४) "लोकेशवर्णाः परितः पताका मध्ये ध्वजः किङ्किणिकायुतः स्यात् । द्वारेषु कार्याणि च तोरणानि चत्वार्यपि क्षीरवनस्पतीनाम् ॥ द्वारेषु कुम्भद्वयमत्र धार्यं स्रग्गन्धधूपाम्बररत्नयुक्तम्" इति च मात्स्ये द्वारेषु कलशस्थापनादिप्रकारो निर्दिष्टः । लोकेशवर्णाश्च कुण्डतत्त्वप्रदीपे-"महेन्द्रः पिशङ्गः शिखी हेमवर्णो यमः कृष्णवर्णस्तथा निर्ऋतिश्च । हिमाभश्च सम्राट् हरिन्मातरिश्वा विचित्रो धनेशः सुगौरो महेशः ॥ विधिर्लोहितो मेघवर्णस्त्वनन्तो दिगीशानुवर्णा अमी सुप्रसिद्धाः ।" इति । ब्रह्मानन्तयोर्वाहने आयुधे च कुण्डकल्पद्रुमे "हंसस्थोऽरुणकः कमण्डलुकरः शक्रेशयोरन्तराऽनन्तोऽपांपतिरक्षसोर्यमनिभस्तार्क्ष्याधिरूढोऽरिभृत्" । इति । तार्क्ष्यो गरुडः । अरिश्चक्रम् । "पीता रक्ता श्यामा कृष्णा श्वेताऽथ धूम्राहरिते स्तः" इति कुण्डोद्द्योते सप्तम्या हरितत्वोक्तिरिति बोध्यम् ।

कलशे इन्द्रादिपूजनं द्वाररक्षणार्थं तेषां प्रार्थनं च "कुम्भेष्वावाह्य शक्रादीन् पूर्वादौ पूजयेत् क्रमात् । इन्द्रागच्छ देवराज वज्रहस्त गजस्थित ॥ पूर्वद्वारं च मे रक्ष देवैः सह नमोऽस्तु ते । त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अर्चयित्वा यजेद् बुधः" ॥ इत्यादिना अग्निपुराणे (अ० ५६) प्रदर्शितम् । अस्माभिस्तु होमावसाने तुलादानाङ्गत्वेन विहिते इन्द्रादिप्रार्थने विनियुक्ताः "एह्येहि" इत्यादयो मन्त्रा एव आदौ क्रियमाणप्रार्थनेऽपि निर्दिष्टाः । कमलाकरादिभिस्तेषामेवात्र प्रदर्शनात् ।

चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत् । इति द्वारपालानां द्वारेषु निवेशनं मात्स्ये (अ० २६५) उक्तम् । तत्पाठ्यानि च सूक्तानि एतदग्रे तत्र निर्दिष्टानि । अस्माभिस्तु पूर्वमेव प्रदर्शितत्वादत्र पुनर्न लिख्यन्ते ।

गच्छ इह तिष्ठ सुप्रतिष्ठितो वरदो भव' इत्येवं प्रतिष्ठाप्य ॐ सुदृढ-तोरणाय नम इति तं पूजयित्वा तत्र राहुबृहस्पती न्यस्य कलशं संस्थाप्य तत्र ध्रुवमावाह्य पूजयेत् । ततो दक्षिणद्वाराभिमुखे स्थापितं चक्राङ्कितं तोरणं स्पृष्ट्वा 'इषेत्वा' इत्यादि 'पशून् पाहि' इत्यन्तं पठित्वा 'एतन्ते' इति सुभद्रतोरणत्वेन प्रतिष्ठाप्य पूजयित्वा सूर्याङ्गारकौ न्यस्य कलशं संस्थाप्य धरामावाह्य पूजयेत् । ततः पश्चिमद्वाराभिमुखे स्थापितं गदाङ्कितं तोरणं स्पृष्ट्वा "अग्नआयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि" ।

इति पठित्वा 'एतन्ते' इति सुकर्मतोरणत्वेन प्रतिष्ठाप्य पूजयित्वा शुक्रबुधौ न्यस्य कलशं संस्थाप्य वाक्पतिमावाह्य पूजयेत् । तत उत्तरद्वाराभिमुखे स्थापितं पद्माङ्कितं तोरणं स्पृष्ट्वा "शन्नोदेवी।" इति पठित्वा 'एतन्ते' इति सुहोत्रतोरणत्वेन प्रतिष्ठाप्य पूजयित्वा तत्र सोमकेतुशनीन् न्यस्य कलशं संस्थाप्य विघ्नेशमावाह्य पूजयेत् ।

ततः पूर्वद्वारे उत्तरदक्षिणयोः शाखयोः क्रमेणैकैकं कलशं संस्थाप्य तत्रैरावतं संपूज्य—

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः ।
अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥

इति मन्त्रेणाऽऽहूय ऋग्वेदिनौ द्वारपालौ जापकौ च प्राच्ये 'अग्निमीळे' (पृ० ५०) इति गन्धादिना पूजयेत् । तत इन्द्रं ध्यात्वा—

'एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश ।
संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाऽध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

भो इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ' इतीन्द्रम् उत्तरदक्षिणयोः कलशयोः क्रमेणाऽऽवाह्य प्रतिष्ठाप्य "ॐ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् । संक्रन्दनो

ऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः।”(१) इति पीतां वज्राङ्कितां पताकां पीतं हस्त्यङ्कितं च ध्वजमुच्छ्रित्य (२)“त्रातारमिन्द्रम्” इति ॐ इन्द्राय नम इति वा इन्द्रं सम्पूज्य–

इन्द्रः सुरपतिश्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः ।
शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥

इति नत्वा ‘साङ्गाय सपरिवाराय इन्द्राय एष माषभक्त—(दध्यक्षत) बलिर्नमः’ इति बलिं समर्प्य आचामेत् । तत आग्नेये कलशं संस्थाप्य पुण्डरीकममृतं च तत्र पूजयित्वाऽग्निं ध्यात्वा–

‘एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्ट ।
तेजोवता लोकगणेन सार्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते ॥

भो अग्ने इहागच्छ इह तिष्ठ’ इति कलशेऽग्निमावाह्य प्रतिष्ठाप्य “अग्निं दूतम्” इति रक्तां शक्त्यङ्कितां पताकां रक्तं छागाङ्कितं च ध्वजमुच्छ्रित्य–तेनैव अग्नये नम इति वाऽग्निं सम्पूज्य—

‘आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः ।
धूमकेतुरजोऽध्यक्षस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥’

इति नत्वा ‘साङ्गाय सपरिवाराय अग्नये एष माषभक्त—(दध्यक्षत) बलिर्नमः’ इति बलिं समर्प्य आचामेत् । ततो दक्षिणद्वारे पूर्वपश्चिमयोः शाखयोः क्रमेण कलशद्वयं संस्थाप्य तत्र वामनदिग्गजं सम्पूज्य—

‘कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः ।

---

(१) पूर्वं विहितं पताकारोपणमुत्तरतः, ध्वजारोपणं च दक्षिणतः । प्रादक्षिण्यानुरोधात् ।

(२) “त्रातारमिन्द्रम्” इत्यादय इन्द्रादिलोकपालमन्त्राः सं० दी० प्र० (पृ० २२५–२२७) द्रष्टव्याः । “अग्निर्मूर्धेति मन्त्रेण यजेद्वा अग्नये नमः” इत्यग्निपुराणे (अ० ५६) नाममन्त्राणामपि तत्पूजने पाक्षिकत्वेन मध्येमध्ये विनियुक्तत्वात् अस्माभिरपि तथैव ते निर्दिष्टाः । “मन्त्रैस्तु लोकपालानां पताका विनियोजयेत्” इति स्मृतिकौस्तुभे सारसङ्ग्रहोक्तेः पताकारोपणे लोकपालमन्त्राणां विहितत्वात् सर्वे एव तन्मन्त्रास्तत्र विनियोगार्हाः । एवं तुल्यन्यायाद् ध्वजारोपणेऽपि बोध्यम् ।

काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥'

इति यजुर्वेदिनौ द्वारपालौ जापकौ च प्रार्थ्य 'इषेत्वोर्ज्जेत्वा' इति पूजयेत्। ततो यमं ध्यात्वा—

"एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चित धर्ममूर्ते।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते॥

भो यम इहागच्छ इह तिष्ठ" इति यममावाह्य प्रतिष्ठाप्य "**आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः**" इति मन्त्रेण कृष्णां दण्डाङ्कितां पताकां कृष्णं महिषाङ्कितं च ध्वजमुच्छ्रित्य '**असि यमो ऽअस्यादित्यः**' इति यमाय नम इति वा मन्त्रेण यमं संपूज्य—

'महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम्।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥'

इति नत्वा 'साङ्गाय सपरिवाराय यमाय एष माषभक्त—(दध्यक्षत) बलिर्नमः' इति बलिं समर्प्य आचामेत्। ततो नैर्ऋत्यां कलशं संस्थाप्य तत्र कुमुदं दुर्जयं च पूजयित्वा निर्ऋतिं ध्यात्वा—

'एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः।
ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते॥

भो निर्ऋते इहागच्छ इह तिष्ठ' इत्यावाह्य प्रतिष्ठाप्य "**मो षूण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः। महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः**" इति नीलां खड्गाङ्कितां पताकां नीलं सिंहाङ्कितं ध्वजं चोच्छ्रित्य '**एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व**' इति निर्ऋतये नम इति वा मन्त्रेण निर्ऋतिं संपूज्य—

'निर्ऋतिं खड्गहस्तं च सर्वलोकैकपावनम्।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥'

इति नत्वा "साङ्गाय सपरिवाराय निर्ऋतये एष माषभक्त (दध्यक्षत) बलिर्नमः' इति बलिं समर्प्य आचामेत्। ततः पश्चिमद्वारे दक्षिणोत्तरयोः शाखयोः कलशद्वयं क्रमेण स्थापयित्वा तत्राञ्जनदि-

गर्जं सम्पूज्य—

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः ।
भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥

इति सामवेदिनौ द्वारपालौ जापकौ च प्रार्थ्य "अग्न आयाहि" इति (पृ० ५३) पूजयेत् । ततो वरुणं ध्यात्वा—

"एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्य सहाप्सरोभिः ।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते ॥"

भो वरुण इहागच्छ इह तिष्ठ" इति वरुणमावाह्य प्रतिष्ठाप्य "इमं मे वरुण" इति श्वेतां पाशाङ्कितां पताकां श्वेतं मत्स्याङ्कितं ध्वजं चोच्छ्रित्य तेनैव वरुणाय नम इति वा वरुणं संपूज्य—

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां पतिमीश्वरम् ।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् वरुणाय नमोनमः ॥

इति नत्वा 'साङ्गाय सपरिवाराय वरुणाय एष माषभक्त(दध्यक्षत) बलिर्नमः' इति बलिं समर्प्य आचामेत् । ततो वायव्यां कलशं संस्थाप्य तत्र पुष्पदन्तं सिद्धार्थं च संपूज्य वायुं ध्यात्वा—

'एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः ।
प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

भो वायो इहागच्छ इह तिष्ठ'इत्यावाह्य प्रतिष्ठाप्य "वातोवा मनोवा" इति मन्त्रेण धूम्रामङ्कुशाङ्कितां पताकां धूम्रं मृगाङ्कितं ध्वजं चोच्छ्रित्य, तेनैव वायवे नम इति वा वायुं संपूज्य—

"वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवद्गतिम् ।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥
अनाकारो महौजाश्च यश्चादृष्टगतिर्दिवि ।
तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि च ॥"

इति नत्वा 'साङ्गाय सपरिवाराय वायवे एष माषभक्त(दध्यक्षत) बलिर्नमः' इति बलिं समर्प्य आचामेत् । तत उत्तरद्वारे पश्चिमपूर्वयोः शाखयोः क्रमेण कलशद्वयं संस्थाप्य तत्र सार्वभौमं किञ्चापं संपूज्य—

'बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः ।
वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥'

इत्यथर्ववेदिनौ द्वारपालौ जापकौ च प्रार्थ्य "शन्नो देवीः" इति संपूज्य कुबेरं ध्यात्वा—

'एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम् ।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

भोः कुबेर इहागच्छ इह तिष्ठ' इत्यावाह्य प्रतिष्ठाप्य '**आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे**' इति हरितां गदाङ्कितां पताकां हरितं हयाङ्कितं ध्वजं चोच्छ्रित्य '**वयꣳ सोम**' इति कुबेराय नम इति वा कुबेरं पूजयित्वा—

सर्वनक्षत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः ।
तस्मै सोमाय देवाय नक्षत्रपतये नमः ॥

इति नत्वा 'साङ्गाय सपरिवाराय कुबेराय एष माषभक्त-(दध्यक्षत) बलिर्नमः' इति बलिं समर्प्य आचामेत् । तत ऐशान्यां कलशं निधाय तत्र सुप्रतीकं मङ्गलं च संपूज्य ईशानं ध्यात्वा—

'एह्येहि यज्ञेश्वर नस्त्रिशूलकपालखट्वाङ्गधरेण सार्धम् ।
लोकेन यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

भो ईशान इहागच्छ इह तिष्ठ' इत्यावाह्य प्रतिष्ठाप्य "**तमीशानम्**" इति श्वेतां त्रिशूलाङ्कितां पताकां श्वेतं वृषाङ्कितं ध्वजं चोच्छ्रित्य तेनैव ईशानाय नम इति वा ईशानं संपूज्य—

वृषस्कन्धसमारूढ शूलहस्त त्रिलोचन ।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥
सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्ल ईश्वरः ।
शूलपाणिर्विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

इति नत्वा 'साङ्गाय सपरिवाराय ईशानाय एष माषभक्त-(दध्यक्षत) बलिर्नमः' इति बलिं समर्प्य आचामेत् । ततः पूर्वे-

शानयोर्मध्ये (१) ब्रह्माणं ध्यात्वा—

'एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र लोकेन सार्धं पितृदेवताभिः ।
सर्वस्य धाताऽस्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥

भो ब्रह्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ' इति ब्रह्माणमावाह्य प्रतिष्ठाप्य "ब्रह्म जज्ञानम्" इति रक्तां कमण्डल्वङ्कितां पताकां रक्तं हंसाङ्कितं ध्वजं चोच्छ्रित्य तेनैव ब्रह्मणे नम इति वा ब्रह्माणमभ्यर्च्य—

पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदावासः पितामहः ।
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥

इति नत्वा 'साङ्गाय सपरिवाराय ब्रह्मणे एष भाषभक्त (दध्यक्षत) बलिर्नमः' इति बलिं समर्प्य आचामेत् । ततः पश्चिमनैर्ऋतमध्येऽनन्तं ध्यात्वा—

एह्येहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान ।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसङ्घैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥

---

(१) मदनरत्ने तु ईशानपूजनानन्तरं पश्चिमनैर्ऋतमध्ये अनन्तपूजनमुक्त्वा पूर्वेशानमध्ये ब्रह्मपूजनमुक्तम् । मत्स्यपुराणे (२६४) ईशानमन्त्रानन्तरमनन्तमन्त्रस्य तदनन्तरं च ब्रह्ममन्त्रस्योल्लेखात् । दानकमलाकरे तु प्रादक्षिण्यानुरोधेन पूर्वोक्तमत्स्यपुराणीयपाठक्रमानुरोधेन च ईशानपूजनानन्तरम् ईशानपूर्वयोर्मध्ये अनन्तपूजनमुल्लिख्य ततः पश्चिमनैर्ऋतमध्ये ब्रह्मपूजनमुल्लिखितम् । नारायणभट्टीये तु प्रयोगे ईशानपूजनानन्तरम् "ब्रह्मन्नागच्छ हंसस्थ स्रुक्स्रुवव्यग्रहस्तक । सलोकोर्ध्वां दिशं रक्ष यज्ञस्याज नमोऽस्तु ते । अधोदिशं रक्ष रक्ष अनन्तेश नमोऽस्तु ते" इति अग्निपुराणे(५६) ऊर्ध्वाधोदिग्रक्षकत्वेन क्रमेण ब्रह्मानन्तयोरुल्लेखात् 'अन्यत्र च ईशानपूजनानन्तरम् ब्रह्मपूजनस्य दृष्टत्वाच्च पश्चिमनैर्ऋतमध्यमूर्ध्वत्वेनोल्लिख्य तत्र ब्रह्मपूजनमभिधाय पूर्वेशानमध्यं चाधस्त्वेनोल्लिख्य तत्रानन्तपूजनमभिहितम् । अस्माभिस्तु "ब्रह्माणं च ततः स्थाप्य पूर्वेशान्योस्तु मध्यमे । प्रतीचीनैर्ऋतीमध्ये अनन्तं स्थापयेदिति" इति सङ्ग्रहे, "हंसस्थोऽरुणकः कमण्डलुकरः शक्रेशयोरन्तराऽनन्तोऽपांपतिरक्षसोर्यमनिभस्तार्क्ष्याधिरूढोऽरिभृत्" इति कुण्डकल्पद्रुमादौ च पूर्वेशानमध्ये ब्रह्मण ईशानपूजनानन्तरं पूजनस्य विहितत्वात् ततः पश्चिमनैर्ऋतमध्येऽनन्तपूजनस्य च विहितत्वात्तथैव निर्दिष्टम् । प्रादक्षिण्यं चैवं सत्यनुगृह्यते । मत्स्यपुराणीयपाठक्रमस्तु अन्यत्रदृष्टश्रौतक्रमानुरोधाद्बाधनीय इति दिक् ।

भो अनन्त इहागच्छ इह तिष्ठ' इत्यावाह्य प्रतिष्ठाप्य "आऽयं गौः" इति पूर्वोक्तमन्त्रेण मेघवर्णां चक्राङ्कितां पताकां गरुडाङ्कितं मेघवर्णं ध्वजं चोच्छ्रित्य "नमोऽस्तु सर्पेभ्यः" इति अनन्ताय नम इति वा मन्त्रेण पूजयित्वा—

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।
पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति नत्वा—

'साङ्गाय सपरिवाराय अनन्ताय एष माषभक्त(दध्यक्षत) बलिर्नमः' इति बलिं समर्प्य आचामेत् ।

ततः "**इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ ऽआदित्यानां मरुताᳬं शर्धऽउग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्**" इति महाध्वजमुच्छ्रित्य '**ब्रह्म जज्ञानम्**' इति तत्र ब्रह्माणं सम्पूज्य मण्डपस्तम्भेषु सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, वंशेषु किन्नरेभ्यो नमः, पृष्ठे पन्नगेभ्यो नमः इति पूजयेत् ।

ततः पूर्वस्यां किञ्चिद् भूमिमुपलिप्य करसम्पुटं कृत्वा—

'त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥
सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदाऽन्विताः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपालगणैः सह ॥
रक्षन्तु मण्डपं सर्वे घ्नन्तु रक्षांसि सर्वतः । इति प्रार्थ्य—
त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ।

त्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । ब्रह्मणे नमः । विष्णवे नमः । शिवाय नमः । देवेभ्यो नमः । दानवेभ्यो नमः । गन्धर्वेभ्यो नमः । यक्षेभ्यो नमः । राक्षसेभ्यो नमः । पन्नगेभ्यो नमः । ऋषिभ्यो नमः । मनुष्येभ्यो नमः । गोभ्यो नमः । देवमातृभ्यो नमः । इति संपूज्य 'एष माषभक्त (दध्यक्षत) बलिर्नमः'

इति वर्ति समर्प्य आचामेत् ।

ततो यजमानः प्राग्द्वारेण मण्डपं प्रविश्य दक्षिणद्वारपश्चिमे उत्तराभिमुख उपविश्य 'यथाविहितं कर्म कुरुत' इत्याचार्यादीन् प्रेषयेत् । तत आचार्यः होमकुण्डस्य ईशानकोणे (१) कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणं संपूज्य 'यजेथाम्' इति होतारौ 'उत्कृष्टमन्त्रजप्येन तिष्ठध्वम्' इति जापकान्' 'पठध्वम्' इति द्वारपालांश्च प्रेषयेत् । अथ जापका आकर्मसमाप्ति स्वस्वशाखीयपूर्वोक्तशान्तिकाध्यायजपं कुर्युः । द्वारपालाश्च स्वस्वशाखीयश्रीसूक्तादिपाठं कुर्युः । तत आचार्यः देशकालौ संकीर्त्य अमुकतुलादानकर्मण्यग्निप्रतिष्ठां करिष्ये, तदङ्गतया मेखलायोनिदेवतानां स्थापनं पूजनं च करिष्ये इति सङ्कल्प्य होमवेद्यां पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वा उपरिमेखलायां श्वेतवर्णालङ्कृतायाम् 'इदं विष्णुः' इति विष्णुं, मध्यमेखलायां रक्तवर्णालङ्कृतायां'ब्रह्मजज्ञानम्'इति ब्रह्माणम् , अधोमेखलायां कृष्णवर्णालङ्कृतायां'नमस्ते रुद्र' इति रुद्रं, योन्यां रक्तवर्णालङ्कृतायाम् 'अम्बे अम्बिके' इत्युमामावाह्य संपूज्य अग्निं स्थापयेत् । तत आचार्यः ईशानकोणस्थितायाः ग्रहवेद्याः पश्चिमदिशि प्राङ्मुख उपविश्य वेद्यामष्टदलं पद्मं विलिख्य ग्रहयागप्रयोगोक्तरीत्या (सं०दी० प्र०पृ० १६४) ग्रहान् अधिदेवताः प्रत्यधिदेवताः विनायकादिपञ्चलोकपालान् वास्तोष्पतिं क्षेत्राधिपतिमिन्द्रादिदिक्पालांश्चावाह्य स्थापयेत् । तत इन्द्रस्य दक्षिणेन ध्रुवाद्यष्टवसून्, इन्द्रेशानयोर्मध्ये धात्रादिद्वादशादित्यान् , अग्नेर्यमस्य च मध्ये वीरभद्राद्येकादशरुद्रान् , कुबेरवाय्वोर्मध्ये आवहादिसप्तमरुद्गणांश्च व्याहृतिभिरावाह्य तत्तन्नाममन्त्रेण स्थापयेत् (१) । यमनिर्ऋति-

(१) "कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि" इत्युपक्रम्य "समेखलायोनियुतानि कुर्यात् सम्पूर्णकुम्भानि सहासनानि" इति मात्स्यवचनेन (२७४) कुण्डसमीपेऽपि कलशस्थापनविधानात् । "ततो मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः" इति विहितं (मत्स्य० २७४) स्नानं च एतत्कलशोदकेनैवेति हेमाद्रिः ।

(१) इन्द्रस्य दक्षिणे पार्श्वे वसूनावाहयेद् बुधः । ध्रुवोऽध्वरस्तथा

मध्ये मातृपीठं निर्ऋतेरुत्तरे गणेशपीठं च स्थापयेत् । ततो वेदिमध्ये यथावकाशं ब्रह्माच्युतशिवांश्च सौवर्णप्रतिमासु वक्ष्यमाण(६४)होममन्त्रैर्नाममन्त्रैर्वा स्थापयेत् । तत्सन्निधावेवार्कं वनस्पतिं च पूगफलादौ होममन्त्रेण नाममन्त्रेण वा स्थापयेत् । तत ऐशान्यां होमरहितग्रहपूजाप्रयोगोक्तकलशस्थापनविधिना (सं० दी० प्र० पृ० १४६) कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणमावाह्य ब्रह्मादिवर्जं सर्वान् "एतन्ते" इति प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् । ततो रक्षाविधानप्रयोगोक्तरीत्या (१५१) रक्षासूत्राणि अभिमन्त्र्य कलशे स्थापयेत् । ततो ब्रह्माच्युतशिवानामर्कवनस्पत्योश्च पूजनं कर्तव्यम् । तद्यथा—

सोम आपश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।

देवेशेशानयोर्मध्ये आदित्यानां तथाऽयनम् ॥ धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा । इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः ॥ ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः । इत्येते द्वादशादित्या नामभिः परिकीर्तिताः ॥

अग्नेः पश्चिमतो भागे रुद्राणामयनं विदुः । वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरीशश्च महायशाः ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः । भुवनाधीश्वरश्चैव कपाली च विशांपतिः ॥ स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः ।

प्रेतेशरक्षसोर्मध्ये मातृस्थानं प्रकल्पयेत् ॥ मातॄणां नामानि च गौर्यादीनि प्रथमभागे द्रष्टव्यानि ।

निर्ऋतेरुत्तरे भागे गणेशायतनं विदुः । कुबेरमरुतोर्मध्ये मरुतां स्थानमुच्यते ॥ मरुतो नाम ते देवा गणा वै सप्त सप्तकाः । आवहः प्रवहश्चैव उद्वहः संवहस्तथा ॥ विवहः सुवहश्चैव तथा परिवहोऽनिलः । इति हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे वस्वादयो देवा निर्दिष्टाः ।

ग्रहादीनां पूजनं च "पूर्वोत्तरे हस्तमिता च वेदी ग्रहादिदेवेश्वरपूजनाय । अत्रार्चनं ब्रह्मशिवाच्युतानाम्" (२७४) इति मात्स्ये उक्तम् । 'ग्रहादि' इत्यादिशब्देन पूर्वोक्तानां सर्वेषां सङ्ग्रहः । "विनायकादिग्रह—लोकपाल—वस्वष्टकादित्य—मरुद्गणानाम् । ब्रह्माच्युतेशार्कवनस्पतीनां स्वमन्त्रतो होमचतुष्टयं स्यात्" इति तत्रैवोत्तरत्र सर्वेषां होमविधानात् । अत एव वचनात् अर्कवनस्पत्योरपि सङ्ग्रहः ।

अनुक्तमन्त्रकाणां ध्रुवादीनां तु प्रणवादिभिश्चतुर्थ्यन्तैर्नामभिर्नमोऽन्तैः स्थापनादि विधेयमिति हेमाद्रिः । तेषां चतुर्थ्यन्तस्वरूपाणि तु अग्रे होमप्रयोगे (६४) द्रष्टव्यानि ।

"पद्मपत्रासनस्थश्च ब्रह्मा कार्यश्चतुर्मुखः ।
अक्षमालास्रजं बिभ्रत्पुस्तकं च कमण्डलुम् ॥
वासः कृष्णाजिनं तस्य पार्श्वे हंसस्तथैव च ।

इति ब्रह्माणं,

प्रदक्षिणं दक्षिणाधःकरादारभ्य नित्यशः ।
विष्णुः कौमोदकी–पद्म–शङ्ख–चक्रैरलङ्कृतः ॥

इति विष्णुं,

पञ्चवक्त्रो वृषारूढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः ।
कपालशूलखट्वाङ्गी चन्द्रमौलिः सदाशिवः ॥

इति शिवं,

रविः कार्यः शुभश्मश्रुः सिन्दूरारुणसुप्रभः ।
पद्मासनः पद्मकरो भूषितो रशनाधरः ॥

इति सूर्यं, वनस्पतये नमः इति वनस्पतिं च ध्यात्वा होममन्त्रैः-(६४) नाममन्त्रैर्वा सर्वान् पूजयेत् । ततो वेद्युपरि फलपुष्पोपशोभितं वितानं दद्यात् । अथाचार्यो ब्रह्मोपवेशनादिपर्युक्षणान्तं कर्म कृत्वा संस्रवधारणार्थं प्रोक्षणीपात्रं प्रणीताऽग्न्योर्मध्ये निदध्यात् ।

ततो यजमानोऽद्येह तुलादानयागेनाहं यक्ष्ये । तत्र प्रजापतिम्, इन्द्रम्, अग्निं, सोमम्, आज्येन–आदित्यादिनवग्रहान्, ईश्वराद्यधिदेवताः, अग्न्यादिप्रत्यधिदेवताः, विनायकादिपञ्चलोकपालान्, इन्द्रादिदशदिक्पालान्, (विश्वकर्माणम्), ध्रुवाद्यष्टवसून्, धात्रादिद्वादशादित्यान्, वीरभद्राद्येकादशरुद्रान्, आवहादिसप्तमरुद्गणान्, ब्रह्मविष्णुशिवसूर्यवनस्पतींश्च समिदाज्यतिलैः (तिलैरेव मदनरत्ने) अष्टोत्तरशत–अष्टाविंशति–द्वादशान्यतमसङ्ख्यया—शेषेण स्विष्टकृतम्—अग्निं, वायुं, सूर्यम्, अग्नीवरुणौ, अग्नीवरुणौ, अग्निम्, वरुणं सवितारं विष्णुं विश्वान् देवान् मरुतः स्वर्कान्, वरुणं, प्रजापतिं चाज्येनाहं यक्ष्ये । एतत् समिदाज्यतिलद्रव्यं पूर्वाङ्गदेवताभ्यः प्रधानदेवताभ्य उत्तराङ्गदेवताभ्यश्च मया परित्यक्तं यथादैवतमस्तु न मम इति द्रव्यदेवताभिध्यानपूर्वकं द्रव्यत्यागं कुर्यात् ।

तत आचार्यः बलवर्धननामानमग्निं 'एतन्ते' इति प्रतिष्ठाप्य कुशकण्डिकाप्रयोगोक्तरीत्या (सं० प्र० पृ० १७०) अग्निं रेखाः अग्निजिह्वाश्च संपूज्य दक्षिणं जान्वाच्य ब्रह्मणाऽन्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ आघारावाज्यभागौ च जुहुयात्। तत आचार्यः आज्येन ऋत्विजौ च समित्तिलाभ्याम् "आकृष्णेन"इत्यादिभिः (सं० प्र० पृ० २०९) ग्रहयागोक्तरीत्या ग्रहादिदिक्पालान्तानाम् अष्टोत्तरशत–अष्टाविंशति–द्वादशान्यतमसङ्ख्यया होमं कृत्वा ॐध्रुवाय स्वाहा, अध्वराय० सोमाय० अद्भ्यः० अनिलाय० अनलाय० प्रत्यूषाय० प्रभासाय० इति वसूनाम्, ॐधात्रे स्वाहा, अर्यम्णे० मित्राय० वरुणाय० अंशाय० भगाय० इन्द्राय० विवस्वते० पूष्णे० पर्जन्याय० त्वष्ट्रे० विष्णवे० इति द्वादशादित्यानाम्, ॐवीरभद्राय स्वाहा, शम्भवे० गिरीशाय० अजैकपदे० अहिर्बुध्न्याय० पिनाकिने० भुवनाधीश्वराय० कपालिने० विशांपतये० स्थाणवे० भगाय० इति रुद्राणाम्, ॐआवहाय स्वाहा, प्रवहाय० उद्वहाय० संवहाय० विवहाय० सुवहाय० परिवहाय० इति मरुद्गणानाम्, ॐ'ब्रह्मजज्ञानम्'इति ब्रह्मणः 'इदं विष्णुः' इति विष्णोः "**ॐइमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे ऽअस्मिन्ननातुरम्**" इति रुद्रस्य '**आकृष्णेन**' इति सूर्यस्य "**ॐवनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया ऽअस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः। गोभिः सन्नद्धो ऽअसि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि**" इति वनस्पतेश्च स्वाहान्तैः पूर्वोक्तान्यतमसंख्यया होमं कुर्युः(१)।

---

(१) ग्रहादयो द्वात्रिंशत्। इन्द्रादयो दश। वस्वष्टकम्। द्वादशादित्याः। एकादश रुद्राः। सप्त मरुद्गणाः। पञ्च ब्रह्मादयः इत्येवं पञ्चाशीतिसङ्ख्येभ्यो देवेभ्यः द्वादशाहुतिपक्षमाश्रित्य होमकरणे विंशत्यधिकसहस्राहुतय इति हेमाद्रौ अभिधानात् गौर्यादीनां मातॄणां पूजनमेव न होमः। रूपनारायणीये तु एकादशरुद्रेभ्योऽपि होमो नोक्तः। तन्मते ७४ देवाः।

"जप्यानि सूक्तानि तथैव चैषामनुक्रमेणैव यथास्वरूपम्" इति मात्स्ये (२७४) अभिधानात् होमकर्तृभिः एषां होमानन्तरं तत्तद्दैवतानि सूक्तान्यपि पाठ्यानि। सूक्ताभावे तद्दैवताको मन्त्र एव पठनीय इति बोध्यम्।

ततो होमकर्तारः सूर्यादिवनस्पत्यन्तदेवताकानि सूक्तानि जपेयुः। सूक्ताभावे तद्देवताको मन्त्र एव पठनीयः।

अथ जप्यसूक्तानि। तत्र विभ्राडित्यादिकस्य सप्तदशर्चस्य रविसूक्तस्याद्याया विभ्राट्, ततस्तिसृणां प्रस्कण्वः, पञ्चम्याः अवत्सारः काश्यपः, षष्ठ्या वेनः, सप्तम्याः कुत्सः, अष्टम्या अगस्त्यः, नवम्याः श्रुतकक्षसुकक्षौ, दशम्याः प्रस्कण्वः, ततो द्वयोः कुत्सः, ततो द्वयोर्जमदग्निः, पञ्चदश्याः नृमेधः, षोडश्याः कुत्सः, अन्त्याया हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः इति ऋषयः—आद्यायाः पञ्चम्याश्च जगती, द्वितीयादितिसृणां नवम्या दशम्याश्च गायत्री, त्रयोदशीपञ्चदश्योर्बृहती, चतुर्दश्याः सतोबृहती, शिष्टानां सप्तानां त्रिष्टुप् इति छन्दांसि—सर्वासां सूर्यो देवता सूर्यप्रीतये जपे विनियोगः।

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहृतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति ॥१॥ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥ येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२॥ अनु। त्वं वरुण पश्यसि ॥ ३ ॥ दैव्यावध्वर्यू आगतꣳ रथेन सूर्यत्वचा। मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे ॥ ४ ॥ तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम्। प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्द्धसे ॥ ५ ॥ अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने। इममपाꣳ सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥६॥ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षꣳ सूर्य ऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ७ ॥ आ न ऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव ऽएतु। अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥ ८ ॥ यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा ऽअभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ९ ॥ तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमाभासि रोचनम् ॥ १० ॥ तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततꣳ संज-

भार । यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री व्वासस्तनुते सिमस्मै ॥११॥ तन्मित्रस्य व्वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे । अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ १२ ॥ व्वण्महाँ २॥ असि सूर्य्य व्वडादित्य महाँ २॥ असि । महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२॥ असि ॥ १३ ॥ व्वट् सूर्य्य श्रवसा महाँ२॥ असि सत्रा देव महाँ २॥ असि । मह्ना देवानामसुर्य्यः पुरोहितो व्विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ १४ ॥ श्रायन्त ऽइव सूर्य्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । व्वसूनि जाते जनमान ऽओजसा प्रति भागं न दीधिम॥ १५॥ अद्या देवा ऽउदिता सूर्य्यस्य निरꣳहसः पिपृता निरवद्यात् । तन्नो मित्रो व्वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी ऽउत द्यौः ॥ १६ ॥ आ कृष्णेन रजसा व्वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ १७ ॥ (य० सं० अ० ३३ मन्त्राः ३०–४३) । ५–६–७ त्रयः प्रतीकोक्ताः ।

अषाढमित्यादिकस्य, ऋक्चतुष्टयात्मकस्य सोमसूक्तस्य गौतम ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः सोमो देवता सोमप्रीतये ज० वि० ।

अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिꣳ स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् । भरेषुजाꣳ सुक्षितिꣳ सुश्रवसं जयन्तं त्वामनुमदेम सोम ॥ १ ॥ सोमो धेनुꣳ सोमो ऽअर्वन्तमाशुꣳ सोमो व्वीरं कर्मण्यं ददाति । सादन्यं विदथ्यꣳ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २ ॥ त्वमिमा ऽओषधीः सोम व्विश्वास्त्वमपो ऽअजनयस्त्वं गाः । त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो व्ववर्थ ॥ ३ ॥ देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳ सहसावन्नभियुध्य । मा त्वातनदीशिषे व्वीर्य्यस्योभयेभ्यः प्रचिकित्सा गविष्टौ ॥ ४ ॥ (य० सं० अ० ३४ मं० २०–२३) ।

मङ्गलस्य सूक्ताभावात्(१) (सं० दी० प्र० २१०) अग्निर्मूर्धेति मन्त्रस्य जपः ।

---

(१) एकदेवतास्तुतिप्रयोजक ऋक्समुदायः सूक्तम् । तद् मङ्गलदेवताया यजुःसंहितायां नास्तीति तत्पूजनादौ विनियुक्तो मन्त्र एव पठनीय इत्यर्थः । एवमुत्तरत्र सर्वत्र बोध्यम् ।

बुधस्य सूक्ताभावात् उद्बुध्यस्वेति मन्त्रस्य जपः ।

गुरोः सूक्ताभावात् बृहस्पते इति मन्त्रजपः ।

शुक्रस्य सूक्ताभावात् अन्नात्परीति मन्त्रजपः ।

शनेः सूक्ताभावात् शंनोदेवीरिति मन्त्रजपः ।

कयान इत्यादितृचस्य राहुसूक्तस्य वामदेव ऋषिर्गायत्री छन्दो राहुर्देवता राहुप्रीतये ज० वि० ।

कया नश्चित्र ऽआभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥ अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥ ३ ॥ (य० सं० अ० २७ म० ३९–४१) ।

केतोः सूक्ताभावात् (सं० दी० २१३) केतुं कृण्वन्निति मन्त्रजपः ।

अथाधिदेवतानाम् । तत्र नमस्ते रुद्रेत्यादिकस्यानुवाकात्मकषोडशर्चस्य रुद्रसूक्तस्य परमेष्ठी ऋषिः—आद्यायाः गायत्री, ततस्तिसृणामनुष्टुप्, ततस्तिसृणां पङ्क्तिः, ततः सप्तानामनुष्टुप्, ततो द्वयोर्जगती इति छन्दांसि—सर्वासामेकरुद्रो देवता—रुद्रप्रीतये जपे वि० ।

नमस्ते रुद्र मन्यव ऽउतो त ऽइषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ २ ॥ यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥ शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छावदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना ऽअसत् ॥ ४ ॥ अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् । अहीꣳश्च सर्वाञ्जम्भयन् सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ॥ ५ ॥ असौ यस्ताम्रो ऽअरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः । ये चैनꣳ रुद्रा ऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ऽईमहे ॥ ६ ॥ असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा ऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः सदृष्टो मृडयाति नः ॥ ७ ॥ नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये ऽअस्य सत्त्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥ ८ ॥ प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् । याश्च ते हस्त ऽइषवः परा ता भगवो

ऽवप ॥ ९ ॥ विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ ॥ उत । अनेशन्नस्य या ऽइषव ऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥ १० ॥ या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयाऽस्मान् विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥ ११ ॥ परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् वृणक्तु विश्वतः । अथो य ऽइषुधिस्तवारे ऽअस्मन्निधेहि तम् ॥ १२ ॥ अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ १३ ॥ नमस्त ऽआयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥ १४ ॥ मा नो महान्तमुत मा नो ऽअर्भकं मा न ऽउक्षन्तमुत मा न ऽउक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ १५ ॥ मा नस्तोके तनये मा न ऽआयुषि मा नो गोषु मा नो ऽअश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ १६ ॥ (य० सं० अ० १६ म० १–१६) उदकस्प० ।

चन्द्राधिदेवतोमायाः सूक्ताभावात् (सं० दी० प्र० २१४) श्रीश्चते इति मन्त्रजपः ।

भौमाधिदेवस्कन्दस्य सूक्ताभावात् (२१५) यदक्रन्द इति मन्त्रस्य जपः ।

सहस्रशीर्षेत्यादिकस्य षोडशर्चस्य विष्णुसूक्तस्य नारायण ऋषिरन्त्यायास्त्रिष्टुप् छन्दः शिष्टानामनुष्टुप् छन्दो नारायणपुरुषो देवता विष्णुप्रीतये जपे वि० ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिꣳ सर्वतस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥ पुरुष ऽएवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥ एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥ त्रिपादूर्ध्व ऽउदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने ऽअभि ॥ ४ ॥ ततो विराडजायत विराजो ऽअधि पूरुषः । स जातो ऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।

पशूँस्ताँश्चक्रे व्वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऽऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दाᳬंसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥ तस्मादश्वा ऽअजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ऽअजावयः ॥ ८ ॥ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा ऽअयजन्त साध्या ऽऋषयश्च ये ॥ ९ ॥ यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा ऽउच्येते ॥ १० ॥ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬं शूद्रो ऽअजायत ॥११॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो ऽअजायत । श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥ नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षᳬ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २ ॥ अकल्पयन् ॥ १३ ॥ यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । व्वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥ (य० सं० अ० ३१ म० १–१६)

जीवाधिदेवब्रह्मणः सूक्ताभावात् (२१६) ब्रह्मजज्ञानमितिमन्त्रजपः ।

आशुरित्यादिकस्य द्वादशर्चस्य शक्रसूक्तस्याप्रतिरथ ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः शक्रो देवता इन्द्रप्रीतये ज० वि० ।

आशुः शिशानो व्वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् । संक्रन्दनोऽनिमिष ऽएकवीरः शतᳬ सेना ऽअजयत् साकमिन्द्रः ॥ १ ॥ संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना । तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर ऽइषुहस्तेन व्वृष्णा ॥ २ ॥ स ऽइषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सᳬंस्रष्टा सयुध ऽइन्द्रो गणेन । सᳬसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥ बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहाऽमित्राँ २ ॥ अपबाधमा-

नः । प्रभञ्जन् सेनाः प्रमृणो .युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ४ ॥ बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान ऽउग्रः । अभिवीरो ऽअभिसत्त्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥ ५ ॥ गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा । इमꣳ सजाता ऽअनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायो ऽअनु सꣳरभध्वम् ॥ ६ ॥ अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो व्वीरः शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकꣳ सेना ऽअवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥ इन्द्र ऽआसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर ऽएतु सोमः । देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ८ ॥ इन्द्रस्य व्वृष्णो व्वरुणस्य राज्ञ ऽआदित्यानां मरुताꣳ शर्द्ध ऽउग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ९ ॥ उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्त्वनां मामकानां मनाꣳसि । उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ १० ॥ अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या ऽइषवस्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ२ ॥ उ देवा ऽअवता हवेषु ॥ ११ ॥ अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि । अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १२ ॥ (य० सं० अ० १७ म० ३३–४४) ।

शनैश्चराधिदेवयमस्य सूक्ताभावात् (२१७) असि यम इति मन्त्रजपः । उदकस्पर्शः ।

राहुग्रहाधिदेवकालस्य सूक्ताभावात् (२१८) कार्षिरसीति मन्त्रजपः । उदकस्पर्शः ।

केतुग्रहाधिदेवचित्रगुप्तस्य सूक्ताभावात् चित्रावसो इतिमन्त्रजपः ।

अथ प्रत्यधिदेवतानाम् । तत्र सूर्यप्रत्यधिदेवताग्नेः अस्याजरास इत्यादिसप्तदशर्चस्य सूक्तस्याद्याया वत्सप्रीर्ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः, द्वितीयाया त्रिरूप ऋषिर्गायत्री छन्दः, तृतीयाया गौतम ऋषिर्गायत्री छन्दः, चतुर्थ्या विरूप ऋषिर्गायत्री छन्दः, पञ्चम्याः कुत्स ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः, षष्ठ्या वामदेव ऋषिः एकोना जगती छन्दः, सप्त-

म्या विश्वामित्र ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, अष्टम्या भरद्वाजऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, नवम्या भरद्वाजऋषिर्गायत्री छन्दः, दशम्या मेधातिथिऋषिर्गायत्री छन्दः, एकादश्याः शाक्त्यः पराशर ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः, द्वादश्या अत्रिदुहिता विश्ववारा ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः, त्रयोदश्या भरद्वाज ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः, चतुर्दश्या वसिष्ठ ऋषिः बृहती छन्दः, पञ्चदश्याः प्रस्कण्व ऋषिः बृहती छन्दः, षोडश्या वामदेव ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः, सप्तदश्या लुशोधानाक ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः सर्वासामग्निर्देवता अग्निप्रीतये जपे वि० ।

अस्याजरासो दमामरित्रा ऽअर्चद्धूमासो ऽअग्नयः पावकाः । श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो व्वनर्षदो व्वायवो न सोमाः ॥ १ ॥ हरयो धूमकेतवो व्वातजूता ऽउप द्यवि । य॒तन्ते वृथगग्नयः ॥२॥ य॒जा नो मित्रावरुणा य॒जा देवाँ२॥ ऋतं बृहत् । अग्ने य॒क्षि स्वं दमम् ॥३॥ .युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२॥ अश्वाँ२॥ अग्ने रथीरिव । निहोता पूर्व्यः सदः ॥४॥ द्वे व्विरूपे चरतः स्वर्थे ऽअन्याऽन्या व्वत्समुपधापयेते । हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ् छुक्रो ऽअन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ ५ ॥ अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता य॒जिष्ठो ऽअध्वरेष्वीड्यः । य॒मप्नवानो भृगवो व्विरुरुचुर्वनेषु चित्रं व्विभ्वं व्विशे व्विशे ॥ ६ ॥ त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रि॒ꣳशच्च देवा नव चासपर्य्यन् । औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा ऽआदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ७ ॥ मूर्द्धानं दिवो ऽअरतिं पृथिव्या व्वैश्वानरमृत ऽआजातमग्निम् । कवि॒ꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः ॥८॥ अग्निर्वृत्राणि जंघनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र ऽआहुतः ॥ ९ ॥ व्विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न ऽइन्द्रेण व्वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥ आ यदिषे नृपतिं तेज ऽआनट् शुचिरेतो निषिक्तं द्यौरभीके । अग्निः शर्धमनवद्यं युवानꣳ स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च ॥ ११ ॥ अग्ने शर्द्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु । सं जास्पत्य॒ꣳ सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महाꣳसि ॥ १२ ॥ त्वाꣳ हि मन्द्रतममर्कशोकैर्वव्रमहे महि नः श्रोष्यग्ने । इन्द्रं न त्वा

शवसा देवता व्वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ १३ ॥ त्वे ऽअग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः। यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान् दयन्त गोनाम् ॥ १४ ॥ श्रुधि श्रुत्कर्ण व्वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः। आसीदन्तु बर्हिषि मित्रो ऽअर्य्यमा प्रातर्यावाणो ऽअध्वरम् ॥१५॥ व्विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम्। अग्निर्देवाना-मव ऽआवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः ॥ १६ ॥ महो ऽअग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे व्वरुणे स्वस्तये। श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो ऽअद्यावृणीमहे ॥ १७ ॥ (य० सं० अ० ३३ मं १-१७)

आपो हि ष्ठेत्यादिकस्य तृचस्यापसूक्तस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्री छन्द आपो देवतास्तत्प्रीतये ज० वि०। आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥ योवः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ तस्मा ऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ (य० सं० अ०११ मं०५०-५२)।

भौमप्रत्यधिदैवतभूम्याः सूक्ताभावात् (२१९ ॥ स्योना पृथिवीतिमन्त्रजपः।

बुधप्रत्यधिदैवतविष्णोः सहस्रशीर्षेत्यादिसूक्तम् (६६) प्राग्वत्।

गुरुप्रत्यधिदैवतशक्रस्य आशुरित्यादिसूक्तम् (७१) प्राग्वत्।

शुक्रप्रत्यधिदैवतशच्याः सूक्ताभावात् (२२०) अदित्यै रास्नासीतिमन्त्रजपः।

शनिप्रत्यधिदैवतप्रजापतेः सूक्ताभावात् (२२१) प्रजापते न त्वदेतानीतिमन्त्रजपः।

राहुप्रत्यधिदैवतसर्पाणां नमोऽस्त्वित्यादितृचस्य सूक्तस्य प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्री छन्दः सर्पा देवतास्तत्प्रीतये ज०वि०। नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ १ ॥ या इषवो यातुधानानां ये वा व्वनस्पतीँ१ रनु। ये वाऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ २ ॥ ये वाऽमी रोचने दिवो

ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु । येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ३ ॥ (य० सं० अ० १३ मं० ६–८)

केतुमत्यधिदैवतब्रह्मणः सूक्ताभावात् (२१६)ब्रह्म जज्ञानमित्यादिमन्त्रजपः प्राग्वत् ।

अथ लोकपालानाम् । तत्र विनायकस्य सूक्ताभावात् गणानामित्यादिमन्त्रजपः (२२२) ।

दुर्गायाः सूक्ताभावात् अम्बे इत्यादिमन्त्रजपः (२२२) ।

नियुत्वानित्यादिकस्य षड्टचस्य वायुसूक्तस्याद्याया गृत्समदः, द्वितीयायाः पुरुमीढाजमीढौ, ततस्तिसृणां प्रजापतिः, षष्ठ्या व्यश्व आङ्गिरसः इति ऋषयः—द्वितीयाया अनुष्टुप् पञ्चम्यास्त्रिष्टुप्, शिष्टानां गायत्री इति छन्दांसि–वायुर्देवता वायुप्रीतये जपे वि० ।

नियुत्वान् वायवागह्यय॒ᳪ शुक्रो ऽअयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ १ ॥ व्वायो शुक्रो ऽअयामि ते मध्वो ऽअग्रं दिविष्टिषु । आयाहि सोमपीतये स्पार्हो देवो नियुत्वता ॥ २ ॥ व्वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् । शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥ ३ ॥ व्वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ ४ ॥ एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये व्विᳪशती च । तिसृभिश्च व्वहसे त्रिᳪशता च नियुद्भिर्वायविह ता व्विमुञ्च ॥ ५ ॥ तव व्वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवाᳪस्यावृणीमहे ॥ ६ ॥ (य० सं० अ० २७ मं० २९–३४) ।

आकाशस्य सूक्ताभावात् (२२३) ऊर्ध्वा ऽअस्येतिमन्त्रजपः ।

अश्विनोः सूक्ताभावात् (२२३) या वां कशेतिमन्त्रजपः ।

अथ दिक्पालानाम् । तत्रेन्द्रस्य आशुरित्यादिसूक्तम् (७१) प्राग्वत् ।

वह्नेः (७२) अस्याजरास इत्यादिसूक्तम् प्राग्वत् ।

यमस्य सूक्ताभावात् (प्र० २१७) असि यम इतिमन्त्रजपः ।

उदकस्य०

असुन्वन्तमित्यादिकस्य तृचस्य निर्ऋतिसूक्तस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो निर्ऋतिर्देवता तत्प्रीतये जपे वि० ।

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा त ऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ १ ॥ नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके ऽअधिरोहयैनम् ॥ २ ॥ यस्यास्ते घोर ऽआसञ् जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाऽहं परिवेद व्विश्वतः ॥ ३ ॥ (य० सं० अ० १२ मं० ६२–६४)। उदकस्प. ।

वरुणस्य सूक्ताभावात् (२२५) इमं मे इत्यादिमन्त्रजपः ।

वायोः नियुत्वानित्यादि षडृचं सूक्तं (७५) प्राग्वत् ।

सोमस्य अषाढं युत्स्वित्यादि चतुर्ऋचं सूक्तं (६७) प्राग्वत् ।

ईशस्य नमस्ते रुद्र इत्यादि षोडशर्चं सूक्तं (६८) प्राग्वत् । उदकस्प० ।

ब्रह्मणः सूक्ताभावात् ब्रह्मजज्ञानमित्यादिमन्त्रजपः (२२७)।

अनन्तस्य नमोऽस्तु सर्पेभ्य इत्यादि तृचं सूक्तं(७४)प्राग्वत् ।

वसूनां सूक्ताभावात् [सुगा वो देवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः वसवो देवताः वसूनां प्रीतये जपे विनियोगः] इति ऋष्यादीनि स्मृत्वा—"सुगा वो देवाः सदना ऽअकर्म य ऽआजग्मेद॑ सवनं जुषाणाः । भरमाणा व्वहमाना हवीॅंष्यस्मे धत्त व्वसवो व्वसूनि" इति मन्त्रजपः । (य० सं० अ० ८ मं० १८) ।

रुद्राणां नमस्ते रुद्रेत्यादि षोडशर्चं (६८) प्राग्वत् । उदकस्प० ।

आदित्यानां सूक्ताभावात् [यज्ञो देवानामित्यस्य कुत्सऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः आदित्या देवताः आदित्यानां प्रीतये जपे विनियोगः] इति ऋष्यादीनि स्मृत्वा—"यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादॅ॑होश्चिद्या व्वरिवोवित्तराऽसत्" इति मन्त्रस्य जपः ।

मरुद्गणानां सूक्ताभावात् (२२४) "मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो व्विमहसः । स सुगोपातमो जनः" इति मन्त्रजपः ।

ब्रह्मणः सूक्ताभावात् (२२७) ब्रह्म जज्ञानमित्यादिमन्त्रजपः प्रागवत् ।

अच्युतस्य सहस्रशीर्षेत्यादिकं षोडशर्चं सूक्तं (६९) प्रागवत् । ईशस्य नमस्ते रुद्रेत्यादि षोडशर्चं सूक्तं (६८) प्रागवत् । उदकस्प०।

अर्कस्य विभ्राडित्यादि सप्तदशर्चं सूक्तं (६५) प्रागवत् ।

वनस्पतेः सूक्ताभावात् वनस्पते इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः वनस्पतिर्देवता वनस्पतिप्रीतये जपे विनियोगः । (य० सं० अ० २९ । मं० ५२)

"वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया ऽअस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः । गोभिः सन्नद्धो ऽअसि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि" इति मन्त्रजपः ।

ततो ब्रह्मणाऽन्वारब्ध आचार्यः सर्वाणि हवनीयद्रव्याण्येकीकृत्य 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इति स्विष्टकृतं हुत्वा भूरादिहोमं (सं० दी० प्र० १७४) कुर्यात् । ततो बर्हिर्होमं संस्रवप्राशनमग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिं प्रणीताविमोकं च कुर्यात् ।

ततो यजमानः ब्रह्मणे सहिरण्यं पूर्णपात्रं दद्यात् ।

तत आचार्यः वेदीसमीपे एव माषभक्तबलिं दध्यक्षतबलिं वा ग्रहादिवनस्पत्यन्तदेवताभ्यो दद्यात् । तत्र (१)इन्द्रादिदिक्पालवर्जं नवग्रहादिवास्तोष्पत्यन्तेभ्यः (सं० दी० प्र० २२९) ग्रहयागस्थप्रयोगोक्तरीत्या बलिदानं कृत्वा ॐ ध्रुवाय—

(साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय एष सदीपो दध्यक्षत (माषभक्त) बलिर्नमः)

इति बलिं समर्प्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो ध्रुव

(एतं सदीपं दध्यक्षत (माषभक्त) बलिं गृहाण सपरिवारस्य यजमानस्य आयुष्कर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता तुष्टिकर्ता पुष्टिकर्ता भव)

---

(१) इन्द्रादीनां विशेषतो बलिदानस्यावाहनपूर्वकस्य मात्स्ये (२७४) विहितस्यान्तेऽनुष्ठेयत्वात् ।

इति वल्युपरि जलं विसृजेत्। एवमुत्तरत्र सर्वत्र बोध्यम्। ॐअध्वराय साङ्गाय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो अध्वर एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐसोमाय साङ्गाय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भोः सोम एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत्।

ॐअद्भ्यः साङ्गाभ्यः सपरिवाराभ्यः सायुधाभ्यः सशक्तिकाभ्यः एष सदीपो दध्यक्षतबलिर्नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो आपः एतं० गृह्णीत सपरिवारस्य यजमानस्य आयुष्कर्त्र्यः क्षेमकर्त्र्यः शान्तिकर्त्र्यस्तुष्टिकर्त्र्यः पुष्टिकर्त्र्यो भवत इति वल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐअनिलाय साङ्गाय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो अनिल एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐअनलाय साङ्गाय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो अनल एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐप्रत्यूषाय साङ्गाय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भोः प्रत्यूष एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐप्रभासाय साङ्गाय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भोः प्रत्यूष एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत्।

ॐ धात्रे० नमः० इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो धातः एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐअर्यम्णे० नमः इति बलिं समर्प्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो अर्यमन् एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐ मित्राय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो मित्र एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐवरुणाय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो वरुण एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐअंशाय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो अंश एतं० भव इति बल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐभगाय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो भग एतं० भव इति बल्युपरि जलं विसृजेत्। ॐइन्द्राय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते

जलं गृहीत्वा भो भो इन्द्र एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐविवस्वते० नमः इति वलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो विवस्वन् एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐपूष्णे नमः इति वलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भोः पूषन् एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐपर्जन्याय० नमः इति वलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भोः पर्जन्य एतं० भव इति बल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐत्वष्ट्रे० नमः इति वलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भोस्त्वष्टः एतं० भव इति बल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐविष्णवे० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो विष्णो एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् ।

ॐवीरभद्राय० नमः इति वलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो वीरभद्र एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐशम्भवे० नमः इति वलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भोः शम्भो एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐगिरीशाय० नमः इति वलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो गिरीश एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐअजैकपदे० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो अजैकपाद् एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐअहिर्बुध्न्याय० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो अहिर्बुध्न्य एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐपिनाकिने० नमः इति बलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भोः पिनाकिन् एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐभुवनाधीश्वराय० नमः इति वलिं विसृज्य हस्ते जलं गृहीत्वा भो भो भुवनाधीश्वर एतं० भव इति वल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐकपालिने० नमः इति बलिं विसृज्य भो भोः कपालिन् एतं० भव इति बल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐविशांपतये० नमः इति वलिं समर्प्य भो भो विशांपते एतं० भव इति बल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐस्थाणवे नमः इति बलिं समर्प्य भो भोः स्थाणो एतं० भव इति बल्युपरि जलं विसृजेत् । ॐभगाय० नमः इति बलिं समर्प्य भो भो भग एतं० भव इति बल्युपरि जलं विसृजेत् ।

ॐ आवहाय० नमः इति वलिं समर्प्य भो भो आवह एतं० भव इति जलं विसृजेत् । ॐ प्रवहाय० नमः इति वलिं समर्प्य भो भोः प्रवह एतं० भव इति जलं विसृजेत् । ॐ उद्वहाय० नमः इति वलिं समर्प्य भो भो उद्वह एतं० भव इति जलं विसृजेत् । ॐसं-वहाय० नमः इति वलिं समर्प्य भो भोः संवह एतं० गृहाण यज-मानस्य० भव इति जलं विसृजेत् । ॐविवहाय० नमः इति वलिं समर्प्य भो भो विवह एतं० गृहाण यजमानस्य० भव इति जलं वि-सृजेत् । ॐसुवहाय नमः इति वलिं समर्प्य भो भोः सुवह एतं० गृहाण यजमानस्य० भव इति जलं विसृजेत् । ॐपरिवहाय० नमः इति वलिं समर्प्य भो भोः परिवह एतं० गृहाण यजमानस्य० भव इति जलं विसृजेत् । ॐब्रह्मणे० नमः इति वलिं समर्प्य भो भो ब्रह्मन् एतं० गृहाण यजमानस्य० भव इति जलं विसृजेत् । ॐविष्णवे नमः इति वलिं समर्प्य भो भो विष्णो एतं० गृहाण यजमानस्य० भव इति जलं विसृजेत् । ॐशिवाय० नमः इति वलिं समर्प्य भो भोः शिव एतं० गृहाण यजमानस्य० भव इति जलं विसृजेत् । ॐअर्काय० नमः इति वलिं समर्प्य भो भो अर्क एतं० गृहाण यजमानस्य० भव इति जलं विसृजेत् । ॐवनस्पतये० नमः इति वलिं समर्प्य भो भो वन-स्पते एतं० गृहाण यजमानस्य० भव इति जलं विसृजेत् । एवं वनस्पत्यन्तदेवताभ्यो दध्यक्षतवलिं दत्त्वा क्षेत्रपालाय ग्रहयागप्रयो-गोक्तरीत्या (सं० दी० प्र० पृ० २३४) कृसरवलिं दद्यात् ।

ततः आचार्यो यजमानेन सह(१)तूर्यादिवाद्यरवेषु क्रियमाणेषु गन्धपुष्पधूपादिकं माषभक्त—दध्यक्षतान्यतरं चादाय मण्डपान्तः पूर्व-दिशि 'एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैः' इत्यादिमन्त्रेण (पृ० ४७)

---

(१) होमावसाने कृततूर्यनादो गुरुर्गृहीत्वा वलिपुष्पधूपम् । आवा-हयेल्लोकपतीन् क्रमेण मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः ॥ इति मात्स्ये (२७४) होमानन्तरमावाहनपूर्वकस्य दिक्पालानां पूजनस्य वल्युपहारस्य च विशे-षतो विधानान्मण्डपपूजाकाले पूजिता अपि दिक्पालाः पुनरत्र पूजनीया इति बोध्यम् ।

इन्द्रमावाह्य ॐइन्द्राय नमः इति गन्धादिभिः संपूज्य ॐइन्द्राय सपरिवाराय एष माषभक्त (दध्यक्षत) बलिर्नमः इति बलिं दत्त्वा आग्नेये 'एह्येहि सर्वामरहव्यवाह' (पृ० ४८) इत्यादिमन्त्रेणाग्निमावाह्य ॐअग्नये नमः इति गन्धादिभिः संपूज्य 'ॐअग्नये० नमः' इति बलिं दत्त्वा दक्षिणस्यां दिशि 'एह्येहि वैवस्वत धर्मराज' इत्यादिमन्त्रेण (पृ० ४९) यममावाह्य ॐयमाय नमः इति गन्धादिभिः संपूज्य ॐयमाय० नमः इति बलिं दत्त्वा निर्ऋतिकोणे 'एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वम्' इति मन्त्रेण (पृ० ५५) निर्ऋतिमावाह्य 'ॐनिर्ऋतये नमः' इति गन्धादिभिः संपूज्य ॐनिर्ऋतये० नमः इति बलिं दत्त्वा पश्चिमायां दिशि 'एह्येहि यादोगणवारिधीनाम्' इति मन्त्रेण (५०) वरुणमावाह्य ॐवरुणाय नमः इति संपूज्य ॐवरुणाय० नमः इति बलिं दत्त्वा वायव्यकोणे 'एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय' इति मन्त्रेण (पृ०५०)वायुमावाह्य ॐवायवे नमः इति संपूज्य 'ॐवायवे० नमः' इति बलिं दत्त्वा उत्तरस्यां दिशि 'एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षाम्' इति मन्त्रेण (पृ०५१)कुबेरमावाह्य ॐकुबेराय नमःइति संपूज्य 'ॐकुबेराय० नमः' इति बलिं दत्त्वा ईशानकोणे 'एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूल' इति (पृ०५१) मन्त्रेणेशानमावाह्य 'ॐईशानाय नमः' इति संपूज्य 'ॐईशानाय० नमः' इति बलिं दत्त्वा पूर्वेशानयोर्मध्ये 'एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र' इति मन्त्रेण (पृ०५२) ब्रह्माणमावाह्य 'ॐब्रह्मणे नमः' इति संपूज्य ॐब्रह्मणे० नमः इति बलिं दत्त्वा ततो निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये 'एह्येहि पातालधरामरेन्द्र' (पृ० ५२) इत्यनन्तमावाह्य 'ॐअनन्ताय नमः' इति संपूज्य 'ॐअनन्ताय० नमः' इति बलिं दद्यात् ।

ततः पूर्वस्यां 'त्रैलोक्ये यानि भूतानि' इति पूर्वोक्तमन्त्रान्(पृ०५३) पठित्वा ॐत्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ॐत्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ब्रह्मणे० विष्णवे० शिवाय० देवेभ्यो० दानवेभ्यो० गन्धर्वेभ्यो० यक्षेभ्यो० राक्षसेभ्यो० पन्नगेभ्यो० ऋषिभ्यो० मनुष्येभ्यो० गोभ्यो० देवमातृभ्यो नमः इति संपूज्य पूर्ववन्माषभक्त(दध्यक्षत)बलिं प्रत्येकं दद्यात् ।

ततो यजमानः पादौ प्रक्षाल्याचम्य मध्यवेद्यां नानारजोभिः पूरितं षोडशारं(१) कृत्वा उपरि पञ्चवर्णवितानं च पुष्पफलयुक्तं

(१) चक्रं लिखेद्वारिजगर्भयुक्तं नानारजोभिर्भुवि पुष्पकीर्णम्। वितानकं चोपरि पञ्चवर्णं संस्थापयेत्पुष्पफलोपशोभम्॥ इति मात्स्ये (२७४) अभिधानात्। चक्रमत्र षोडशारमेव। "षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम्"। इति तत्रैव (अ० ५८) तडागोत्सर्गप्रकरणे तस्यैव विधानेनात्रापि तस्यैव ग्राह्यत्वात्।

तन्निर्माणप्रकारश्चेत्थं दानकमलाकरे। वेदिमध्ये त्रिहस्तायामं त्रिहस्तविस्तारं चतुरस्रं कृत्वा तत् प्राक्पश्चिमायताभिः दक्षिणोत्तरायताभिश्च नवरेखाभिश्चतुष्षष्टिकोष्ठात्मकं कुर्यात्। तत्र नवाङ्गुलानि सर्वाणि कोष्ठानि भवन्ति। ततश्चतुर्दिक्षु बाह्यपङ्क्तौ मध्यानि चत्वारि पदानि, उपान्त्यपङ्क्तौ च मध्यमं पदद्वयं मार्जयित्वा षट्पदानि चत्वारि द्वाराणि संपाद्य—मध्यस्थितकोष्ठषोडशके मध्यानि चत्वारि कोष्ठान्यवशेष्य द्वादश मार्जयित्वा पीठं संपाद्य बाह्यपङ्क्तौ कोणेषु एकैकं कोष्ठं विहाय द्वारसंलग्नानि पञ्चपञ्च पदानि मार्जयित्वा मध्यस्थचतुरस्रपीठस्य पादान् संपादयेत्।

ततो मध्ये त्रयोदशाङ्गुलेन, द्वादशाङ्गुलेन, सार्धनवाङ्गुलेन, चतुरङ्गुलेन, द्व्यङ्गुलेन च व्यासार्धेन षड्विंशत्यङ्गुल-चतुर्विंशत्यङ्गुल-एकोनविंशत्यङ्गुल-अष्टाङ्गुल-चतुरङ्गुलानि पञ्च वृत्तानि कुर्यात्। ततः वृत्तकेन्द्रात् चतुरस्रपीठपर्यन्तं पूर्वाद्यष्टदिक्षु तदन्तरेषु च षोडश रजोयुक्तसूत्राणि षोडशाराणां निर्माणाय दद्यात्। ततः कर्णिकात्मचतुरङ्गुलमध्यवृत्तावधिभूतां रेखां सितेन रजसा निर्माय तद्वृत्तं पीतेन रजसा पूरयित्वा अष्टाङ्गुलद्वितीयवृत्तावधिरेखां सितेन रजसा संपाद्य तद्वृत्ते पीत-रक्त-सितरजोभिः क्रमेण संपादितमूल-मध्य-अग्राणि पूर्वाद्यष्टदिक्षु तदन्तरेषु च षोडश केसराणि कुर्यात्। केसराधिष्ठितं तदनधिष्ठितं च द्वितीयवृत्तभागं पद्ममूलतया कल्पयेत्। अतस्तदनधिष्ठितं भागं सितेनैव रजसा पूरयेत्। ततः एकोनविंशत्यङ्गुलतृतीयवृत्तावधिरेखां सितेन रजसा विधाय तस्मिन् वृत्ते सितरजसाऽष्टदिक्षु अष्टौ पत्रमध्यानि कुर्यात्। ततश्चतुर्विंशत्यङ्गुलचतुर्थवृत्तावधिरेखामेकाङ्गुलां सितेन रजसा विधाय तद्वृत्ते पद्मकुण्डवद् दलाग्राणि कृत्वा तानि रक्तरजसा पूरयेत्। दलाग्राणामन्तराणि चतुर्थवृत्तस्थानि त्रिकोणाकाराणि कृष्णेन रजसा पूरयेत्। ततः षड्विंशत्यङ्गुलपञ्चमवृत्ते अष्टदिक्षु तदन्तरेषु च वृत्तकेन्द्रात् चतुरस्रपीठपर्यन्तं सूत्रदानेन संपन्नासु षोडशरेखासु यवाकारान् षोडश आरान् श्याम-पीत-रक्त-श्वेत-रजोभिः कृत्वा तदन्तरा यथाशोभं रजोभिः पूरयेत्। तद्बहिः सित-पीत-अरुण-श्याम-हरिताः पञ्च रेखा उत्तरोत्तरन्यूना लिखेत्। तत्राद्या-

दत्त्वा तत्र दक्षिणोत्तरायतायां पूर्वोक्तलक्षणायां तुलायां पूर्वोक्तरीत्या निर्मिते तोरणे तदभावे कस्मिंश्चिद्यज्ञियकाष्ठस्तम्भेऽवलम्बितायाम्- ॐतुलायै नम इति तुलादेवतामावाह्य तत्रोदक्संस्थं चतुर्विंशतिधा- तुवन्धेषु अग्न्युत्तारणपूर्वकम् अवलम्बितासु स्वर्णप्रतिमासु वा पूगी- फलेषु वा अक्षतपुञ्जेषु वा धातुवन्धेष्वेव वा दण्डे एव कल्पितेषु चतुर्विंशतिस्थानेषु वा ईशादिदेवताः, तुलादण्डप्रान्तयोरनन्तं, गोवि- न्दप्रतिमावलम्वनार्थं तुलामध्यावलम्बितशृङ्खलायां वासुकिं, यजमा- नासन–सुवर्णधारणफलकयोरधो भूमिं, फलकमध्ये भूम्यधिपतिं, फलकावलम्वनशृङ्खलासु सर्पांश्च आवाह्य 'एतन्ते' इति प्रतिष्ठाप्य ॐतुलायै नमः ॐईशाय नमः शशिने० मारुताय० रुद्राय० सूर्याय० विश्वकर्मणे० गुरवे० अङ्गिरोऽग्निभ्यां० प्रजापतये० विश्वेभ्यो देवे- भ्यो० जगद्विधात्रे० पर्जन्यशम्भुभ्यां० पितृभ्यो० सौम्याय० धर्माय० अमरराजाय० अश्विभ्यां० जलेशाय० मित्रावरुणाभ्यां० मरुद्गणेभ्यो० धनेशाय० गन्धर्वाय० जलेशाय० विष्णवे नमः इति व- न्धदेवान् सम्पूज्य, प्रान्तयो ॐअनन्ताय नमः इति प्रत्येकं मन्त्रावृत्त्या, मध्यशृङ्खलायां ॐवासुकये नमः इति वासुकिं, फलकयोरधः ॐभू- म्यै नमः इति मन्त्रावृत्त्या भूमिं, फलकमध्ये ॐभूम्यधिपतये नमः इति मन्त्रावृत्त्या भूम्यधिपतिं, शृङ्खलासु ॐसर्पेभ्यो नमः इति मन्त्रा- वृत्त्या सर्पांश्च पूजयित्वा अग्न्युत्तारितायां स्वर्णप्रतिमायां चतुर्भुज- गोविन्दम् आवाह्य 'एतन्ते' इति प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वा पुरुषसूक्तेन

मेकाङ्गुलां कुर्यात्। तद्बाह्ये पीठक्षेत्रं चतुरस्रं यथाशोभं पूरयित्वा पीठा- वधिरेखां शुक्लां दद्यात्। द्वाराणि पूर्वादितः क्रमेण पीत–श्याम–श्वेत– हरितानि कुर्यात्। कोणकोष्ठानि आग्नेयादितः क्रमेण रक्त–हरित–श्याम– सितानि कुर्यात्। पीठपादान् पञ्चकोष्ठकान् आग्नेयादितः सित–रक्त–पीत- कृष्णान् कुर्यात्। ततो वहिश्चतुरस्ररेखामङ्गुलोन्नतां सितां कुर्यात्। ततो वहिः दिक्पालानामायुधानि वज्र–शक्ति–दण्ड–खड्ग–पाश–अङ्कुश–गदा– शूलानि लिखित्वा पञ्चवर्णवितानं फलपुष्पयुतं वेदेरुपरि दद्यादिति। अत्र मूलवचनानि नारायणभट्टीये तडागोत्सर्गविधौ द्रष्टव्यानि। इदमेव वारुण- मण्डलत्वेन व्यवह्रियत इति दिक्।

ॐगोविन्दाय नमः इति नाममन्त्रेण च संपूज्य तुलामध्यशृङ्खलायां द्वादशाङ्गुलया मौक्तिकस्रजा सुवर्णशृङ्खलया वा तथा तां प्रतिमामवलम्बयेत् यथा तुलोत्तरफलकस्थितः सन् तां द्रष्टुं शक्नुयात्। ततः तुलां पीतादिवस्त्रेणाच्छाद्य अग्न्युत्तारितयोः सुवर्णप्रतिमयोः सूर्यं धर्मराजं चावाह्य प्रतिष्ठाप्य च नाममन्त्रेण पूजयेत्।

ततो ब्राह्मणाः स्वस्वशाखोक्तशान्तिं पठेयुः, ततो यजमानः तिलकुशयवजलान्यादाय देशकालौ संकीर्त्याऽमुकोऽहं कृतैतदधिवासनकर्मणः प्रतिष्ठार्थमिमां दक्षिणामृत्विग्देयदक्षिणाद्विगुणां (सति संभवे एतानि हैमकुण्डलोपवीतकटकाङ्गुलीयानि(१) वस्त्राणि च) अमुकगोत्राय अमुकवेदाय अमुकशाखाध्यायिने अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय आचार्याय तुभ्यमहं संप्रददे इत्युक्त्वा तस्मै दद्यात्। आचार्यपदस्थाने ऋत्विक्पदं प्रयुज्य तदर्धमेकैकस्मै ऋत्विजे दद्यात्।

अस्मिन् दिने सर्वे उपवासं कृत्वा रात्रौ जागरणं कुर्युः। उपवासाशक्तौ(२)नक्तभोजनम्। (३)अशक्तौ सद्य एवाधिवासनम्।

ततः प्रातर्यजमानः कृतस्नानादिक्रियः मण्डपमागत्य संक्षेपेण पुण्याहवाचनं(४) ब्राह्मणैः कारयेत्। तत आचार्यो मृडनामाग्नौ "मूर्धानं दिवः" इति मन्त्रेण (सं० दी० प्र० १७९) कुशकण्डिकाप्रयोगोक्तरीत्या पूर्णाहुतिहोमं कृत्वा महावेदेः पश्चिमभागे सकुटुम्बं यजमानं प्राङ्मुखं भद्रासनोपविष्टम् उदङ्मुखैर्ब्राह्मणैः सहोत्थाय होमकुण्डसमीपे ग्रहवेदिसमीपे च स्थापितकलशजलैर्दूर्वापल्लवयुक्तैर्वे-

---

(१) इत्यावाह्य सुरान् दद्यादृत्विग्भ्यो हेमभूषणम्। कुण्डलानि च हैमानि सूत्राणि कटकानि च॥ अङ्गुलीयपवित्राणि वासांसि शयनानि च। द्विगुणं गुरवे दद्याद् भूषणाच्छादनादि च॥ जपेयुः शान्तिकाध्यायं जापकाः सर्वतोदिशम्। उपोषितास्ततः सर्वे कृत्वैवमधिवासनम्॥ इति मात्स्ये (२७४) उक्तम्।

(२) उपवासो भवेदेवमशक्तौ नक्तमिष्यते। इति पाद्मोक्तेः।

(३) सद्योऽधिवासनं वाऽथ कुर्याद्यो विकलो नरः। इति अशक्तस्य सद्योऽधिवासनमप्युक्तं हेमाद्रौ।

(४) आदावन्ते च मध्ये च कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम। इति मात्स्ये उक्तेः।

दिकमन्त्रैः पौराणिकमन्त्रैश्च (सं० दी० प्र० २३८) मङ्गलघोषपुरःसरमभिषिञ्चेत् । मन्त्राभिषेकानन्तरं यजमानः सति सम्भवे उद्वर्तनपूर्वकं स्नायात् । अथ स्नानवस्त्रं त्यक्त्वा शुक्लमाल्याम्बरधरः सुगन्ध्यनुलिप्ताङ्गो धृततिलको यजमानः पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा तुलां त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य तत्पश्चिमे उपविश्य वक्ष्यमाणैर्मन्त्रैस्तुलामभिमन्त्रयेत्—

"ॐनमस्ते सर्वभूतानां शक्तिस्त्वं सत्यमाश्रिता ।
साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना ॥
एकतः सर्वसत्यानि तथाऽनृतशतानि च ।
धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापिताऽसि जगद्धिते ॥
त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता ।
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते ॥
योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः ।
स एकोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमोऽस्तु ते" ॥

इति पुष्पाणि तुलोपरि प्रक्षिपेत्(१) । ततः पुष्पाणि संगृह्य—

"ॐनमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक ।
त्वं हरे तारयस्वास्मान् अस्मात्संसारसागरात् ॥"

इति तुलागोविन्दोपरि पुष्पाणि क्षिप्त्वा पुनस्तुलां प्रदक्षिणीकृत्योभयोः पार्श्वयोस्तुलां समीकृत्य अलङ्कृतो यजमानो दक्षिणहस्ते सूर्यं वामे धर्मराजं चादाय उत्सङ्गे इष्टदेवतां गृहीत्वा उत्तरफलके प्राङ्मुखोपविष्टः तुलामध्यशृङ्खलावलम्बितं गोविन्दं पश्यन्नासीत। दक्षिणफलके तु ऋत्विजः समादधिकं सुवर्णं प्रक्षिपेयुः । पुष्टिकामश्चेद्यजमानस्तदा यावता भूमिस्थितं सुवर्णफलकं भवति तावत् प्रक्षिपेयुः । ततस्तुलायामेव क्षणमात्रं स्थितः—

'ॐनमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि ।
पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥

---

(१) ततो मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः । त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥ शुक्लमाल्याम्बरधरस्तां तुलामभिमन्त्रयेत् । इत्यादि सर्वं मात्स्ये (२७४) उक्तम् ।

त्वया धृतं जगत् सर्वं सह स्थावरजङ्गमम् ।
सर्वभूताधिभूतस्थे नमस्ते भूतधारिणि ॥'

इति मत्स्यपुराणोक्तं श्लोकद्वयं पठित्वा "ॐपुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु व्विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ १ ॥ पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूँ २ ॥ रनु ॥ २ ॥ यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने व्विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ३ ॥ (य० सं० अ० १९ मं० ३९–४१) इति तृचं च हेमाद्रौ अग्निपुराणे विहितं पठित्वा—

यथा पवित्रमतुलमपत्यं जातवेदसः ।
तथा स्वेन पवित्रेण सुवर्णं हि पुनातु माम् ॥
रुद्रस्य सुमहत्तेजः कार्तिकेयस्य संभवः । तथा स्वेन० ॥
पवित्रत्वाद्यथा देवैः शिरसा धार्यते सदा । तथा स्वेन० ॥
यथाऽग्निर्देवताः सर्वास्सुवर्णं च तदात्मकम् । तथा स्वेन० ॥
यत्कृतं मे स्वकायेन मनसा वचसा तथा ।
दुष्कृतं सत्सुवर्णस्थं यातु मुक्तिं परां शुभाम् ॥

इति वह्निपुराणोक्तान् मन्त्रांश्च पठेत् ।

ततस्तुलाफलकादवतीर्य वेदिपश्चिमभागे प्राङ्मुख आसने उपविश्य सुवर्णं संप्रोक्ष्य संपूज्य कुशयवतिलकुसुमजलान्यादाय देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं मम आत्मनः सकलब्रह्महत्यादिपापक्षयपूर्वकं मन्वन्तरकालावच्छिन्नसर्वलोकपालस्थानाधिकरणकनिवासोत्तरकालाप्सरोगणाधिष्ठितकलरणत्कनककिङ्किणीगणमण्डितार्कवर्णसवर्णविमानकरणकवैकुण्ठभुवनगमनानन्तरकल्पकोटिशतावच्छिन्नतल्लोकभोगोत्तरकालाखिलभूपालमौलिमाणिक्यमालोपरञ्जितचरणपीठत्वविशेषितराजराजत्व–श्रद्धानुविद्धयज्ञसहस्रयाजित्व–प्रदीप्तप्रतापानलाशेषमहीपालविजयप्राप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् अमुकगोत्रायामुकवेदायामुकशाखाध्यायिने अमुकशर्मणे ब्राह्मणायाचार्याय एतदुपकल्पितोपकरणालङ्कारसहितमिदं तुलितसुवर्णस्यार्धं तुभ्यं संप्रददे न ममेति उदङ्मुखोपविष्टस्याचार्यस्य हस्ते कुशयवतिलकुसुमजलानि दद्यात् ।

एवमपरमर्धं ब्रह्मादिभ्यस्त्रिभ्य ऋत्विग्भ्यो विभज्य समांशेन आचार्यपदस्थाने ब्रह्मपदम् ऋत्विक्पदं च प्रयुज्य संकल्पपूर्वकं दद्यात्(१) ।

"प्राप्य तेषामनुज्ञां च तथाऽन्येभ्योऽपि दापयेत्" इति मात्स्योक्तद्वितीयपक्षाश्रयणे (२) तुलापुरुषद्रव्यं त्रेधा विभज्य एकं तृतीयं भागमाचार्याय, अपरं तृतीयं भागं समांशेन विभज्य ब्रह्मादित्रिभ्य ऋत्विग्भ्यः, तदपरं तृतीयं भागं जापकद्वारपालेभ्यो दद्यात् । अस्मिन्पक्षे श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् इत्यन्तमुच्चार्य एतदुपकल्पितोपकरणादियुक्तमेतत्तुलितसुवर्णतृतीयांशममुकगोत्राय० आचार्याय तुभ्यमहं संप्रददे इत्येकमंशमाचार्याय दद्यात् । एवं ब्रह्मादिऋत्विग्भ्य एतत्तुलितसुवर्णतृतीयांशं समांशेन विभज्य संप्रददे इति दद्यात् । ततो जापकद्वारपालेभ्य एतत्तुलितसुवर्णतृतीयांशं यथांशेन विभज्य संप्रददे इति दद्यात् ।

तेषामेवानुज्ञया "दीनाऽनाथविशिष्टादीन् पूजयेत् ब्राह्मणैः सह" इति तत्रैवोक्तप्रचलिततृतीयपक्षाश्रयणे(३) श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमित्यन्तमुच्चार्य एतदुपकल्पितोपकरणादियुक्तमेतत्तुलितसुवर्णचतुर्थभागममुकगोत्राय० आचार्याय ,एतत्तुलितसुवर्णचतुर्थभागम् अमुकामुकगोत्रेभ्यः० ब्रह्मादिऋत्विग्भ्यः० एतत्तुलितसुवर्णार्धम् अमुकामुकगोत्रेभ्यो जापकद्वारपालादिभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सुवासिनीभ्यो दीनानाथविशिष्टेभ्यो ब्राह्मणातिरिक्तेभ्यश्च संप्रददे इति आचार्यादिब्राह्मणहस्तेषु जलादीनि दद्यात् ।

---

(१) ततोऽवतीर्य गुरवे पूर्वमर्धं निवेदयेत् । ऋत्विग्भ्योऽपरमर्धं तु दद्यादुदकपूर्वकम् ॥ इति मात्स्यवचनमेतत्पक्षाश्रयणे मूलम् ।

(२) अन्यशब्देन जापकानां द्वारपालानां च ग्रहणात् । द्वारपालानां पृथग्वरणाभावे जापका एव ग्राह्या इति बोध्यम् ।

(३) अत्र विकल्पवाचकपदाश्रवणेऽपि पक्षान्तराश्रयणेनार्थाद्विकल्पः सिध्यतीति हेमाद्रिः । "न चिरं धारयेद् गेहे सुवर्णं प्रोक्षितं बुधः" इति मात्स्यवचनात्तुलितं सुवर्णं शीघ्रं परस्वीकुर्यात् ।

आचार्यादयः स्वस्तीत्युक्त्वा स्वकीयं सुवर्णभागं स्पृष्ट्वा— **"देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि"** 'इदमग्नये प्रतिगृह्णामि' इति प्रतिगृह्य **"कोऽदात् कस्मा ऽअदात् कामोऽदात् कामायादात्। कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते"** इति कामस्तुतिं पठेयुः।

ततः कृतैतत्तुलापुरुषमहादानकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्संपूर्णफलप्राप्तये दक्षिणार्थं परिकल्पितं ग्रामं, मुक्ताद्येकजातीयरत्नसहस्र—(१) कृष्णलादिसहस्रपरिमितसुवर्णान्यतरच्च अमुकामुकगोत्रेभ्यः० ब्राह्मणेभ्य आचार्यादिभ्यो यथांशं विभज्य संप्रददे इति दद्यात्। ते च स्वस्वशाखोक्तमन्त्रपाठपुरःसरं स्वंस्वमंशं प्रतिगृह्णीयुः। सति सम्भवे (२)सहस्रब्राह्मणभोजनसंकल्पं कुर्यात्। ततो नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽन्येभ्यश्च अस्य कर्मणो न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं

---

(१) "गुरवे ग्रामरत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेद्।" इति मात्स्ये संख्याविशेषानुपादानात् गोपथब्राह्मणे च 'अलंकारं कर्त्रे दद्यात् सहस्रं दक्षिणां ग्रामवरं च" इत्युक्तसहस्रसंख्यायाः संख्येयाश्रवणात् परस्पराकाङ्क्षया, शाखान्तरे सहस्ररत्नानां दक्षिणास्थानश्रुतेश्च रत्नसहस्रमेव न्याय्यम्। तच्च यथाशक्ति यथालाभं मुक्ताद्यन्यतमैकजातीयमेव। ज्योतिष्टोमे गवामिव एकजातीयानामेव संख्यासम्बन्धादिति केचित्। ग्रामरत्नानीत्यत्र रत्नशब्दस्य श्रेष्ठतावाचित्वात् 'सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृता" इति वचनात् सुवर्णसहस्रमेव दक्षिणात्वेन ग्राह्यम्। सहस्रसंख्या च तस्य रक्तिकातः प्रभृति यथाशक्ति संपादनीया। नपुंसकसुवर्णशब्दस्य हिरण्यसामान्यवाचित्वात् इत्यन्ये। पक्षद्वयमपि हेमाद्रौ उपन्यस्तम्।

(२) "ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान्" इति लैङ्गे तुलादानप्रकरणे ब्राह्मणभोजनश्रवणात् अन्यत्रापि तदुपसंहारस्य न्याय्यत्वात् अवश्यकर्तव्ये ब्राह्मणानां भोजने तत्संख्याऽऽकाङ्क्षायां "ततः सहस्रं विप्राणामथवाऽष्टशतं तथा। भोजनीयं यथाशक्ति पञ्चाशद्वाऽथ विंशतिः" इति तडागोत्सर्गोक्तमात्स्यवचनोपात्तसङ्ख्यासंबन्धे मुख्यकल्पे सहस्रसंख्यासम्बन्धो लभ्यते इति सति सम्भवे तावतो भोजयेत्। जापकेषु तत्रत्यसंख्याऽनतिदेशवादिनां रत्नाकरादीनां मते तु ब्राह्मणेष्वपि तत्रत्यसंख्यानतिदेश एवेति बोध्यम्।

भूयसीं दक्षिणां संप्रददे इति दद्यात् । ततः संक्षिप्तपुण्याहवाचनं कृत्वा पूजोपकरणानि गृहीत्वा ग्रहवेदीमुपगम्य यजमानः उत्तराङ्गत्वेन ग्रहादीन् पूजयेत् । तत आचार्यः पूजान्ते—

'यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् ।
इष्टकामसमृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥'

इति ग्रहादीन् तुलास्थांश्च देवान् विसृजेत् । ततो यजमानः **'तनूपा ऽअग्नेऽसि'** इत्यादिभिः सप्तभिर्मन्त्रैः (सं० दी० प्र० १८१) ललाटात् चिबुकपर्यन्तं मुखं पाणिप्रतपनपूर्वकं मार्जयित्वा 'ॐअङ्गानि च म ऽआप्यायन्ताम्' इत्यादिभिरङ्गाप्यायनं च कृत्वा स्रुवलग्नं सघृतं भस्म अनामिकयाऽऽदाय त्र्यायुषकरणं कुर्यात् । **"यज्ञ यज्ञं गच्छ". "गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ"** इत्यग्निं विसृज्य घृते छायां दृष्ट्वा तिलकरक्षाबन्धनाशीर्वादमन्त्रपाठादिकं कारयेत् । ग्रहपीठं प्रतिमा मण्डपवितानादि च आचार्याय दत्त्वा 'यस्य स्मृत्या' 'प्रमादात् कुर्वतां कर्म' 'चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च' इतीश्वरार्पणं कृत्वा भुञ्जीत इति ।

इति सहोमतुलादानप्रयोगः ।

तुलादाने नवकुण्डीपक्षस्य नृपक्षत्रियपरत्वाच्चतुष्कुण्ड्याश्च बह्वायाससाध्यत्वादेककुण्डपक्षमाश्रित्यैव माध्यन्दिनशाखिनामनुष्ठेयस्तुलादानप्रयोगो निरूपितः । एककुण्डपक्षश्च—

एकं वा शिवकाष्ठायां प्रतीच्यां वाऽपि कारयेत् ।

इति सोमशम्भौ, नवकुण्डी–पञ्चकुण्डीपक्षद्वयमुक्त्वा—

'अथवा दिशि कुण्डमुत्तरस्यां प्रविदध्याच् चतुरस्रमेकमेव'

इति मूलागमे चाभिहितः । तदनुसारी तुलादानप्रयोगश्च रामचन्द्रभट्टादिभिः प्रदर्शितः ।ताननुसृत्यैवास्माभिरपि सुसाधत्वात्तथैव प्रयोगोऽभिहितः ।

तत्र च मण्डपसत्त्वे जापकद्वारपाला भवन्ति, तदभावे तु न भवन्ति इति कमलाकरादयः । भवन्त्येवेति हेमाद्र्यादयः ।

कुण्डस्याप्यभावे स्थण्डिलं कुर्यात् । तत्र च मेखलादिकं न कर्तव्यमिति **रामचन्द्रभट्टादयः** ।

स्थण्डिले मेखला कार्या कुण्डोक्ता स्थण्डिलाकृतिः ।
योनिस्तत्र न कर्तव्या कुण्डवत्तन्त्रवेदिभिः ॥

इति सूतसंहितावचनात्,

समेखलं स्थण्डिलं तु प्रशस्तं होमकर्मणि ।
कण्ठं तु वर्जयेत्तत्र खाते कण्ठः प्रकीर्तितः ॥

इति वचनान्तराच्च योनिकण्ठयोर्निषेधेऽपि मेखला भवत्येवेति कुण्डोद्द्योते नीलकण्ठः ।

रजततुलादानमपि पूर्वोक्तस्वर्णतुलोक्तेनैव विधिना कार्यम् ।

अनेनैव विधानेन केचिद्रूप्यमयं पुनः ।
कर्पूरेण तथेच्छन्ति केचिद्ब्राह्मणपुङ्गवाः ॥

इति हेमाद्रौ **भविष्योत्तरवचनात्** । अत्र सर्वकामसिद्धिः पापक्षयो विष्णुलोकावाप्तिश्च फलम् ।

एवं मुक्तादिनवरत्नतुलास्वपि ।

आत्मतुल्यं सुवर्णं वा रजतं रत्नमेव वा ।
यो ददाति द्विजातिभ्यस्तस्याप्येतत् फलं भवेत् ॥

इति **विष्णुधर्मोक्तेः** । तेन रजततुलादानादावपि महादानत्वसिद्धिरिति । रजतादितुलादाने 'यथा पवित्रमतुलम्' इत्यादिमन्त्रपाठो न भवति । विलिङ्गत्वात् ।

अथ होमरहिततुलादानप्रयोगः ।

तुलादानं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ।
यद् गौर्याऽऽचरितं पूर्वं लक्ष्म्या नारायणेन च ।
पुण्यं दिनमथासाद्य तृतीयायां विशेषतः ।
गोमयेनानुलिप्तायां भूमौ कुर्याद् घटं शुभम् ॥
दारुजं शुभवृक्षस्य चतुर्हस्तप्रमाणतः ।
सुवर्णं तत्र बध्नीयात् स्वशक्त्या घटितं घटे ।
सौवर्णं स्थापयेत्तत्र वासुदेवं चतुर्भुजम् ।

शिक्यद्वयं तु वध्नीयात् स्थापयेत् पिटके ततः ॥
तत्रारुहेत् सवस्त्रास्त्रः सर्वालङ्कारभूषितः ।
अभीष्टां देवतां गृह्य स्नापयित्वा घृतादिभिः ॥
तुलापुरुषदानस्य विधिरेष प्रकीर्तितः ।

इति **विष्णुधर्मोत्तरे** वचनात्,

तथा सिततृतीयायां नार्यः सौभाग्यदां तुलाम् ।
कुङ्कुमेन प्रयच्छन्ति लवणेन गुडेन वा ॥
न तत्र मन्त्रा होमो वा एवमेव प्रदापयेत् ।

इति भविष्योत्तरवचनाच्च होमादिरहितोऽपि तुलादानविधिर्भवतीति गम्यते ।

अतस्तदनुसारेण घृतादितुलादानप्रयोगो लिख्यते ।

तत्र करिष्यमाणतुलादानदिनात् पूर्वदिने कृतैकभक्तादिनियमश्चन्द्रतारानुकूले शुभदिने पूर्वोक्तलक्षणं तोरणं तदभावे यज्ञियदारुक्षोद्भवं पञ्चहस्तमितं स्तम्भं, सार्धचतुर्हस्तमितां पूर्वोक्तलक्षणां तुलां च संपाद्य एकहस्तमितं गर्तं कृत्वा तस्मिन् स्तम्भं निखन्य तत्र दक्षिणोत्तरायतां तुलां रज्ज्वादिनाऽवलम्ब्य तुलाद्रव्यस्थापनार्थं यजमानावस्थित्यर्थं च शिक्यद्वयं काष्ठादिफलकयुगयुतं रज्ज्वादिना तथा तुलायामवलम्बयेत्, यथा भूमेः प्रादेशमात्रोच्चतां दध्यात् ।

ततः कृतनित्यक्रियो यजमानः गोमयमृत्तिकादिना सुलिप्तायां भूमौ शुद्धासने प्राङ्मुख उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याऽऽचम्य ब्राह्मणद्वारा शान्तिपाठं (स्वस्तिवाचनं) कारयित्वा सुमुखश्चेत्यादिना गणेशादिभ्यो देवेभ्यः पुष्पाञ्जलिं समर्प्य तुलादानकर्मणो निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं यथाविधि गणेशं सम्पूज्य प्रधानसंकल्पं कुर्यात् ।

अद्येहेत्यादिना देशकालौ संकीर्त्यामुकशर्माऽहं मम(१)आत्मनो दुष्टग्रहपीडाद्यखिलरोगादिनिवृत्तिपूर्वकदीर्घायुष्यप्राप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थममुकतुलादानं करिष्ये तदङ्गत्वेन गणपतिसहितगौर्यादि-

(१) पुत्राद्यरिष्टनिवारणार्थं तुलादानाचरणे ममेत्यनन्तरम् अस्येत्यादिना पुत्रादेर्नामादि निर्दिशेत् ।

षोडशमातृणां पूजनं नान्दीश्राद्धं पुण्याहवाचनं कलशे नवग्रहपूजनम् आचार्यवरणमङ्गदेवतापूजनं च करिष्ये इति संकल्प्य पूर्वोक्तविधिना ग्रहपूजनान्तानि कृत्वा तत्प्रतिग्रहार्थम् आचार्य्यस्य पूजनपूर्वकं वरणं करिष्ये इति संकल्प्य आचार्य्यं गन्धादिना पूजयेत् । ततः एभिर्गन्धाक्षतपुष्पपूगीफलयज्ञोपवीतपुष्पमालावासोऽलंकरणद्रव्यैः अमुकतुलादानप्रतिग्रहार्थम् अमुकगोत्रम् अमुकवेदाध्यायिनम् अमुकशर्म्माणम् आचार्य्यत्वेन त्वामहं वृणे इति वृणुयात् । वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् । तत आचार्य्यं प्रार्थयेत्—

आचार्य्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः ।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्य्यो भव सुव्रत ॥

इति । ततः सुवर्णनिर्मितां मृत्युञ्जयप्रतिमां गोविन्दप्रतिमां च अग्न्युत्तारणपूर्वकं स्थाल्यां निधाय पञ्चामृतेन पयः पृथिव्यामित्यादिमन्त्रैः संस्नाप्य पूजयेत् ।

तत्र संकल्पः—अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं मम दुष्टग्रहजनिताखिलरोगनिवृत्तिपूर्वकदीर्घायुष्यप्राप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीतये करिष्यमाणतुलादानकर्मणि सुवर्णप्रतिमयोः मृत्युञ्जयदेवस्य गोविन्ददेवस्य च पूजनं करिष्ये । सुवर्णप्रतिमयोः मृत्युञ्जयदेवं गोविन्ददेवं च 'एतन्त इत्यादिना' प्रतिष्ठाप्य ध्यानम् ।

(१)मृत्युञ्जयश्च देवोऽयं चतुर्बाहुस्त्रिलोचनः ।
अक्षमालाधरो देवो दक्षिणेन तु पाणिना ॥
वामेनामृतकुण्डीं च धारयन्नमृतान्विताम् ।
वरदाभयपाणिश्च दिव्याभरणभूषितः ॥
शुक्लः सुनीलवासाश्च पद्मस्योपरि संस्थितः ।

---

(१) इदं ध्यानम्, ॐ जॉं हृदयाय नमः इत्यादिन्यासः, ॐ जूँसः इति तान्त्रिकमन्त्रेण पूजनं, जयादिशक्तिपूजनं च मदनरत्नादौ देवीपुराणेऽभिहितम् । पञ्चामृतेन स्नापनं, चन्दनागरुकर्पूराद्युपचाराः, 'देवदेव' इत्यादिप्रार्थनं च स्कन्दपुराणोक्तं तत्रैव । अयमेव मृत्युञ्जयप्रार्त्तविधिः सर्वेषु मृत्युञ्जयोक्तदानेषु कर्तव्यत्वेन स्मृत इति ।

इति मृत्युञ्जयं ध्यात्वा गोविन्दं ध्यायेत्—

अधश्चक्रं गदामूर्ध्वे दक्षिणे वामयोः क्रमात् ।
ऊर्ध्वे शंखमधः पद्मं गोविन्दः कपिलाङ्गकः ॥

इति । एवं ध्यात्वा मृत्युञ्जयप्रतिमायाम् आत्मनि च न्यासं कुर्यात् । ॐजाँ हृदयाय नमः ॐजीँ शिरसे स्वाहा ॐजूँ शिखायै वषट् ॐजैँ कवचाय हुम् ॐजौँ नेत्रत्रयाय वौषट् ॐजः अस्त्राय फट् इति देवे आत्मनि च न्यासं विधाय 'ॐजूँसः'इति तान्त्रिकेण ॐत्र्यम्बकमिति वैदिकेन च मन्त्रेण पाद्यादिभिर्मृत्युञ्जयं पूजयेत् । सुगन्धिजलेन स्नानम् । ततश्चन्दनागरुकर्पूरकङ्कोलमृगनाभिभिर्विलेपनम् । अक्षतैर्जात्यादिपुष्पैः बिल्वपत्रादिभिश्च संपूज्य धूपदीपनैवेद्यताम्बूलदक्षिणादि निवेद्य आवरणपूजां कुर्यात्—प्रागादिप्रादक्षिण्येन ॐजयायै नमः ॐविजयायै नमः ॐअजितायै नमः ॐअपराजितायै नमः ॐभद्रकाल्यै नमः ॐकपालिन्यै नमः ॐक्षेम्यायै नमः ॐमृत्युपराजितायै नमः इति सम्पूज्य मृत्युञ्जयं प्रार्थयेत्—

देवदेव जगन्नाथ कृपालो परमेश्वर ।
मामुद्धरस्व संसारपङ्कसंकोचदुःखितम् ॥

इति, त्र्यम्बकमिति च संप्रार्थ्य—

ॐगोविन्दाय नमः इति मन्त्रेण पुरुषसूक्तेन च पाद्यादि नीराजनान्तं गोविन्दं संपूज्य (१)तोलनीयघृतादिद्रव्याधिदेवतां

---

(१)तत्र लोहस्याधिदेवता महाभैरवः, कांस्यस्य रङ्गस्य च अश्विनौ, सीसस्य वायुः, ताम्रस्य सूर्यः, पित्तलस्य भौमः, रजतस्य पितरः, सुवर्णस्य सर्वदेवताः, फलानां सोमः, गुडस्य आपः, ताम्बूलस्य विनायकः, पुष्पाणां गन्धर्वाः, काष्ठस्य अग्निः, माक्षिकमधुनो यक्षाः, घृतस्य मृत्युञ्जयः, दुग्धस्य तारागणाः, दध्नः सर्पाः, पिष्टस्य प्रजापतिः, अन्नस्य सर्वदेवताः इति गरुडपुराणे तोलनीयद्रव्याधिदेवता निर्दिष्टाः ।

लोहादितुलादानानां फलविशेषाश्च गारुडोक्ताः प्रयोगान्ते प्रदर्शयिष्यन्ते ।

"तुलापुरुषदानं तु शृणु मृत्युञ्जयोद्भवम्" इत्युपक्रम्य सर्वेषामेव घृताम्रादितुलादानानां निर्दिष्टत्वात् मध्ये मृत्युञ्जयपूजाविधिमुक्त्वा 'मृत्युञ्जयोक्तदानेषु सर्वेष्वेवं विधिः स्मृतः' इत्युपसंहाराच्च सर्वत्रैव मृत्युञ्जयपूजनस्यावश्यकत्वलाभात्तथैव प्रयोगो दर्शितः ।

मृत्युञ्जयादिकां घृतादौ सम्पूज्य गोविन्दप्रतिमां तुलामध्यावलम्बितशृङ्खलायां तथा सूत्रादिनाऽवलम्बयेत्, यथा तुलोत्तरपिटके स्थितस्तां द्रष्टुं शक्नुयात्। ततः 'एतन्त' इत्याद्युच्चार्य्य तुले सुप्रतिष्ठिता भव इति प्रतिष्ठाप्य ॐतुलायै नमः इति गन्धाक्षतपुष्पैः सम्पूज्य रक्तादिवस्त्रेण तुलां समाच्छाद्य तुलायामुत्तरवृद्ध्या ईशादिचतुर्विंशतिदेवताः वक्ष्यमाणनाममन्त्रैः आवाह्य प्रतिष्ठाप्य पूजयेत्—ॐईशाय नमः १ ॐशशिने नमः २ ॐमारुताय नमः ३ ॐरुद्राय नमः ४ ॐसूर्य्याय नमः ५ ॐविश्वकर्मणे नमः ६ ॐ गुरवे नमः ७ ॐअङ्गिरोऽग्निभ्यां नमः ८ ॐप्रजापतये नमः ९ ॐविश्वेभ्योदेवेभ्यो नमः १० ॐजगद्विधात्रे नमः ११ ॐपर्जन्यशम्भुभ्यां नमः १२ ॐपितृदेवताभ्यो नमः १३ ॐसोमाय नमः १४ ॐधर्म्माय नमः १५ ॐअमरराजाय नमः १६ ॐअश्विभ्यां नमः १७ ॐजलेशाय नमः १८ ॐमित्रावरुणाभ्यां नमः १९ ॐमरुद्गणेभ्यो नमः २० ॐधनेशाय नमः २१ ॐगन्धर्वाय नमः २२ ॐजलेशाय नमः २३ ॐविष्णवे नमः २४ इति सम्पूज्य तुलामध्यशृङ्खलायाम् ॐवासुकये नमः इति वासुकिं, तुलाप्रान्तयोः ॐअनन्ताय नमः इति मन्त्रावृत्त्या अनन्तं, पिटकाधोभागे 'ॐभूम्यै नमः' इति भूमिं, पिटकमध्ये 'ॐभूम्यधिपतये नमः' इति भूम्यधिपतिं, पिटकशृङ्खलासु 'ॐसर्पेभ्यो नमः' इति मन्त्रावृत्त्या सर्पांश्च सम्पूज्य ततः शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनो गृहीतकुसुमाञ्जलिर्यजमानस्त्रिवारं तुलां प्रदक्षिणीकृत्य तुलामभिमन्त्रयेत्—

लोहतुलायां विशेषस्तु प्रतिग्रहीतुः हृदये, शिरसि, ललाटे जिह्वामूले, गण्डयोः, नाभौ, ब्रह्मगुह्ये च इत्यष्टके ॐजूँसः इति मन्त्रं न्यस्य षष्टिपलिकं पञ्चाशत्पलिकं वा हस्तमात्रं लोहदण्डम् अन्नमिश्रितं कृत्वा वस्त्रेणाच्छाद्य तुलितलोहेन सह आचार्याय दद्यादिति। यमदण्डनिवृत्तिश्च दण्डदानफलमुक्तं तत्रैव।

स्कन्दपुराणे तु "आत्मानं तोलयित्वा तु दद्याल्लोहं च तत्समम्। द्विजाय शिवभक्ताय यद्वाऽन्यस्मै द्विजातये॥ पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतम्" इति विशेषाऽभिहितः लोहतुलायाम् इति दिक्।

ॐ नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमाश्रिता ।
साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता परमेष्ठिना ॥
एकतः सर्वसत्यानि तथाऽनृतशतानि च ।
धर्म्माधर्म्मकृतां मध्ये स्थापिताऽसि जगद्धिते ॥
त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्त्तिता ।
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते ।
योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः ।
स एषोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमोऽस्तु ते ॥

इति तुलोपरि पुष्पाणि क्षिप्त्वा पुनः पुष्पाणि संगृह्य गोविन्दं प्रार्थयेत्—

ॐ नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक ।
त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरात् ॥

इत्यञ्जलिस्थानि पुष्पाणि तुलास्थगोविन्दोपर्यवकीर्य्य पुनः प्रदक्षिणीकृत्य अङ्के (१)स्वेष्टदेवमादाय प्राङ्मुखस्तुलाया उत्तरभागे वस्त्रास्तृते गृहीतकुसुमाञ्जलिः सूत्रेण गोमयादिना वा तुलायामवलम्बिताया गोविन्दप्रतिमाया मुखं पश्यन् सावधानतयाऽऽसीत । दक्षिणभागे समादधिकं तोलनीयताम्र—घृतादिद्रव्यमाचार्यादिः स्थापयेत् । पुष्टिकामे यजमाने भूमिसंस्थं यावता दक्षिणपिटकं भवति तावत्स्थापयेत् । ततस्तुलायां क्षणमात्रं स्थित्वा मन्त्रं पठेत् ।

ॐ नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि ।
पितामहेन देवि त्वं निर्मिता विश्वयोनिना ॥
त्वया धृतं जगत्सर्वं सह स्थावरजङ्गमैः ।
सर्वभूतात्मभूतेशे नमस्ते विश्वधारिणि ॥

इति पठित्वाऽवतीर्य्य गन्धपुष्पादिभिस्तोलितद्रव्यं (२)संपूज्य

---

(१)'तत्रारुहेत् सवस्त्रास्त्रः पुष्पालङ्कारभूषितः । अभीष्टां देवतां गृह्य स्नापयित्वा घृतादिभिः ॥' इति सामान्यतुलादाने विष्णुधर्मोत्तरे इष्टदेवताग्रहणमात्रस्यैव निर्देशान्न सूर्यधर्मराजयोरत्र ग्रहणमिति बोध्यम् ।

(२)"योऽर्चितः प्रतिगृह्णाति अर्चयित्वा प्रयच्छति । उभौ तौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥" इति दानकमलाकरे मनुवचनात् ।

वस्त्रेणावेष्ट्य संकल्पं कुर्य्यात् । अद्येहेत्यादिना देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं मम (अस्य शिशोरिति वा) दुष्टग्रहजनितसर्वारिष्टनिवृत्तिपूर्वकदीर्घायुष्यप्राप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीतये आत्मसमतोलितमिदममुकद्रव्यममुकदैवतम् , एतस्य तृतीयांशं, चतुर्थांशं वा आचार्य्याय संप्रददे । अवशिष्टमिदं द्रव्यं च अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यः समाश्रितवन्धुवर्गेभ्यो दीनानाथेभ्यः स्त्रीभ्यश्च यथांशेन विभज्य दास्ये । तथा अमुकद्रव्यतुलादानकर्मणः साङ्गफलप्राप्तये साद्गुण्यार्थं च इदं कर्षमितं सुवर्णं, तदर्धं, तदर्धं, यथाशक्ति वाऽऽचार्य्याय दक्षिणां संप्रददे। न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थम् इमां भूयसीं दक्षिणां नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽन्येभ्यश्च विभज्य दास्ये। तुलादानकर्मणः साङ्गफलप्राप्त्यर्थं यथासंख्याकान् ब्राह्मणान् यथोपपन्नेन सिद्धान्नेन वा तर्पयिष्ये इति सङ्कल्प्य दक्षिणां दत्त्वा 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' 'यान्तु देवगणा' इति च सर्वान् देवान् विसृज्य आचार्य्याय तुलां तदुपस्करादि च देवताप्रतिमाश्च संकल्प्य दत्त्वा प्रणमेत् । घृते छायां दृष्ट्वा अभिषेकतिलकमन्त्रपाठादि कारयेत् । तुलाद्रव्यं शीघ्रं ब्राह्मणेभ्योऽन्येभ्यश्च विभज्य दद्यात्, न चिरं स्थापयेत् । 'यस्य स्मृत्या' इति 'प्रमादात् कुर्वतां' 'कायेन वाचा' इति ईश्वरार्पणं कृत्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वयं भुञ्जीत ॥

इति होमरहितघृतादितुलादानप्रयोगः ।

रोगविशेषनाशनार्थं द्रव्यविशेषेण तुलादानान्युक्तानि गारुडे—

तुलापुरुषदानं तु शृणु मृत्युञ्जयोद्भवम् ।
अथ लोहं प्रदातव्यं सर्वरोगोपशान्तये ॥ १ ॥
कांस्यं च यक्ष्मणे देयं त्रपु चार्शोविकारके ।
अपस्मारे च सीसं स्यात्ताम्रं कुष्ठे सुदारुणे ॥ २ ॥
पैत्तलं रक्तपित्ते च रूप्यं प्रदरमेहयोः ।
सौवर्णं सर्वरोगेषु प्रदद्यान्मृत्युनोदनम् ॥ ३ ॥
फलोद्भवं तथा दद्याद् ग्रहण्यां दीर्घदारुणे ।

गौडं भस्मकरोगे तु पौगं तु गण्डमालके ॥ ४ ॥
जाङ्गलं चाग्निमान्द्ये तु रोमोत्पाते तु पौष्पकम् ।

जाङ्गलं = काष्ठजम् ।

मधूद्भवं तथा देयं कासश्वासजलोदरे ॥ ५ ॥
घृतोद्भवं तथा देयं छर्दिरोगोपशान्तये ।
क्षीरं पित्तविनाशाय दाधिकं भगदारणे ॥ ६ ॥
लावणं वेपनाशाय पैष्टं दद्रुविनाशने ।
अन्नं च सर्वरोगस्य नाशनं स्मृतमेव च ॥ ७ ॥
आर्तो यदा स्यात् पात्रं वा प्राप्नुयात् पुण्यदेशतः ।
नित्यं मृत्युञ्जयप्राप्तविधिना यत् प्रदीयते ॥ ८ ॥
तदेव सर्वशान्त्यर्थं भवतीह न संशयः । इति ।

इति तुलादानम् ॥

हिरण्यगर्भादिमहादानानां प्रयोगो हेमाद्र्यादौ द्रष्टव्यः ।

अथातिदानानि हेमाद्रौ भविष्ये—

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ।
नरकादुद्धरन्त्येता जपवापनदोहनैः ॥ इति ।

अथ गोदानम् ।

तस्य देशकाला उक्ताः स्मृत्यन्तरे—

अयने विषुवे पाते वैधृतौ सूर्यसंक्रमे ।
क्षीणेन्दौ पौर्णमास्यां वा द्वादश्यां राहुपर्वणि ॥
मन्वादौ च युगादौ च जन्मर्क्षे पुत्रजन्मनि ।
यात्राकाले महोत्पाते दुःस्वप्नेऽद्भुतदर्शने ॥
व्रते यागे प्रतिष्ठासु गावो देयाः शुभार्थिना ।
तीर्थे देवालये गोष्ठे सङ्गमे यज्ञमण्डपे ॥
शालग्रामशिलाग्रे च शिवलिङ्गस्य सन्निधौ ।
इत्यादिशुभदेशेषु स्वगृहे वा पयस्विनीम् ॥
दद्यादास्तिक्यबुद्ध्या तां सहेमां द्विजपुङ्गवे । इति ।

तत्र स्वरूपतो गोदानं महाभारते—

दानानामिह सर्वेषां गवां दानं विशिष्यते ।
गावः श्रेष्ठाः पवित्राश्च पावना जगदुत्तमाः ॥ इति ।

हेमाद्रौ भविष्ये—

शृङ्गमूले गवां नित्यं ब्रह्मविष्णू समाश्रितौ ।
शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ॥
शिरोमध्ये महादेवः सर्वदेवमयः स्थितः ।
ललाटाग्रे स्थिता गौरी नासावंशे च षण्मुखः ॥
कम्बलाश्वतरौ नागौ नासापुटमुपाश्रितौ ॥
कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुषोः शशिभास्करौ ।
दन्तेषु वायवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः ॥
सरस्वती च हुङ्कारे मासपक्षौ च गण्डयोः ।
सन्ध्याद्वयं तथौष्ठाभ्यां ग्रीवामिन्द्रः समाश्रितः ॥
रक्षांसि कक्षदेशे तु साध्याश्चोरसि संस्थिताः ।
चतुष्पात्सकलो धर्मः स्वयं जङ्घासु संस्थितः ॥
खुरमध्ये तु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः ।
खुराणां पश्चिमाग्रेषु गणा ह्यप्सरसां स्थिताः ॥
रुद्राश्चैकादश पृष्ठे वसवः सर्वसन्धिषु ।
श्रोणीतटस्थाः पितरः सोमो लाङ्गूलमाश्रितः ॥
आदित्यरश्मयो वालाः पिण्डीभूता व्यवस्थिताः ।
साक्षाद्‌ गङ्गा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता ॥
क्षीरे सरस्वती देवी नर्मदा दध्नि संस्थिता ।
हुताशनः स्वयं सर्पिर्ब्राह्मणानां गुरुः परः ॥
अष्टाविंशति देवानां कोट्यो रोमसु संस्थिताः ।
उदरे पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ॥
चत्वारः सागराः पूर्णा गवां ये तु पयोधराः ।
एतद्वः कथितं सर्वं यथा गोषु प्रतिष्ठितम् ॥
जगद्वै देवशार्दूल सदेवासुरमानवम् । इति ।

तत्तदङ्गे तत्तद्देवतावाहनपूर्वकं पूजनं कर्तव्यम् । तत्कीर्तन-स्य तदर्थत्वात् ।

अथ तस्या दानविधिः ।

विश्वामित्रः-प्राङ्मुखीं गामवस्थाप्य सवत्सां तां सुपूजिताम् ।
पुच्छदेशे तु दाता वै स्नातो बद्धशिखो भवेत् ॥
उदङ्मुखस्तु विप्रः स्यात् पात्रलक्षणलक्षितः ।
आज्यपात्रं करे कृत्वा कनकेन समन्वितम् ॥
निक्षिप्य पुच्छं तस्मिंस्तु घृतदिग्धं प्रगृह्य च ।
सजलं विप्रपाणिं तु प्रागग्रं तु निधापयेत् ॥
सतिलं सकुशं चापि गृहीत्वा दानमाचरेत् ।
अनेनैव तु मन्त्रेण पात्रहस्ते जलं क्षिपेत् ॥
गङ्गाप्रभवभूता या विश्वस्याघप्रणाशिनी ।
विश्वरूपधरा देवः प्रीयतामनया गवा ॥
अनुव्रज्य तु तां धेनुं ब्राह्मणेन समन्विताम् ।
गोमतीं तु ततो विद्यां जपेच्च प्रयतः शुचिः ॥

जपश्च दक्षिणादानानन्तरम् । अनुव्रज्येज्युक्तेः ।

उद्दिश्य वासुदेवं वा प्रीयतामितिचानघः ।
पात्रं मनसि संचिन्त्य तोयमप्सु विनिक्षिपेत् ॥
जलशायी ब्रह्मपिता पद्मनाभः सनातनः ।
अनन्तभोगशयनः प्रीयतां परमः पिता ॥ इति ।

गोमती विद्या च प्रयोगे वक्ष्यते । दक्षिणामाह—

वसिष्ठः—सुवर्णं दक्षिणामाहुर्गोप्रदाने महाफले ।
सुवर्णं परमं ह्याहुर्दक्षिणार्थे न संशयः ॥
गोप्रदानं तारयते सप्त पूर्वान् परांस्तथा ।
सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा तावद् द्विगुणमुच्यते ॥
सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।
सुवर्णं पावनं प्राहुः परिमाणं परं तथा ॥

अत्र सुवर्णशब्दस्य क्लीबत्वेन हिरण्यपर्यायत्वात्परिमाणवि-शेषविशिष्टावाचकत्वेन यथाशक्ति तद्दानं बोध्यम् ।

अथैनदनुमारी गोदानप्रयोगः।

तत्र दाता सुस्नातः सुप्रक्षालितपाणिपादः सुलिप्तायां कर्म्मभूमौ स्वासने प्राङ्मुख उपविश्य दीपं प्रज्वाल्य करौ सपवित्रौ कृत्वा स्वाचान्तः यथोक्तलक्षणां सवत्सां गां प्राङ्मुखीमवस्थाप्य यथोक्तलक्षणं ब्राह्मणम् उदङ्मुखं संस्थाप्य गणेशविष्णुगुरून् गन्धपुष्पादिना संपूज्य नमस्कृत्य च स्वाग्रभूमौ उक्तविधिना अर्घं संस्थाप्य जलेनापूर्य्य गन्धपुष्पाक्षतादि तूष्णीं निक्षिप्य सूर्यायार्घ्यं दत्त्वा पुनरर्घं संस्थाप्य तेन जलेनात्मानं सर्वां गोदानसामग्रीं च सम्प्रोक्ष्य प्राणायामं विधाय भूतोत्सादनं कृत्वा कुशतिलयवजलान्यादाय प्रधानसंकल्पं कुर्य्यात्।

ॐ विष्णुः ३ ॐनमः परमात्मने इत्यादिदेशकालकीर्त्तनान्ते अमुकनामसंवत्सरेऽमुकायनेऽमुकर्त्तौ अमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथौ अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकवासरे अमुकराशिस्थिते सवितरि अमुकस्थे चन्द्रे अमुकस्थे देवगुरौ अमुकपुण्यकाले अमुकगोत्रोऽमुकराशिरमुकशर्म्माऽहम् आत्मना सह (१)एकविंशतिपुरुषतारणार्थं वा, (२)चतुर्दशकुलोद्धारार्थं वा स्वर्गप्राप्त्यर्थं(३) वा (४) त्रिवित्तपूर्णपृथिवीदानजन्यसमफलप्राप्त्यर्थं वा (५)सकलपापक्षय-

---

(१) गौरेकस्यैव दातव्या श्रोत्रियस्य विशेषतः। सा हि तारयते पूर्वान् सप्त सप्त च सप्त च॥ इति हेमाद्रौ अङ्गिरावचनात्।

(२) गोप्रदानं तारयते सप्त पूर्वान् परांस्तथा। इति हेमाद्रौ वसिष्ठवचनात्।

(३) यथाकथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा। अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गं महीयते॥ इति तत्रैव याज्ञवल्क्यवचनात्।

(४) होमार्थमग्निहोत्रस्य यो गां दद्याद्याचिताम्। त्रिवित्तपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः॥ इति तत्रैव जाबालिवचनात्। अत्र यागादिवद्धयधिकरणन्यायेन एकैकप्रयोगस्यैककफलकत्वमेव। समुच्चयस्यात्र फलत्वे मानाभावात्।

(५) कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव। गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं परम्॥ इति हेमाद्रौ महाभारतोक्तेः। यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ इति भगवद्गीतायां कर्ममात्रस्य ईश्वरार्पणबुद्ध्याऽनुष्ठानविधानाच्च।

द्वारा श्रीयज्ञपुरुषप्रीतये वा यथाशक्ति गोदानं करिष्ये। तत्प्रतिग्रहार्थं ब्राह्मणस्य पूजनपूर्वकं वरणं करिष्ये इति संकल्प्य स्वदक्षिणतो यज्ञियवृक्षोद्भवासने उपविष्टम् उदङ्मुखं ब्राह्मणं पूजयेत्। श्रीविष्णुस्वरूपिणे ब्राह्मणाय एतदासनं ते नमः इति कुशासनम्। श्रीविष्णुस्वरूपिणे ब्राह्मणाय पाद्यम्—

ॐ आपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः।
समस्ततीर्थाम्बुपवित्रमूर्त्तयो रक्षन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥१॥
समस्तसम्पत्समवाप्तिहेतवः समुत्थितागःकुलधूमकेतवः।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥ २ ॥
विप्रौघदर्शनात्क्षिप्रं क्षीयन्ते पापराशयः।
वन्दनान्मङ्गलावाप्तिरर्चनादच्युतं पदम् ॥ ३ ॥
आधिव्याधिहरं नृणां मृत्युदारिद्र्यनाशनम्।
श्रीपुष्टिकीर्त्तिदं वन्दे विप्रश्रीपादपङ्कजम् ॥ ४ ॥
यत्फलं कपिलादाने कार्त्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे।
तत्फलं पाण्डवश्रेष्ठ विप्राणां पादशोधने ॥ ५ ॥

इति पादप्रक्षालनं विधाय भूमिदेवाग्रेत्यर्घ्यम्। गन्धद्वारामिति चन्दनादि विलेपनम्। नमोस्त्वनन्तायेति पुष्पमालादिभिः मुकुटकङ्कणकुण्डलादिभिश्च सम्पूज्य वरणं कुर्य्यात्—एभिर्गन्धाक्षतपुष्पमालावस्त्रयुगकङ्कणकुण्डलच्छत्रोपानत्कमण्डलुद्रव्ययज्ञोपवीतफलताम्बूलादिभिर्गोदानप्रतिग्रहार्थम् अमुकगोत्रम् अमुकवेदाध्यायिनम् अमुकशर्म्माणं ब्राह्मणं त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मीति ब्राह्मणो वदेत्। ततो ब्राह्मणं प्रार्थयेत्—

यदर्चनं कृतं विप्र तव विष्णुस्वरूपिणः।
तत्सर्वं मम दीनस्य विष्णवेऽस्तु समर्पणम् ॥

इति सम्प्रार्थ्य स्वपुरतः प्राङ्मुखीमवस्थितां गां, वत्सं च तदुत्तरतोऽवस्थितं पूजयेत्। तत्र सङ्कल्पः अद्येत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं गोदानपूर्वाङ्गत्वेन सवत्सायाः गोः पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य अक्षतपुष्पाणि गृहीत्वा—

ॐआवाहयाम्यहं देवीं गां त्वां त्रैलोक्यमातरम् ।
यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
त्वं देवी त्वं जगन्माता त्वमेवासि वसुन्धरा ।
गायत्री त्वं च सावित्री गङ्गा त्वं च सरस्वती ॥
तृणानि भक्षसे नित्यममृतं स्रवसे प्रभो ।
भूतप्रेतपिशाचाँश्च पितृदैवतमानुषान् ॥
सर्वास्तारयसे देवि नरकात्पापसंकटात् ।

इति आवाह्य पूजयेत् । (१)ॐसवत्सायै गवे नमः पाद्यम्, अर्घ्यम्, आचमनीयं, स्नानम् ।

ॐगोः अग्रपादाभ्यां नमः । ॐगोः पश्चात्पादाभ्यां नमः ।
ॐदेहस्था या च रुद्राणां शंकरस्य सदा प्रिया ।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥
ॐगोरास्याय नमः ।
विष्णोर्वक्षसि या देवि स्वाहा या च विभावसोः ।
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे ॥
ॐगोः शृङ्गाभ्यां नमः । ॐगोः कर्णाभ्यां नमः ।
ॐचतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च ।
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे ॥
ॐगोः पृष्ठाय नमः ।
ॐस्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां तथा ।
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥
ॐगोपुच्छाय नमः । वस्त्रम्—
ॐआच्छादनं मया दत्तं सम्यक्शुद्धं सुनिर्मलम् ।

---

(१)आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे । प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥ इति आग्वेदिकेन च मन्त्रेण पूजनं दानकमलाकरे उक्तम् । गोपथब्राह्मणे गोसहस्रदानप्रकरणे एतद्विनाऽष्टर्चेन सूक्तेन होमविधानात् । गोस्तुतिपरेण तेन पूजनस्य न्याय्यत्वाच्च ।

सुरभिर्वस्त्रदानेन प्रीयतां परमेश्वरी ॥

गन्धम्—ॐसर्वदेवप्रियं देवि चन्दनं चन्द्रसन्निभम् ।
कस्तूरीकुङ्कुमाढ्यं च गौर्गन्धः प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐगवे नमः । अक्षताः पुष्पाणि च—
ॐनमो वो विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च ।
लोकाधिवासिनीभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमोनमः ॥

ॐगवे नमः । अक्षतैः पुष्पमालाभिश्च सम्पूज्य—

धूपम्—ॐआनन्दकृत् सर्वलोके देवानां च सदा प्रिये ।
गौस्त्वं पाहि जगन्नाथे धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

अनेनैव "दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्" इति श्लिष्टेन दीपम् ।

नैवेद्यम्—ॐसुरभिस्त्वं जगन्माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ।
गोग्रासोऽयं मया दत्तो नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

घण्टाचामरमन्त्रः—ॐयत्ते मयाऽर्पितं शुद्धं घण्टाचामरमुत्तमम् ।
ग्रैवेयं तद् गृहाण त्वं मुनित्रिदशवन्दिते ॥

एवमादीनि सर्वाणि जलपूर्वं दद्यात् । ततः—
ॐनमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमोनमः ॥

इति नमस्कृत्य—
ॐगवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।
ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः ॥
या लक्ष्मीः सर्वदेवानां या च देवी च रोहिणी ।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥

इति प्रार्थ्य—
गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावः शिरसि मे नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

इति प्रदक्षिणीकुर्यात् ।

ततो गोदेहे देवतीर्थान्यावाहयेत् पूजयेच्च । शृङ्गमूले ॐब्रह्मविष्णुभ्यां नमः । शृङ्गाग्रे ॐसर्वतीर्थेभ्यो नमः । शिरोमध्ये ॐमहादेवाय नमः । ललाटे ॐगौर्यै नमः । नासारन्ध्रे ॐषण्मुखाय नमः ।

नासापुटयोः ॐकम्बलाश्वतराभ्यां नमः। कर्णयोः ॐअश्विभ्यां नमः। चक्षुषोः ॐशशिभास्कराभ्यां नमः। दन्तेषु ॐवायुभ्यो नमः। जिह्वायां ॐवरुणाय नमः। हुंकारे ॐसरस्वत्यै नमः। गण्डयोः—ॐमासपक्षाभ्यां नमः। ओष्ठयोः ॐसन्ध्याद्वयाय नमः। ग्रीवायाम् ॐइन्द्राय नमः। कक्षे ॐरक्षोभ्यो नमः। उरसि ॐसाध्येभ्यो नमः। जङ्घासु ॐधर्म्माय नमः। खुरमध्ये ॐगन्धर्वेभ्यो नमः। खुराग्रेषु ॐपन्नगेभ्यो नमः। खुरपश्चिमाग्रेषु ॐअप्सरोगणेभ्यो नमः। पृष्ठे ॐएकादशरुद्रेभ्यो नमः। सर्व्वसन्धिषु ॐवसुभ्यो नमः। श्रोण्योः ॐपितृगणेभ्यो नमः। पुच्छे ॐसोमाय नमः। पुच्छकेशेषु ॐसूर्य्यरश्मिभ्यो नमः। गोमूत्रे ॐगङ्गायै नमः। गोमये ॐयमुनायै नमः। क्षीरे सरस्वत्यै नमः। दध्नि नर्म्मदायै नमः। घृते वह्नये नमः। रोमसु ॐअष्टाविंशतिदेवकोटिभ्यो नमः। उदरे ॐपृथिव्यै नमः। स्तनेषु ॐचतुःसागरेभ्यो नमः।

इति गोदेहे ब्रह्मादिदेवान् गङ्गादितीर्थाश्चावाह्य सम्पूज्य—

एते यस्यास्तनौ देवाः सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे। इति प्रार्थ्य—

शक्तौ सत्यां स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां ताम्रपृष्ठां लाङ्गूलसमर्पितरत्नमुक्ताफलां घण्टाचामरविभूषितां सुवस्त्राच्छन्नां च गां विधाय तत्समीपे कांस्यमयं दोहनपात्रं च संस्थाप्य पुनः प्रार्थयेत्—

ॐनमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमोनमः॥
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे पार्श्वयोः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥
पञ्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ।
तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै देव्यै नमोनमः॥
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश।
यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च॥
ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः। इति।
ततो विधिवदभ्यर्च्य श्रीखण्डैः कुसुमैः शुभैः।

अलंकुर्याद्यथाशास्त्रं हेमशृङ्गादिभिः सुधीः ॥
कुशाक्षतजलैः सार्द्धं गृहीत्वा पुच्छमादृतः ।
कराभ्यां तर्पयेद्देवान्देवतीर्थेन मन्त्रवित् ।
प्राजापत्येन मनुजान् पितॄन् पित्र्येण तर्पयेत् ।

इति स्मृत्यन्तरात् वक्ष्यमाणश्लोकैर्देवादींस्तर्पयेत् ।

तत्र पूर्वं सकुशाक्षतयवं गोपुच्छं गृहीत्वा प्राङ्मुखो यजमानः संततजलधारया देवतीर्थेन देवांस्तर्पयेत् ।

(१)ॐयानन्दिनीसुशीलाद्याः कामदाश्चैव धेनवः ।
ताः सर्वाः पुच्छतोयेन तर्पितास्तर्पयन्तु माम् ॥
ब्रह्मा विष्णुर्महादेवः कार्तिकेयो गणाधिपः ।
पुष्पचापो महेन्द्रश्च भगवानच्युताग्रजः ॥
देवाः समस्ताः सगणाः सवाहनपरिच्छदाः ।
वसवोऽष्टौ द्वादशार्का रुद्रा एकादशैव तु ॥
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च मरुतो मातरस्तथा ।
गन्धर्वा गुह्यकाश्चैव सागराः सरितस्तथा ॥
राक्षसा यक्षवेतालाः पूतनाः पर्वता द्रुमाः ।
तीर्थान्यप्सरसश्चैव पशवः पन्नगाः खगाः ॥
ऋक्षाणि राशयो योगा मासवर्षर्तुवासराः ।
अयने च युगाः कल्पास्तथा मन्वन्तराणि च ॥
भुवनानि दिशौकाश्च तथा सर्वेन्द्रियाणि च ।

---

(१) "या नन्दिनीसुशीलाद्याः" "ब्रह्मा विष्णुर्महादेवः" इत्यादीनां श्लोकानां स्थाने "ब्रह्माद्या देवताः सर्वा ऋषयो मुनयस्तथा" इत्यादयः सार्द्धविंशतिश्लोका आचाराध्यायटीकायां बालंभट्टकृतायां दानप्रकरणे, स्मृतिकौस्तुभादौ च उपलभ्यन्ते। श्लोकैस्तर्पणं निर्मूलमेवेति गोदानप्रकरणे कमलाकरः, उत्सर्गमयूखे नीलकण्ठभट्टश्च। गोपुच्छे देवर्षिपितृतर्पणं च तडागोत्सर्गविधावेव स्पष्टतयोपलभ्यते न तु प्रायो गोदानविधौ इति तदपि नातीवादर्त्तव्यं गोदानानुष्ठाने इति दिक्। अत एव कमलाकरः "गोपुच्छोदकेन तर्पणं कुर्यात् इति केचित्" इत्याह।

ओंकारश्चैव गायत्री छन्दांस्यङ्गानि चैव हि ॥
वेदाश्च स्मृतयश्चैव पुराणानि तथैव च।
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वो मन्त्रगह्वरः ॥
ओषध्यो वनसम्भूता ग्राम्याश्चैव सपिप्पलाः।
सानुगा देवताश्चैव मुनयः सगणास्तथा ॥
ऋषय ऋषिपत्न्यश्च सिद्धाश्च सगणास्तथा।
प्रजाः प्रजापतिश्चैव येऽन्ये विघ्नविनायकाः ॥
विद्याधराश्च दैत्याश्च आचार्य्या गुरवस्तथा।
डाकिन्यः क्षेत्रपालश्च भैरवाश्चाष्टसंख्यकाः ॥
स्थावरा जंगमाश्चैव भूतग्रामश्चतुर्विधः।
अक्षयेणामृतेनैव मङ्गलेन सुवारिणा ॥
गोपुच्छाग्रच्युतेनेह मद्दत्तेन हि तेऽखिलाः।
शाश्वतीं तृप्तिमायान्तु दार्ढ्यंयुक्तवरप्रदाः ॥
सूर्यः सोमः कुजः सौम्यो गुरुः शुक्रः शनैश्चरः।
ग्रहाश्च तृप्तिमायान्तु राहुकेतुसमन्विताः ॥
इन्द्रो वह्निर्यमो रक्षः पाशी वायुर्धनाधिपः।
ईशोऽनन्तस्तथा ब्रह्मा सर्वे ते तर्पिता मया ॥
सावित्र्या सह लोकेशः सलक्ष्मीकश्चतुर्भुजः।
महेशश्चोमया सार्द्धं तृप्तिमायान्तु शाश्वतीम् ॥
अत्रिर्वसिष्ठो भृगुगौतमौ च मरीचिदक्षौ पुलहः पुलस्त्यः।
प्राचेतसः काश्यपविश्वमित्रौ भरद्वाजसञ्ज्ञो जमदग्निर्मुनिश्च ॥
अन्ये च सर्वे मुनिपुङ्गवाश्च गृह्णन्तु दत्तं जलमद्य तुष्टाः।

इति देवतर्पणम्।

ततो यज्ञोपवीतं कण्ठावलम्बितं कृत्वा अक्षतकुशजलैर्मनुष्यतीर्थेन मनुष्यान् तर्पयेत्।

सनकः सनन्दनश्च सनातनस्तथैव च।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥
ते तृप्तिमखिला यान्तु गोपुच्छाग्रच्युतोदकैः।

ततोऽपसव्यं कृत्वा द्विगुणितकुशतिलजलैः पितॄंस्तर्पयेत् ।

कव्यवाडनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा ।
अग्निष्वात्ताः सोमपाश्च तथा बर्हिषदश्च ये ॥
तर्पितास्तृप्तिमायान्तु शाश्वतीं गोप्रसादतः ।
यमाय धर्म्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ॥
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ।
मातामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातामहस्तथा ॥
मातामही प्रमातामही वृद्धप्रमातामही तथा ।
अक्षयां तृप्तिमायान्तु गोलाङ्गूलच्युतोदकैः ॥
त्रिकं मातामहाद्यं च मातामह्यादिकं त्रयम् ।
ते च तांश्च प्रदत्तं मे स्वीकुर्वन्तु जलं मुदा ॥
ये मृता वै पितृव्याश्च मातुलाः श्वशुरास्तथा ।
आचार्य्या गुरुमित्राद्यास्ते गृह्णन्तु शुभं जलम् ॥
ये च सम्बन्धिनोऽपुत्रा वह्निदाहविवर्जिताः ।
अपमृत्युमृता ये च तृप्तिं ते च लभन्त्विह ॥
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः ।
गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः क्रियालोपगताश्च ये ।
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम ॥
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु गोपुच्छोदकतर्पणैः ।

गोत्रे मदीये विभुना मृता ये गोत्रे च मातुर्मम ये विपन्नाः ।
गर्भच्युताः श्राद्धविवर्जिताश्च तेभ्यः स्वधाऽनेन जलेन कृत्वा ॥
भृग्वग्निवज्रादिजलादिशस्त्रैर्विषाणदन्तैर्नखरैर्भुजङ्गैः ।
पञ्चत्वभावं विगताश्च ये च तेभ्यः प्रदत्तं शिवमस्तु तोयम् ॥

ये रौरवादौ नरके निमग्नाः क्रियाविलुप्ताश्च कृतोपकाराः।
जन्मान्तरे ये मम दासभूतास्तेऽप्यक्षयां तृप्तिमिहाभजन्तु ॥
ये बान्धवा वाऽबान्धवा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु गोपुच्छोत्सृष्टवारिभिः।
धेनुपुच्छे करं कृत्वा तर्पणं च करोति यः।
आत्मानं तारयेद्विप्रो दश पूर्वान्दशापरान् ॥
सन्तर्पिता मया ये च गोपुच्छोदकतर्प्पणे।
आयुर्वृद्धिं तथा तुष्टिं मेधां प्रज्ञां च सन्ततिम् ॥
आरोग्यं धनलाभं च सन्तुष्टाश्च ददन्तु मे।

इति गोपुच्छोदकेन तर्पणं विधाय आचम्य कांस्यमये आज्य-पात्रे घृतदिग्धं कुशहेमयुतगोपुच्छं तिलकुशयुतोदङ्मुखब्राह्मणपाणौ कृत्वा सङ्कल्पयेत्।

ॐविष्णुः ३ अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहम् इमां गां सवत्सां सुपूजितां रुद्रदैवतां यथाशक्त्यलंकृताम् [सति संभवे सुवर्ण-शृङ्गीं रौप्यखुरां ताम्रपृष्ठां लाङ्गूलसमर्पितरत्नमुक्ताफलां घण्टाचामरविभूषितां सुवस्त्राच्छन्नां] आत्मना सहैकविंशतिपुरुषतारणद्वारा, चतुर्दशकुलोद्धारद्वारा, निखिलदुःखदौर्भाग्यदुःस्वप्नदुर्निमित्तामुकग्रहबाधाशान्तिपूर्वकमायुरारोग्यधनधान्यद्विपदचतुष्पदसन्ततिप्राप्तिद्वारा, गोरोमतुल्यवत्सरावधि सकलभोगपरिपूर्णस्वर्गलोकप्राप्तिद्वारा वा श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये अमुकगोत्रायामुकवेदाध्यायिनेऽमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे ॐतत्सत् न ममेत्युक्त्वा—

यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघविनाशिनी।
विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा ॥

इत्युच्चार्य्य सकुशजलाक्षतं गोपुच्छं विप्रहस्ते दद्यात्।

विप्रस्तु ॐद्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि। ॐ स्वस्ति इमां गां रुद्राय प्रतिगृह्णामि इति

प्रतिगृह्य ॐ कोऽदात्कस्मा ऽअदात् कामोऽदात् कामाया-
दात्। कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते॥ इति
कामस्तुतिं पठेत्।

ततो दानप्रतिष्ठासंकल्पः। अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं
कृतैतद्गोदानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं षोडशमाषमितं सुवर्णमग्निदैवतं, यथाशक्ति
वा हिरण्यं, तन्निष्क्रयीभूतं द्रव्यं वा ब्राह्मणाय तुभ्यं सम्प्रददे न
ममेत्युक्त्वा दद्यात्।

ततो ब्राह्मणः गोपुच्छोदकेन "द्यौः शान्तिः" इति मन्त्रेणा-
भिषेकं कृत्वा मन्त्राशिषं दद्यात् [य० सं० अ० ३४। कं० २१]
**ॐसोमो धेनुᳬ सोमो ऽअर्वन्तमाशुᳬ सोमो व्वीरङ्कर्मण्यं
ददाति। सादन्यं विदथ्यᳬ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाश-
दस्मै॥** इति। ततो दाता—

लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥

इति मन्त्रेण ब्राह्मणसमन्वितां गां त्रिः प्रदक्षिणीकृत्यानुव्रज्य
च गोमतीं पठेत्।

गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलुगन्धिकाः।
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्॥
अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम्।
पावनं सर्वभूतानां क्षरन्ति च वहन्ति च॥
हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि।
ऋषीणामपि होतॄणां गावो होमे प्रतिष्ठिताः॥
सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्।
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सवाहनाः॥
गावः पवित्रं परमं गावो मङ्गलमुत्तमम्।
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च॥
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमोनमः।
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्॥
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति।

गावो मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्ग्यः पयोमुचः ॥
सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा ।
गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा ॥
गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम् ।
एवं रात्रौ दिवा वाऽपि समेषु विषमेषु च ॥
भयेषु च नरो नित्यं कीर्त्तयन्मुच्यते भयात् ।
घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः ॥
घृतनद्यो घृतावर्त्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ।
घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठितम् ॥
घृतं मे सर्वतश्चैव घृतं मे मनसि स्थितम् ।
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥
गावो मामुपतिष्ठन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।
इत्याचम्य जपन्प्रातः सायं वा पुरुषस्तथा ॥
यद्रात्र्या कुरुते पापं तद्रात्र्या प्रतिमुच्यते ।
यदह्ना कुरुते पापं तदह्ना प्रतिमुच्यते ॥

इति गोमतीं पठित्वा भूयसीसङ्कल्पं कुर्य्यात् । अद्येहेत्यादि सङ्कीर्त्य अमुकोऽहं गोदानकर्म्मणः साङ्गफलप्राप्तये न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं चेमां भूयसीं दक्षिणां नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽन्येभ्यश्च यथाकालं विभज्य दातुमहमुत्सृज्ये ॐतत्सत् न मम इति । भूयसीं दत्त्वा यथाशक्तिब्राह्मणभोजनं च संकल्प्य कर्मेश्वराय समर्प्य अभिषेकतिलकमन्त्रपाठादि कारयित्वा आचम्य यस्य स्मृत्येत्यादि पठित्वा ॐअच्युताय नमः इति विष्णुं स्मरेत् ।

इति बृहद्गोदानप्रयोगः ।

गवामभावे दातव्यं तन्मूल्यं तु न संशयः ।

इति शूलपाणौ उदाहृतसंवर्तवचनादिना मुख्यगोदानासम्भवे तन्मूल्यदानं विहितम् । गोदानं च ज्योतिष्टोमादिश्रौतकर्मसु लक्षहोमादिस्मार्तकर्मसु च अङ्गभूतं, प्रधानभूतं च । एवमश्वादिदान-

स्थानेऽपि तन्मूल्यदानं मूल्यनिर्देशकवचनबलात् समाचाराच्च सिद्धम्। तत्र कस्य कियन्मूल्यमित्याकाङ्क्षायां वाजपेयादौ दक्षिणात्वेन निर्दिष्टानां गवादीनां मूल्यानि निर्दिदेश कात्यायनः—

द्वात्रिंशत्पणिका गावश्चतुष्कार्षापणो वरः।
वृषे षट् कार्षापणका अष्टावनडुहि स्मृताः ॥ १ ॥
दश कार्षापणा धेनोरश्वे पञ्चदशैव तु।
हिरण्ये कार्षापणकः पणा नव तथाऽधिकाः ॥ २ ॥
वस्त्रे कार्षापणः, छागेऽष्टौ पणा, द्वादशाविके।
वृषल्यामथ पञ्चाशन्मूल्यं कार्षापणाः स्मृताः ॥ ३ ॥
निष्के पञ्चाशदेव स्युर्गजे पञ्चशतानि तु।
पञ्च कार्षापणाः प्रोक्ता दोलायां, षड्रथे तथा ॥ ४ ॥
गृहेऽष्टौ कार्षापणकाः, ताम्रकर्षे पणः स्मृतः।

ताम्रकर्षे पणः स्मृत इति ॥ तत्रादौ गोमूल्यमाह—

द्वात्रिंशत्पणिका गावः।

तत्र पणस्वरूपमुक्तं पञ्चधा। वराटकमानेन, ताम्रमानेन, रौप्यमानेन, सुवर्णमानेन, रजतमानेनेति भेदात्। तत्राद्यमुक्तं लीलावत्यां—

"वराटकानां दशकद्वयं च स्यात्काकिणी ताश्च पणश्चतस्रः" इति।

मदनरत्ने च—

"षोडशपणः पुराणः पणो भवेत्काकिणीचतुष्केण।
पञ्चाहतैश्चतुर्भिर्वराटकैः काकिणी चैका" ॥

एवमशीतिवराटकपरिमितः प्रथमः पणः।

द्वितीयं ताम्रमानेन "ताम्रकर्षे पणः स्मृतः" इति अत्रैवोक्तम्। कर्षपरिमितं ताम्रं ताम्रपण इत्यर्थः।

बृहस्पतिस्तु किञ्चिद्विशेषमाह—

ताम्रकर्षकृता मुद्रा विज्ञेया ताम्रिकः पणः। इति।

कर्षपरिमाणं च—

"जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः" इत्यादिना [पृ० १२]

पूर्वोदाहृते मनुवचने "पलं सुवर्णाश्चत्वारः" इति सुवर्णचतुष्टयस्य पलत्वाभिधानात्, निघण्टौ "पलं कर्षचतुष्टयम्" इत्यभिधानाच्च सुवर्णकर्षपदयोः पर्यायत्वेन सुवर्णमानात्मकं सिध्यति। तेन पञ्चरक्तिकषोडशमाषपरिमितः कर्षो भवतीति षोडशमाषमितं [अद्यत्वे प्रचलिताष्टरक्तिकदशमाषपरिमितं] ताम्रं पणो द्वितीयः।

"सुवर्णसप्ततितमो भागो रौप्यक इष्यते"।

इति हेमाद्रौ रौप्यलक्षणोक्तेः किञ्चिन्न्यूनसर्षपत्रयाधिकगुञ्जामात्रस्य सुवर्णस्य रौप्यसंज्ञकत्वात्—

"कार्षापणो दक्षिणस्यां दिशि रौप्ये प्रवर्तते"—

इत्यनेन रौप्यस्य कार्षापणत्वाभिधानात् पणस्य च "षोडशैव पणाः स तु" इत्यनेन कार्षापणषोडशांशत्वलाभात् सर्षपत्रयाधिकगुञ्जामात्रसुवर्णषोडशांशः अर्थात् किञ्चिन्न्यूनराजिकाधिकसर्षपमात्रसुवर्णांशो रौप्यः पणस्तृतीयः।

पञ्चरक्तिकविंशतिमाषपरिमितसुवर्णस्य [सपादकर्षमितसुवर्णस्य] सुवर्णकार्षापणत्वेन वक्ष्यमाणस्य षोडशांशः सपादैकमाषात्मकः [सपादषड्गुञ्जात्मकः] सौवर्णः पणश्चतुर्थः।

द्विरक्तिकराजतविंशतिमाषपरिमितस्य [अष्टरक्तिकपञ्चमाषपरिमितस्य] रजतस्य रजतकार्षापणत्वेन वक्ष्यमाणस्य षोडशांशः सपादराजतमाषात्मको राजतः पणः [सार्धगुञ्जाद्वयमितः] पञ्चमः।

राजतमाषस्वरूपमुक्तं हेमाद्रौ—

"द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रूप्यमाषकः।"

एवं च द्वात्रिंशताऽशीतेर्वराटकानां गुणने वराटकमानेन एकस्या गोर्मूल्यं वराटकानां षष्ट्यधिकपञ्चविंशतिशती भवति। [२५६०]

ताम्रमानेन एकस्या गोर्मूल्यं ताम्रगुञ्जानां षष्ट्यधिकपञ्चविंशतिशती भवति। [२५६०]

रौप्यमानेन एकस्या गोर्मूल्यम् एकयवाधिकगुञ्जाद्वयपरिमितं सुवर्णं भवति। गुञ्जे २। यवः १

सुवर्णमानेन एकस्या गोर्मूल्यं सार्धकर्षद्वयमितं [अष्टरक्तिक-२५ माषमितं] सुवर्णं भवति ।

रजतमानेन एकस्या गोर्मूल्यं राजतचत्वारिंशन्माषमितं [अष्ट-रक्तिक १० माषमितं] रजतं भवति । ब्रह्मपुराणे—

"गवामभावे निष्कं स्यात्तदर्धं पाद एव वा"इति ।

निष्कपरिमाणन्तु "निष्कं सुवर्णाश्चत्वारः" इति याज्ञवल्क्ये-नोक्तम् । अस्य च रूप्यपरिमाणपरिभाषास्थत्वात् चतुःसुवर्णसमतो-लितं रूप्यं निष्क इत्यर्थः । आधुनिकराजतमुद्राचतुष्टयं पर्यवस्यति ।

अथ वरमूल्यम्—

चतुष्कार्षापणो वरः ।

चत्वारः कार्षापणाः मूल्यं यस्य स वरशब्दाभिधेय इत्यर्थः ।

कार्षापणमानमपि पञ्चधोक्तम्—वराटकमान—ताम्रमान—रौप्यमा-न—सुवर्णमान—रजतमानभेदात् । तत्र वराटकमानेन—

"पणैर्निबद्धः पूर्वस्यां षोडशैव पणाः स तु" ।

इति मदनरत्नाद्युक्तेः वराटकमानेन सिद्धाशीतिवराटकात्मकपण-षोडशकात्मकः कार्षापणः प्रथमः वराटकानाम् अशीत्यधिकद्वादशश-तीरूपः सिध्यति । [१२८०]

ताम्रमानेन "ताम्रकर्षे पणः स्मृतः" इति कात्यायनोक्तेः पञ्चर-क्तिकषोडशमाषात्मककर्षपरिमितताम्रपणानां षोडशकात्मकः कार्षा-पणः द्वितीयः षट्पञ्चाशदधिकशतद्वय[२५६]माषपरिमितताम्रमयः सिध्यति ।

रौप्यमानेन—

"सुवर्णसप्ततितमो भागो रौप्यक इष्यते" ।

इति हेमाद्रौ उक्तेः,

"कार्षापणो दक्षिणस्यां दिशि रौप्ये प्रवर्तते" ।

इति नारदोक्तेश्च किञ्चिन्न्यूनसर्षपत्रयाधिकैकगुञ्जात्मकसुवर्ण-रूपः तृतीयः कार्षापणः ।

सुवर्णमानेन—

"माषो विंशतिभागश्च ज्ञेयः कार्षापणस्य तु" ।

इति हेमाद्रौ कात्यायनोक्तेः विंशतिमाषपरिमित (सपादकर्षमित) सुवर्णात्मकः चतुर्थः कार्षापणः ।

रजतमानेन द्विरक्तिकराजतविंशतिमाषपरिमित (अष्टरक्तिकपञ्चमाषपरिमित) रजतरूपः पञ्चमः कार्षापणः । एवं कार्षापणस्य पञ्चविधत्वात्तच्चतुष्टयरूपो वरोऽपि पञ्चविधः सिध्यति ।

एषां च मानानां शक्त्यपेक्षया व्यवस्था द्रष्टव्या ।

वृषमूल्यमाह—

वृषे षट् कार्षापणकाः ।

वृषो नाम प्रजोत्पादनसमर्थोऽस्पृष्टधुरः । तस्य षट् कार्षापणा मूल्यं भवति इत्यर्थः ।

अनडुन्मूल्यमाह—

अष्टावनडुहि स्मृताः ।

कार्षापणा इत्यनुवर्तते । ते चाष्टौ अनडुहो मूल्यमित्यर्थः । अनड्वान्नाम प्रजोत्पादने धूर्वहने च समर्थः ।

धेनुमूल्यमाह—

दश कार्षापणा धेनोः ।

धेनुर्नाम सवत्सा प्रचुरदुग्धयुता च गौः । तस्या दश कार्षापणा मूल्यमित्यर्थः ।

अश्वमूल्यमाह—

अश्वे पञ्चदशैव तु ।

पञ्चदश कार्षापणा अश्वमूल्यमित्यर्थः ।

हिरण्यमूल्यमाह—

हिरण्ये कार्षापणकः पणा नव तथाऽधिकाः ।

नवपणाधिक एकः कार्षापणो हिरण्यस्य मूल्यमित्यर्थः ।

वस्त्रच्छागमेषाणां मूल्यमाह—

वस्त्रे कार्षापणः, छागेऽष्टौ पणा, द्वादशाविके ।

एकः कार्षापणो वस्त्रस्य मूल्यम्, अष्टौ पणाः छागस्य मूल्यं, द्वादश पणा अविके अविकस्य मेषस्य मूल्यमित्यर्थः ।

वृषलीमूल्यमाह—

वृषल्यामथ पञ्चाशन्मूल्यं कार्षापणाः स्मृताः ।

वृषली दासी । तस्याः पञ्चाशत्कार्षापणा मूल्यमित्यर्थः ।

निष्कमूल्यमाह—

निष्के पञ्चाशदेव स्युः ।

निष्को भूषणविशेषः । तस्यापि पञ्चाशत्कार्षापणा मूल्यमित्यर्थः ।

गजमूल्यमाह—

गजे पञ्चशतानि तु ।

गजे गजस्य हस्तिनः पञ्चशतानि, कार्षापणानामिति शेषः । कार्षापणशतपञ्चकं हस्तिनो मूल्यमित्यर्थः ।

दोलारथयोर्मूल्यमाह—

पञ्च कार्षापणाः प्रोक्ता दोलायां, षड्रथे तथा ।

दोला नरवाह्यं यानम् । तस्य पञ्च कार्षापणा मूल्यम् । रथः प्रसिद्धः । तस्य षट् कार्षापणा मूल्यमित्यर्थः ।

गृहमूल्यमाह—

गृहेऽष्टौ कार्षापणकाः ।

गृहं प्रसिद्धम् । तस्य अष्टौ कार्षापणा मूल्यमित्यर्थः ।

पणलक्षणमाह—

ताम्रकर्षे पणः स्मृतः, ताम्रकर्षे पणः स्मृतः । इति ।

कर्षमात्रं ताम्रं पणशब्दाभिधेयमित्यर्थः । यद्यपि वराटकादिमानैः पणस्य पञ्चविधत्वमुक्तं तथापि कात्यायनस्य ताम्रमानमेवाभिप्रेतमिति तदनुयायिभिस्तदेवाङ्गीकार्यं न तु वराटकमानसिद्धम् । रजतादिमानं च फलाधिक्याकाङ्क्षिभिराश्रयणीयमेव । अभ्यासो ग्रन्थसमाप्तिसूचकः ।

इति कात्यायनकृतमूल्याध्यायस्य संक्षेपविवृतिः ।

गवाद्यभावे गवादिमूल्यदानं च तत्स्थाने वाचनिकम् । न तु

मूल्यस्य नीवारादेरिव गवादेः प्रतिनिधित्वम्। सुसदृशत्वाभावात्। न वा विसदृशानां "यदि सोमं न विन्देत्पूतीकानभिषुणुयात्" इत्यनेनेव नियमः। ईषत्सदृशानामपि पूतीकानां पक्षे प्राप्तानां यागसम्पत्तिरूपदृष्टार्थत्वानुरोधेन नियममात्रविधित्वलाघवानुरोधेन च यागाक्षिप्तविसदृशद्रव्यनिवर्तकत्वाङ्गीकारेऽपि अत्यन्तविसदृशस्य मूल्यस्य पक्षेऽपि प्राप्त्यभावेन तन्नियमस्य विधातुमशक्यत्वात्। तस्मात्—

"एषामसम्भवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः"।

इतिवत् मूल्यदानस्य गोदानस्थाने—

"गवामभावे दातव्यं तन्मूल्यं तु न संशयः"

इत्यादिना विधानात् स्थानापत्त्या "तत्स्थानापन्नस्तद्धर्मं लभते" इति न्यायेन मूल्ये गोधर्माणां पूजनादीनां प्राप्त्या मन्त्रा ऊहेन पठनीयाः। न तु नीवार-पूतीकादौ व्रीहि-सोममन्त्रा इवाविकारेण। प्रतिनिधिभूतानां तद्बुद्ध्या उपादानेन तच्छब्दभाक्त्वेऽपि तत्स्थानापन्नानां तत्त्वे मानाभावात्। एवं च संकल्पवाक्ये 'इदं गोमूल्यद्रव्यममुकदैवतम्' इत्येवोल्लेखो न तु 'इमां गां रुद्रदैवताम्' इत्युल्लेखः। दानवाक्यमपि "यज्ञसाधनभूता या" इत्यादि गोपदघटितं न पठनीयम्।

यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघप्रणाशिनी।
अस्या मूल्यप्रदानेन प्रीयतां विश्वरूपधृत्॥

इत्येवं पाठ्यम्।

एवं सर्वत्र मूल्यदाने बोध्यमिति दिक्।

अथ सङ्क्षिप्तगोदानप्रयोगः॥

गोदानफलमुक्तं स्कान्दे—

यो नरो गां प्रयच्छेत सवत्सां कांस्यदोहनाम्।
यावन्ति रोमकूपाणि सवत्साया भवन्ति हि॥
तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते। इति।

अथ पात्रापात्रलक्षणं भारते—

तद्भक्तास्तद्गना राजन् तद्गृह्यास्तद्व्यपाश्रयाः।

अर्थिनश्च भवन्त्येते तेषु दत्तं महाफलम् ॥

विष्णुः—

पुरोहितस्त्वात्मन एव पात्रं विद्याविहीनो गुणवर्जितश्च ।
स्ववर्णधर्माचरणोपपन्नो गृही यदा चेत्सुतपौत्रयुक्तः ॥ इति ।

• तीर्थसम्मुखे शालग्रामादिसन्निधौ वा पुण्यकाले यथोक्तलक्षणवतीं गां प्राङ्मुखीमवस्थाप्य गोमूल्यं वा पुरतो निधाय स्वयञ्च प्राङ्मुखो भूत्वा तिलकुशयवजलान्यादाय अद्येहेत्यादिना देशकालौ संकीर्त्यामुकोऽहं तीर्थयात्रायाः साङ्गोपाङ्गफलप्राप्तये दानकल्पोक्तफलावाप्तये वा गोदानं [गोमूल्यदानं] करिष्ये । तदङ्गतया ब्राह्मणस्य गोश्च [गोमूल्यद्रव्यस्य च] यथामिलितोपचारैः पूजनं वरणं च करिष्ये इति संकल्पं कृत्वा ब्राह्मणस्य पादौ प्रक्षाल्य "भूमिदेवाग्र" इति अर्घ्यं दत्त्वा "नमोऽस्त्वनन्ताय"इति गन्धादिभिः संपूज्य "नमो ब्रह्मण्यदेवाय" इति प्रार्थ्य वरणसामग्रीं गृहीत्वा एभिर्गन्धाक्षतपुष्पपूगीफल–माला–यज्ञोपवीत–वासोऽलंकरण–द्रव्यैः गोदानप्रतिग्रहार्थं त्वामहं वृणे । वृतोऽस्मीति प्रत्युक्तिः । सवत्सां गां पाद्यादिभिः समभ्यर्च्य ॐगोः अग्रपादाभ्यां नमः ॐगोरास्याय नमः ॐगोःशृङ्गाभ्यां नमः ॐगोः पुच्छाय नमः ॐगोः पश्चात्पादाभ्यां नमः ॐगोः पृष्ठाय नमः ॐगोः वत्साय नमः ।

सवत्सायै गवे वस्त्रं समर्प्य गवा धूपमाघ्राप्य दीपं तां प्रदर्श्य नैवेद्यं च गवे ग्रासं दत्त्वा सति सम्भवे गोपुच्छोदकेन देवादितर्पणं, गोशृङ्गमूलादिषु ब्रह्मविष्ण्वादिपूजनं च पूर्वोक्तरीत्या [१०९] विधाय प्रार्थनां कुर्यात्—

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।
यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च ॥
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥ इति ।

गोरभावे मूल्यद्रव्यं संप्रोक्ष्य गोमूल्यद्रव्यायामुकस्मै नम इति नाममन्त्रेण पूजयेत् । ततो यवतिलकुशजलसहितं पुच्छं हस्ते गृहीत्वा

अद्येहामुकोऽहं गोरोमसंख्यवर्षाणि स्वर्गप्राप्तिकामो विष्णुप्रीतिकामो वा इमां गां सवत्सां सुपूजितां यथाशक्त्यलंकृतां रुद्रदैवताम् [इदं गोमूल्यद्रव्यममुकदैवतम्] अमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सन्न मम इति ब्राह्मणहस्ते जलादियुतं गोपुच्छं—

ॐयज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघविनाशिनी।
विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा॥

इति मन्त्रं पठन्—

[“अस्या मूल्यप्रदानेन प्रीयतां विश्वरूपधृत्” ॥

इत्युत्तरार्धं पूर्वार्धे संयोज्य पठन् गोमूल्यं] दद्यात्। ब्राह्मणः “देवस्य त्वा” इति प्रतिगृह्य कोऽदादिति कामस्तुतिं पठेत्। कृतस्य गोदानकर्मणः साङ्गफलप्राप्त्यर्थमिदं सुवर्णं घृतपात्रसहितं ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे इति दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं दक्षिणां दद्यात्। ब्राह्मणः “देवस्यत्वा” इति पठित्वा प्रतिगृह्य “स्वस्ति न” इति पुच्छेनाभिषेकं कुर्यात्। ततो दाता धेनुं विप्रं च नमस्कृत्य—

गावो मे अग्रतस्सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे पार्श्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

इति प्रदक्षिणीकृत्य च—

गावो मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्ग्यः पयोमुचः।
सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा॥
गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा।
गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम्॥
एवं रात्रौ दिवा वाऽपि समेषु विषमेषु च।
महाभयेषु च नरः कीर्तयन्मुच्यते भयात्॥

इति भारतोक्तां गोमतीं पठेत्। अथ भूयसीं न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं दत्त्वा कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा विष्णुं स्मरेत्।

इति संक्षिप्तगोदानप्रयोगः॥

अथ वृषदानं गोदानप्रसङ्गेन ।

भविष्योत्तरे—दशधेनुसमोऽनड्वानेकश्चैव धुरंधरः ।
दशधेनुप्रदानाद्धि वृष एको विशिष्यते ॥
अलंकृत्य वृषं शान्तं पुण्येऽह्नि समुपस्थिते ।
रौप्यलाङ्गूलसंयुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं शृणुष्व वदामि ते ।
धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः ॥
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन ।
दत्त्वैवं दक्षिणायुक्तं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥
सप्तजन्मकृतं पापं वाङ्मनःकायसंभवम् ।
तत्सर्वं विलयं याति गोदानसुकृतेन वै ॥
यावन्ति तस्य रोमाणि गोवृषस्य महीपते ।
तावद्वर्षसहस्राणि गवां लोके महीयते ॥
गोलोकादवतीर्णस्तु इह लोके द्विजो भवेत् ।
सत्रयाजी महातेजाः सर्वब्राह्मणपूजितः ॥ इति ।

अथ वृषदानप्रयोगः ।

दाता पुण्यकाले गोमयेन सुलिप्तायां भूमौ प्राङ्मुख उपविश्याचम्य प्राणायामं विधाय पश्चिमाशामुखं वृषमवस्थाप्य वृषमूल्यं वा निधाय सति विभवे रौप्यलाङ्गूलादिभिरलंकृत्य ब्राह्मणमुदङ्मुखमासने उपवेश्य गणेशवन्दनादि भूतोत्सादनान्तं कृत्वा कुशतिलयवजलान्यादाय देशकालौ संकीर्त्य अमुकोऽहं सप्तजन्मकृतकायिकवाचिकमानसिकत्रिविधसकलपापक्षयपूर्वकं—वृषरोमसमसंख्यवर्षसहस्रावधिगोलोकवासोत्तरमिह लोके सत्रयाजित्वब्राह्मणपूजितत्वमाप्त्यर्थं वा सकलपापक्षयद्वारा परमेश्वरप्रीत्यर्थं वा यथाशक्ति वृषदानं (वृषमूल्यदानं) करिष्ये इति प्रतिज्ञाय तत्प्रतिग्रहार्थं ब्राह्मणस्य पूजनपूर्वकं वरणं, वृषस्य (वृषमूल्यस्य) पूजनं च करिष्ये इति संकल्प्य ब्राह्मणं गन्धादिभिः संपूज्य वरणसामग्रीं करे गृहीत्वा एभिर्गन्धाक्षतपुष्पवस्त्रयज्ञोपवीतफलताम्बूलद्रव्यैः वृष (वृषमूल्य)

प्रतिग्रहार्थं त्वामहं वृणे इति गोत्रादि निर्दिश्य ब्राह्मणं वृणुयात्। वृतोऽस्मि इति ब्राह्मणो वदेत्। ततः—

ॐ तीक्ष्णशृङ्गाय विद्महे धर्मपादाय धीमहि।
तन्नो वृषः प्रचोदयात्॥

इति वृषगायत्र्या वृषं (वृषमूल्यद्रव्यायामुकस्मै नम इति वृषमूल्यं) संपूज्य कुशतिलयवजलान्यादाय देशकालौ संकीर्त्य सप्तजन्मकृतकायिकवाचिकमानसिकत्रिविधज्ञाताज्ञातसकलपापक्षयपूर्वकवृषरोमसमसंख्यवर्षसहस्रावधिगोलोकवासोत्तरमिह लोके सत्रयाजित्वब्राह्मणपूजितत्वप्राप्तिकामो वा सकलपापक्षयद्वारा परमेश्वरप्रीतिकामो वा इमं वृषं यथाशक्त्यलंकृतं रुद्रदेवताकं (इदं वृषमूल्यद्रव्यममुकदैवतं) ब्रह्मणे तुभ्यं संप्रददे न मम इति संकल्प्य—

धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः।
अष्टमूर्त्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन॥

इति पठित्वा ब्राह्मणहस्ते ककुदं स्पर्शयन् दद्यात्। वृषमूल्यं तु

धर्मो हि वृषरूपेण जगदानन्दकारकः।
अतस्तन्मूल्यदानेन पातु मां वृषवाहनः॥

इति पठन् दद्यात्। ब्राह्मणश्च "देवस्य त्वा" इति प्रतिगृह्य ॐ स्वस्ति इत्युक्त्वा कामस्तुतिं पठेत्। ततो दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं यथाशक्ति सुवर्णदक्षिणां दत्त्वा भूयसीं च दत्वा कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात्। वृषमूल्यं च षट् कार्षापणा बोध्याः।

इति वृषदानप्रयोगः।

अथ प्रसङ्गत एव महिषीदानम्।

हेमाद्रौ भविष्ये—

महिषीदानमाहात्म्यं कथयामि युधिष्ठिर।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वकामप्रदं तथा॥ इति।

सा च प्रथमप्रसूता दोषवर्जिता चन्द्रसूर्यग्रहे, कार्तिक्याम्, अयनयोः, शुक्लचतुर्दश्यां, संक्रान्तौ च सर्वारिष्टविनाशाय चित्तोद्वेगशान्तये च देयेति तत्रैवोक्तम्।

अथ महिषीदानप्रयोगः।

गोमयमृज्जलसुलिप्तायां भूमौ पूजासामग्रीं रक्तवस्त्र–रक्तमाला–स्वर्णशृङ्ग–रौप्यखुर–ताम्रदोह–हेमतिलक–सप्तधान्य–घण्टापिण्याक-पिटकोपेतां धृत्वा, महिषीं प्राङ्मुखीं, तन्मूल्यं वा तत्रोपस्थाप्य यथोक्तलक्षणं ब्राह्मणमुदङ्मुखं कुशास्तृतपीठादावुपवेश्य पवित्रपाणिः स्वासन उपविश्याचम्य सुमुखश्चेत्यादिना यथाविधि गणेशादि-वन्दनादिभूतोत्सादनान्तं कृत्वा प्रतिज्ञासंकल्पं कुर्यात्—ॐविष्णुः ३ अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं मम सर्वारिष्टनिवृत्तिपूर्वकमा-युष्याद्यभिवृद्धये विशेषतः शनैश्चरजनितपीडाशान्त्यर्थं दानकल्पोक्त-फलावाप्तये वा महिषीं यथाशक्त्यलंकृतां [महिषीमूल्यं] ब्राह्मणाय दास्ये। तत्पूर्वाङ्गत्वेन ब्राह्मणस्य पूजनपूर्वकं वरणं, महिषी–[महिषीमूल्य] पूजनं च करिष्ये इति। ब्राह्मणं भूमिदेवाग्रेत्या-दिनाऽर्घ्यं दत्त्वा ॐनमोऽस्त्वनन्तायेत्यादिना गन्धाक्षतादिभिः सम्पूज्य वरणसामग्रीं करयोः कृत्वा एभिर्गन्धाक्षतपुष्पमालापूगी-फलद्रव्यवासोभिः महिषी [महिषीमूल्य] दानप्रतिग्रहार्थम् अमुकगो-त्रम् अमुकवेदाध्यायिनम् अमुकशर्म्माणं ब्राह्मणं त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मीति ब्राह्मणो वदेत्। अथ महिषीपूजनम्। तत्रादौ ॐयम-स्वरूपायै महिष्यै नमः इति नत्वा प्रार्थयेत्—

महिषी ब्रह्मसूता च लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
प्रार्थिताऽसि मया देवि यममार्गं निवारय ॥ इति।

अथ पूजामन्त्रः।

पूजिता हर मे पापं सर्वदानफलप्रदे ॥
महिषी यमरूपा त्वं विश्वामित्रविनिर्मिते।

अनेन मन्त्रेण आवाहनम् आसनं पाद्यम् अर्घ्यम् आचमनं स्नानं रक्तवस्त्रं गन्धाक्षतपुष्परक्तमाल्यानि स्वर्णतिलकं च समर्प्य स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरीं महिषीं संपाद्य सप्तधान्यं ताम्रदोहनं च पुरतो निधाय धूपदीपनैवेद्यानि च समर्प्य घण्टां च गले बध्वा [मूल्यद्र-व्यं संप्रोक्ष्य संपूज्य] दानसंकल्पं कुर्यात्। ॐविष्णुः३ अद्येहे-

त्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं पूर्वोक्तदानकल्पोक्तफलावाप्तये विष्णुप्रीतये वा यथाशक्त्यलंकृतां सुपूजितामिमां महिषीं यमदैवताम् [इदं महिषीमूल्यद्रव्यममुकदैवतम्] अमुकगोत्राय अमुकवेदाध्यायिने सुपूजिताय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सन्न ममेति सकुशतिलजलेन दक्षिणहस्तेन महिषीपृष्ठं स्पृशन्—

इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा ।
महिषीदानमाहात्म्यात्साऽस्तु मे सर्वकामदा ॥
धर्मराजस्य साहाय्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः ।
महिषासुरस्य जननी या साऽस्तु वरदा मम ॥

इति मन्त्राभ्यां [महिषीमूल्यं तु प्रथमश्लोकस्य तृतीयपादस्थाने "तस्या मूल्यप्रदानेन" इति योजयन्] ब्राह्मणहस्ते दद्यात् । विप्रो देवस्यत्वेति पठित्वा (१) पृष्ठदेशं स्पृष्ट्वा ॐस्वस्तीति प्रतिगृह्य ॐकोऽदादिति कामस्तुतिं पठेत् । ततो यजमानः सविप्रां महिषीं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य आसन उपविश्य दानप्रतिष्ठासिद्ध्यै यथाशक्ति सुवर्णं संकल्प्य दत्त्वा भूयसीं संकल्प्य विभज्य कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात् । तत आचार्यादीन्भोजयित्वा स्वयमपि भुञ्जीत । महिषीमूल्यं दशकार्षापणात्मकं कल्प्यम् । प्रचुरदुग्धत्वेन धेनुसाम्यात् ।

इति महिषीदानम् ।

अथ द्वितीयमतिदानं भूमिदानाख्यम् ।

ताम्रपात्रे देयभूमिसंबन्धिमृत्पिण्डं, तदभावेऽक्षतपुञ्जादिकं संस्थाप्य [भूमिमूल्यदानं चिकीर्षुस्तन्मूल्यं पुरतो निधाय] स्वासने उपविश्याचम्य शुक्लाम्बरधरमिति विष्णुं ध्यात्वा गणेशं च नत्वा अर्घं संस्थाप्य प्राणानायम्य कुशयवजलतिलपाणिः अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं सकलपापक्षयपूर्वकषष्टिसहस्रवर्षमितस्वर्गवासकामः शिवपुरप्राप्तिकामो वा भूमिदानं [भूमिमूल्यदानं] करिष्ये, तदङ्गतया ब्राह्मणस्य पूजनपूर्वकं वरणं भूमेश्च [भूमिमूल्यस्य च]

---

(१) दद्यात्प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणं तां पयस्विनीम् । प्रतिग्रहः स्मृतस्तस्याः पृष्ठदेशे स्वयंभुवा ॥ इति पृष्ठदेशे स्पर्शपूर्वकः प्रतिग्रहो भविष्योत्तरे उक्तः ॥

पूजनं(१)करिष्ये इति संकल्प्य भूमिदेवेति अर्घ्यं दत्त्वा गन्धादिभिरुपचारैः संपूज्य वरणसामग्रीं करे गृहीत्वा एभिर्गन्धाक्षतपुष्पपूगीफलद्रव्यैः करिष्यमाणभूमि [भूमिमूल्य] दानप्रतिग्रहार्थं ब्रह्मन् त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मीति प्रत्युक्तिः। ततो भूमिं सम्पूजयेत्। ध्यानम्(२)।

शुक्लवर्णा मही कार्य्या दिव्याभरणभूषिता।
चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चन्द्रांशुसदृशाम्बरा ॥
रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम्।
पद्मं करे च कर्त्तव्यं भूमेर्यादवनन्दन ॥
दिङ्नागानां चतुर्णां तु कार्या पृष्ठगता मही।
सर्वौषधियुता देवी शुक्लवर्णा ततः स्मृता ॥

इति ध्यात्वा—

सर्वभूताश्रया भूमिर्वराहेण समुद्धृता।
कश्यपस्य सुता पुण्या ह्यतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

ॐभूरसिभूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः।

इति मन्त्राभ्याम् ॐभूम्यै नम इति नाममन्त्रेण च पञ्चोपचारैर्देयभूमिसम्बन्धिमृत्पिण्डं [भूमिमूल्यं संप्रोक्ष्य नाममन्त्रेण] सम्पूज्य दानसंकल्पं कुर्य्यात्—अद्येत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं षष्टिसहस्रवर्षमित(३)स्वर्गवासकामो वा (४)शिवपुरप्राप्तिकामो वा

---

(१) सर्वदानानां तुलादानप्रकृतिकत्वेन तत्रत्यदेयद्रव्यपूजनब्राह्मणपूजनादीतिकर्तव्यतायाः अत्राप्यतिदेशेन लाभात्। "योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति" इत्याद्यनारभ्याधीतानां वाक्यानां तु "प्रकृतौ वाऽद्विरुक्तत्वात्" इति न्यायेन तुलादानरूपप्रकृतिगामित्वस्यैव न्याय्यत्वात्।

(२) इदं च ध्यानं हेमाद्रौ विश्वचक्रदाननिरूपणे विष्णुधर्मोत्तरे उक्तम्।

(३) दानकमलाकरे बृहस्पतिः—षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः। उच्छेत्ता चानुमन्ता च तावन्ति नरके वसेत् ॥

(४) हेमाद्रौ महाभारते-"प्रादेशमात्रां भूमिं तु यो दद्यादनुपस्कृताम्

(१)सकलपापक्षयकामो वा इमां भुवं प्रियदत्तां विष्णुदैवताम् अमुकगोत्रोत्पन्नाय अमुकवेदाध्यायिने अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यं सम्प्रददे ॐतत्सन्न मम इति संकल्प्य—

दानवाक्यम्(२)—

यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवत्विह ॥

इति पठन् [भूमूल्यं तु चतुर्थपादस्थाने "भूयाद्‌ भूमूल्यदानतः" इति योजयन्] दद्यात् । ब्राह्मणश्च संनिधौ सति सम्भवे दत्तां भूमिं साक्षात्प्रदक्षिणीकृत्याथवा मनसा प्रदक्षिणीकृत्य असंनिधौ देयभूमिपिण्डम् अक्षतपुञ्जादिकं वा प्रदक्षिणीकृत्य ॐदेवस्य त्वेत्यादि प्रतिगृह्णामीत्यन्तं यजुः पठित्वा विष्णवे भुवं प्रतिगृह्णामि ॐस्वस्तीत्युक्त्वा प्रतिगृह्य कोऽदादिति कामस्तुतिं पठेत् । ततो यजमानः कृतस्य भूमिदानकर्म्मणः प्रतिष्ठासिद्ध्यर्थम् इदं सुवर्णमग्निदैवतं ब्राह्मणाय तुभ्यं सम्प्रददे इति संकल्प्य दद्यात् (३) ।

[नहि भूमेः परं वस्तु गोः सुवर्णाच्च किंचन ।

न स सीदति कृच्छ्रेण न च दुर्गाण्युपाश्नुते ॥ मुदितो राजते प्राज्ञः शक्रेण सह नन्दति ।" "यावन्ति लाङ्गलमुखेन रजांसि भूमेर्भासां पतेर्दुहितुरङ्गजरोमकाणि । तावन्ति शङ्करपुरे स युगानि तिष्ठेत् भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः ॥"

(१) विश्वामित्रः—गोचर्ममात्रां यः पृथ्वीं ब्राह्मणाय प्रयच्छति । सर्वदः स तु विज्ञेयः शक्रवद्दिवि मोदते ॥ ग्रामं वा नगरं वापि विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति । क्षेत्रं वा सस्यसंपन्नं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

मदनरत्ने वृद्धवसिष्ठः—यत्किञ्चित्कुरुते पापं जन्मप्रभृति मानवः । अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥ अपि पापकृतो राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति साधवः । पृथिवीं, नान्यदिच्छन्ति पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥

(२) इदं च दानवाक्यं मत्स्यपुराणे ।

(३) अत्र पुराणेषु नानाफलश्रवणेऽपि स्वकामनानुसारेणान्यतमं फलं संकीर्त्य एतत्काम इति दानवाक्ये योजयित्वा भूमिं दद्यात् ।

अतो भुवि गवि प्राज्ञैः सुवर्णं दक्षिणा मता ॥

इति हेमाद्रौ मार्कण्डेयोक्तेः] । ब्राह्मणश्च अभिषेकतिलकमन्त्रपाठादिकं कुर्य्यात् ।

इति भूमिदानप्रयोगः ।

[भूमेर्मूल्यं यद्यपि कात्यायनकृतमूल्याध्यायेऽन्यत्र च निर्दिष्टं नोपलभ्यते तथापि दातव्यभूमिमानस्य गोचर्म–निवर्तनादिरूपस्यानेकविधस्योक्तत्वात् तदनुसारेण तत् कल्प्यम् । तथा च—

हस्तमात्रं तु यो दद्याद् भुवः पुरुषसत्तमः ।
तेनैव ध्रुवमायाति भूमिदानफलं नरः ॥
प्रादेशमात्रां भूमिं तु यो दद्यादनुपस्कृताम् ।
न स सीदति कृच्छ्रेण न च दुर्गाण्युपाश्नुते ॥

इत्यादिविष्णुधर्मोत्तरादिवचनैः हेमाद्रौ उद्धृतैः हस्तमात्रप्रादेशमात्रभूमेरपि दानस्यानुमतत्वलाभात् तावन्मात्रभूमेर्मूल्यस्य तत्तद्देशकालोचितस्य दानमपि भूम्यसत्त्वे अनुमतं भवति । तच्च मूल्यम् अद्यत्वे मुद्राङ्कितरूप्यकार्धरूपमत्यन्तदरिद्रस्य भवति, न ततो न्यूनमिति दिक् ।

दानवाक्यं तु सुवर्णरजतादिरूपमूल्यदाने मूल्यनिर्देशद्वारेणैव पठनीयं न तु यत्स्थाने दीयते तस्यैव साक्षान्निर्देशेनेति गोमूल्यदाने निरूपितम्] ॥

इति भूमिदानम् ।

अथ विद्यादानाख्यं तृतीयमतिदानम् ।

तच्च त्रिविधम्—अध्यापनरूपं, वेदमूर्त्तिदानरूपं, पुस्तकदानरूपञ्च । तत्राद्यमाह याज्ञवल्क्यः—

सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः ।
तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम् ॥

ब्रह्म वेदः । परब्रह्मविद्यादानं तु संप्रदानस्य मोक्षफलकं, न तु ब्रह्मनिष्ठस्य तद्दातुः । पूर्णकामत्वेन फलानपेक्षत्वात् ।

हेमाद्रौ गारुडे "अथदानविधिंवक्ष्ये" इत्यादिना वेदमूर्त्तिदानमुक्त्वा—

अनधीतवतो वेदान् वेददानविधिस्त्वयम् ।

सदाऽध्ययनयुक्तस्य शिष्याध्यापनमेव हि ॥
स्वयं शुचिः शुचीन् विप्रान् प्रातः स्नातो यतेन्द्रियः ।
दर्भानादाय पाणौ तु पाठयेत् तांस्तथाविधान् ॥
अनध्यायान् परिहरन् नीचानश्रावयन्नपि ।
एवं विधानतो यस्तु ऋचमेकां प्रयच्छति ॥
त्रिवित्तपूर्णसंपूर्णा तेन दत्ता मही भवेत् । इत्युक्तम् ।

तथा तत्रैव—उपाध्यायस्य यो वृत्तिं दत्त्वाऽध्यापयते जनम् ।
किं न दत्तं भवेत्तेन धर्मकामार्थदर्शिना ॥
छात्राणां भोजनाभ्यङ्गं वस्त्रं भिक्षामथापिवा ।
दत्त्वा प्राप्नोति पुरुषः सर्वकामान् न संशयः ॥
विवेकी जीवितं दीर्घं धर्मकामार्थमाप्नुयात् ।
सर्वमेव भवेद्दत्तं छात्राणां भोजने कृते ॥

वह्निपुराणे—प्रातरुत्थाय यो वेदान् वेदाङ्गमपि पाठयेत् ।
पृथिवीदानतुल्यं स्यात् फलं तस्य नृपोत्तम ॥

यमः—य इमां पृथिवीं दद्यात् सर्वरत्नोपशोभिताम् ।
दद्याच्छास्त्रं च विप्राणां तच्चैतानि च सत्तमम् ॥

इति हेमाद्रौ विस्तरः ।

अथ द्वितीयं विद्यादानं वेदमूर्त्तिदानरूपम् । तच्च गारुडे—
आम्नायरूपाणि विधाय सम्यक् हैमानि पूर्वोदितलक्षणानि ।
विशुद्धनानामणिभूषितानि ऋगादिवेदक्रमतो निवेश्य ॥
अथ दानविधिं वक्ष्ये रहस्यं परमं मतम् ।
यं विधाय नरो घोरान् निरयान् नोपसर्पति ॥
वासांसि देयानि यथाक्रमेण पीतानि शुक्लान्यथ लोहितानि ।
नीलानि चैवं कुसुमानि दत्त्वा संपूज्य गन्धाक्षतधूपदीपैः ॥ इति ।

अथ चतुर्वेदमूर्तिदानप्रयोगः ।

पुण्यकाले सुस्नातः धौतपाणिपादः सुलिप्तायां भूमौ शुद्धासने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य गणेशादीन् प्रणम्य कर्मपात्रं संपाद्य कुशतिलयवजलहस्तो देशकालौ सङ्कीर्त्य सर्वनरकबाधानिवृत्त्यर्थं

चतुर्वेदमूर्तिदानं करिष्ये तत्पूर्वाङ्गत्वेन चतुर्णां ब्राह्मणानां पूजनपूर्वकं वरणं, वेदमूर्त्तीनां पूजनं च करिष्ये इति सङ्कल्प्य ब्राह्मणान् सम्पूज्य वृत्वा द्वादशकर्षोन्मितेन, चतुष्कर्षोन्मितेन, एककर्षोन्मितेन वा सुवर्णेन एकैकां वेदमूर्तिं विरचय्य ताश्चतस्रोऽपि अग्न्युत्तारणपूर्वकं पुरतः स्थापयित्वा तत्र ऋग्वेदमूर्तिमक्षसूत्रधारिणीं, यजुर्वेदमूर्त्तिं पङ्कजधारिणीं, सामवेदमूर्तिं वीणाधारिणीं, अथर्ववेदमूर्तिं स्रुक्स्रुवकमलधारिणीं च कृत्वा नानामणिभूषिताश्च ताः कृत्वा पूर्वम् ऋग्वेदमूर्तिं दक्षिणतो न्यस्य उदक्संस्थमन्याः क्रमेण न्यस्येत् ।
ततः "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य—

"ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षः प्रलम्बजठरः शुचिः ।
आत्रेयो वरदश्चैष गायत्रः सोमदैवतः ॥
कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः ।
कृशमध्यः काश्यपेयः पूज्यः सर्ववरप्रदः ॥
सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः ।
भारद्वाजः क्षमी दान्तः सूर्यवर्णः शुभप्रदः ॥
बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः ।
वैशम्पायनगोत्रश्च नीलोत्पलदलच्छविः ॥

इत्येवं क्रमेण चतुरो वेदान् ध्यात्वा व्याहृतिभिरावाह्य गायत्र्या पाद्यादिभिरुपचारैः संपूज्य क्रमेण पीतानि, शुक्लानि, लोहितानि, नीलानि च वस्त्रादीनि समर्प्य—

ऋग्वेद पद्मपत्राक्ष रक्ष रक्ष क्षिपाशुभम् ।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि देहि मे हितमद्भुतम् ॥
यजुर्वेद नमस्तेऽस्तु लोकत्राणपरायण ।
त्वत्प्रसादेन मे चेमा निखिलाः सन्तु सन्ततम् ॥
सामवेद महाबाहो त्वं हि साक्षादधोक्षजः ।
प्रसादसुमुखो भूत्वा कृपयाऽनुगृहाण माम् ॥
अथर्वन् सर्वभूतानां त्वदायत्ते हिताहिते ।
शान्तिं कुरुष्व देवेश पुष्टिमिष्टां प्रयच्छ हि ॥

इत्येवं सम्प्रार्थ्य संकल्प्य एकैकां मूर्तिं तेभ्यो दद्यात् ।

तत्र सङ्कल्पः—तिलकुशयवजलान्यादाय देशकालौ सङ्कीर्त्य अखिलनरकोद्धरणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् इमा वेदमूर्त्तीः सुपूजितेभ्यो ब्राह्मणेभ्य एकशो विभज्य सम्प्रददे ॐतत्सन्न मम इति । ब्राह्मणाश्च "देवस्य त्वा" इति यजुः पठित्वा ॐस्वस्तीति प्रतिगृह्य कामस्तुतिं पठेयुः । ततो दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं (१) द्वादश चतुरो वा कर्षान् एकं वा कर्षं सुवर्णस्य दक्षिणामेकैकस्मै ब्राह्मणाय दद्यात् । ततो भूयसीं संकल्प्य कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा विष्णुं स्मरेत् ।

इति वेदमूर्तिदानम् ।

अथ तृतीयं पुस्तकदानात्मकं विद्यादानम् ।

तच्च वह्निपुराणे—शुभेऽह्नि शुभनक्षत्रे मण्डपं शुभवेदिकम् ।
चतुरस्रं वितानं वा कृत्वा तत्रोपलेपयेत् ॥
गोमयेनोपलिप्ते तु पुष्पप्रकरशोभिते ।
तत्र न्यस्यासनं दिव्यं दिव्यगन्धाधिवासितम् ॥
संस्थाप्य पुस्तकं तत्र धर्मशास्त्रस्य धीमतः ।
चन्द्रसूर्योपरागे वा संक्रान्त्ययनवासरे ॥
पुण्येऽह्नि तत् सुसंपूज्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
घृतधेन्वा युतं रत्नैर्दद्याद्द गुणवते ततः ॥
शास्त्रसद्भावविदुषि वाचकेऽतिप्रियंवदे ।
तच्छास्त्रं शृण्वतां नित्यं जनानां नाशयत्यघम् ॥
दातुस्तस्माद्भवेन्नैकफलं तच्छृणु भूपते ।
यत्पुण्यं सर्वतीर्थानां विधिवद्यजतां तथा ॥
तत्पुण्यं समवाप्नोति विधिवच्छास्त्रदः पुमान् ।
ब्राह्मणान् वेदसम्पूर्णाश्छन्दोलक्षणपारगान् ॥
लिखापयित्वा यत्नेन तत्समग्रं शुभाक्षरैः । इति ।

वाराहपुराणे—सौवर्णी लेखनी कार्या मसीभाण्डं च रौप्यकम् ।

---

(१) प्रदद्यादेकमेकस्मिन् सुवर्णत्रिपलान्वितम् । दद्यादेकपलोपेतमेकैकमिह दुर्बलः ॥ अथ स्वशक्तितो वाऽपि दानमेषां विधीयते । एतदेव प्रमाणं स्यात् तेषां मूर्तिविनिर्मितौ ॥ इति हेमाद्रौ गारुडोक्तेः ।

जयशब्दं समुद्घोष्य प्रारभेल्लेखकः सुधीः ॥

इति लेखनप्रकारः फलविशेषाश्चाभिहिताः ।

अथ पुस्तकदानप्रयोगः ।

यजमानः कर्मपात्रसंपादनान्तं पूर्वोक्तविधिना कृत्वा कुशादियुतं जलमादाय देशकालौ संकीर्त्य दानकल्पोक्तस्वर्गादिफलकामो विष्णुप्रीतिकामो वा अमुकपुस्तकदानं करिष्ये इति तदङ्गत्वेन ब्राह्मणस्य पूजनपूर्वकं वरणं, सौवर्णप्रतिमासु अक्षतपुञ्जादिषु वा ब्रह्मादीनां पुस्तके अमुकशास्त्रस्वरूपस्य पूजनं च करिष्ये इति च संकल्प्य ब्राह्मणं संपूज्य वृत्वा सौवर्णप्रतिमासु अक्षतपुञ्जादिषु वा ब्रह्मविष्णुशिवान् सरस्वतीम् इन्द्रादिदशदिक्पालान् विनायकादिपञ्चलोकपालांश्च आवाह्य "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य संपूज्य पुस्तके शास्त्रस्वरूपं च संपूज्य हस्ते कुशादिकमादाय देशकालौ संकीर्त्य एतत्पुस्तकस्थिताक्षरसमसंख्य (१) वर्षसहस्रावधिस्वर्गवास—पङ्क्तिसमसंख्य (२) कुलोद्धारपूर्वकस्वर्गनयन—पत्र (३) समसंख्ययुगसहस्रावधिसकुलस्वर्गवासप्राप्तिकामः, सकलपापक्षय (४) पूर्वकपरमेश्वरप्रीतिकामो वा इदममुकपुस्तकं सरस्वतीदेवताकं स्वयं लिखितं लेखितं वा अमुकगोत्रायामुकवेदाध्यायिने अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यं संप्रददे ॐतत्सन्न मम इत्युक्त्वा—

सर्वविद्याश्रयज्ञानकारणं ललिताक्षरम् ।
पुस्तकं सम्प्रयच्छामि प्रीता भवतु भारती ॥

(१) यावदक्षरसंख्यानं विद्यते शास्त्रसंश्रये । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गे विद्याप्रदो भवेत् ॥ इति हेमाद्रौ नन्दिपुराणे ।

(२) यावत्यः पङ्क्तयश्चात्र पुस्तकेऽक्षरसंश्रिताः । तावतो नरकात् कुल्यानुद्धृत्य नयते दिवि ॥ इत्यपि तत्रैव ।

(३) यावन्ति पत्रसंख्यानं पुस्तके विद्यते शुभम् । तावद्युगसहस्राणि सकुलो मोदते दिवि ॥ इति तत्रैव ।

(४) यावच्च पातकं तेन कृतं जन्मशतैरपि । तत्सर्वं तस्य नश्येत विद्यादानेन देहिनः ॥ इत्यपि तत्रैव ।

इति पठित्वा ब्राह्मणहस्ते पुस्तकं दत्त्वा सुवर्णत्रयं, सुवर्णद्वयम्, एकं वा सुवर्णं, यथाशक्ति वा हिरण्यं, वस्त्रयुगं च पुस्तकदानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं दद्यात् । कर्मशेषः पूर्ववत् ।

अयं सर्वपुस्तकसाधारणदानविधिः । पुराणादिदाने विशेषस्तु हेमाद्र्यादौ द्रष्टव्यः ।

इति पुस्तकदानम् ।

इति त्रोण्यतिदानानि ॥

अथ दश महादानानि ।

तत्संग्रहः कूर्मपुराणे—

कनकाश्वतिला नागो दासी–रथ–मही–गृहाः ।
कन्या च कपिला धेनुर्महादानानि वै दश ॥

तत्र प्रथमनिर्दिष्टत्वात् सुवर्णदानमेव तावदुच्यते ।

वह्निपुराणे—

अग्निस्तु देवताः सर्वाः सुवर्णं हि तदात्मकम् ।
तस्मात् सुवर्णं ददता प्रीताः स्युः सर्वदेवताः ॥ इति ।
दश पूर्वान् परांश्चैव नरकात् तारयन्ति ते ।
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति प्रोवाचेदं बृहस्पतिः ॥ इति ।

अथ सुवर्णदानप्रयोगः ।

दाता आचमनादि भूतोत्सादनान्तं गोदानवत् कृत्वा कुशयवतिलजलपाणिः देशकालौ संकीर्त्य अक्षयस्वर्गकामः, पापक्षयकामः, पितृतारणकामः, ईश्वरप्रीतिकामो वा सुवर्णदानं करिष्ये इति प्रतिज्ञाय तदङ्गत्वेन ब्राह्मणस्य पूजनपूर्वकं वरणं सुवर्णस्य पूजनं च करिष्ये इति संकल्प्य गन्धादिना ब्राह्मणं संपूज्य पूर्ववद् वृत्वा सुवर्णं संप्रोक्ष्य—

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम बीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति संपूज्य पूर्ववद्देशकालौ फलं च संकीर्त्य ब्राह्मणस्य गोत्रनामनी उल्लिख्य इदं कर्षमात्रसुवर्णमग्निदैवतं तुभ्यमहं संप्रददे

ॐतत्सत् न मम इत्युक्त्वा "हिरण्यगर्भगर्भस्थम्" इति दानवाक्यं पठित्वा ब्राह्मणहस्ते सकुशोदकं सुवर्णं दद्यात् । ततः सुवर्णदानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थम् इदं सुवर्णमग्निदैवतं दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे न मम इति दक्षिणां दद्यात् । सुवर्णदाने रजतं दक्षिणेति केचित् । तन्निर्मूलमिति हेमाद्रिः । ब्राह्मणश्च "देवस्यत्वा" इतियजुः पठित्वा ॐस्वस्ति अग्निदेवतायै सुवर्णं प्रतिगृह्णामि इत्युच्चार्य प्रतिगृह्य "कोऽदात्" इति कामस्तुतिं पठेत् ।

इति सुवर्णदानप्रयोगः ।

प्रसङ्गतः देयहिरण्यादीनां परिमाणं निरूप्यते ।

तच्च दानकमलाकरे शातातपीये कर्मविपाके उक्तम्—

निवर्तनमिता भूमिर्द्रोणत्रय[द्वय]मितास्तिलाः ।
कर्षमात्रं सुवर्णं स्यादाज्यं सप्रस्थमाढकम् ॥
वाससो द्वितयं दद्याद् गुडं च पलषष्टिकम् । ६०पलमितम् ।
निष्कत्रयमितं रौप्यं लवणं सार्धखारिकम् ॥

कर्षचतुष्टयमितं रजतं रजतनिष्कः । तत्त्रयमितं १२कर्षमितं रजतम् । १६पलाधिक–७७सेटकमितं लवणं सार्धखारिकं भवति । सेटकश्च अशीतिकर्षात्मकः । वस्त्रं च सूक्ष्ममष्टहस्तायतं द्विहस्तविशालम् ।

सार्धखारीमितं [द्वयं]धान्यं परिमाणं प्रकीर्तितम् । इति ।

मिताक्षराटीकायां दानप्रकरणे पुराणान्तरे—

भूमिरश्वो यथाशक्ति तिलद्रोणोच्चयं तथा ।
गौः सुशीला च दोग्ध्री च कुम्भैराज्यं च पञ्चभिः ॥ कुम्भो द्रोणद्वयम् ।
पलमेकं तु रौप्यस्य सुवर्णस्य सुवर्णकः । सुवर्णकः कर्षः ।
दशवस्त्रैर्महादानं दातव्यं च मुमुक्षुणा ॥ इति ।

पूर्वोक्तानि भूम्यादीनि गोसहितानि दशदानानीत्युच्यन्ते । तथाचोक्तं महार्णवे संग्रहे—

गो–भू–तिल–हिरण्या–ऽऽज्य–वासो–धान्य–गुडानि च ।
रौप्यं लवणमित्याहुर्दश दानानि पण्डिताः ॥

एतानि च शक्तौ सत्यामासन्नमृत्युना स्वयं कार्याणि । अन्य-

था पुत्रादिरवश्यं कुर्यात्। तदुक्तं दिवोदासीये—

दृष्ट्वा चास्वस्थमासन्नमर्धोन्मीलितलोचनम्।
भूमिष्ठं पितरं पुत्रो यदि दानं प्रदापयेत्॥
तद्विशिष्टं गयाश्राद्धादश्वमेधशतादपि। इति।

तत्रादौ प्रायश्चित्तं गोमूल्यदानात्मकं कुर्यात्।

तत्र प्रायश्चित्तप्रयोगः।

स्वयं पुत्रादिर्वा स्वशक्तिमनुसृत्य षडब्द–त्र्यब्द–सार्धाब्दा-न्यतमकृच्छ्रप्रायश्चित्तं चिकीर्षुः यथाक्रमम् अशीत्यधिकशत–नवति–पञ्चचत्वारिंशत्संख्याकानां गवां मूल्यं पुरतो निधाय सति संभवे ताव-द्द्रम्मूल्यं च (१)धृत्वा धर्माधिकारिणश्च सभ्यान् सप्त गोमूल्याद्यर्प-णेन संतोष्य साष्टाङ्गं प्रणमेत्। तैश्च 'किं ते कार्यम्' इति पृष्टे [मम—जन्मप्रभृति अद्य यावत्कामाकामाभ्यां सकृदसकृद्वा कृतानां ज्ञाताज्ञातानां कायिकवाचिकमानसिकसांसर्गिकाणाम् अस्पृश्यस्पर्श-नाभक्ष्यभक्षणापेयपानागम्यगमनाभाष्यभाषणादृश्यदर्शनादिजनिता-नां पातकानुपातकोपपातकसंकरीकरणमलिनीकरणजातिभ्रंशकरप्र-कीर्णकादिनानाविधपापानां मध्ये संभावितानां सर्वेषां पापानां निरासार्थम्]

'अनुगृह्य प्रायश्चित्तमुपदिशन्तु भवन्तः' इति शोध्यो ब्रूयात्। पुत्रादिश्चेदाचरति तदा 'ममास्य पित्रादेः' इति वाच्यम्।

सर्वे धर्मविवेक्तारो गोप्तारः सकला द्विजाः।
मम देहस्य संशुद्धिं कुर्वन्तु द्विजसत्तमाः॥
मया कृतं महाघोरं ज्ञातमज्ञातकिल्बिषम्।
प्रसादः क्रियतां मह्यं शुभानुज्ञां प्रयच्छत॥
पूज्यैः कृतः पवित्रोऽहं भवेयं द्विजसत्तमैः।

इति पठेत्, पाठयित्वा शृणुयाद्वा। अथ शोध्यः [पुत्रादिः] ग-न्धादिना पुस्तकस्य सभ्यानामनुवादकस्य च पूजां कृत्वा अनुवाद-काय पापानुसारेण दक्षिणां दत्त्वा गोमूल्यं निबन्धपूजात्वेन पुस्तके

(१) "द्रम्मः पौराणिको मत" इति लक्षितम्। पुराणः कार्षापणः।

निषेदयेत् इत्याचारः । ततः सभ्याग्रणीः शोध्येन [पुत्रादिना] पूजितस्य अनुवादकस्याग्रे 'षडब्द—त्र्यब्द—सार्धाब्दान्यतमेन अमुकप्रायश्चित्तेन पूर्वोत्तराङ्गयुतेन प्रत्याम्नायद्वारा यथाशक्ति आचरितेन तव [पित्रादेः] शुद्धिर्भविष्यति तेन त्वं कृतार्थो भविष्यसि' (तव पित्रादिः कृतार्थो भविष्यति) इति ब्रूहि इति वदेत् । अनुवादकश्च सभ्येन प्रेरितः 'षडब्द' इत्यादि 'कृतार्थो भविष्यसि' (भविष्यति) इत्यन्तं शोध्यं वदेत् । ततः शोध्यः (पुत्रादिः) 'अनुग्रह' इत्युक्त्वा प्रायश्चित्तमङ्गीकृत्य पर्षदं विसृज्य आचम्य गणेशादिप्रणामादि भूतोत्सादनान्तं कृत्वा कुशयवतिलजलमादाय देशकालौ संकीर्त्य मम [पित्रादेः] 'जन्मप्रभृति'इत्यादि 'निरासार्थम्' इत्यन्तं पूर्वोक्तमुल्लिख्य सभ्योपदिष्टम् (पूर्वोक्तान्यतमम् अमुकप्रायश्चित्तं) पूर्वोत्तराङ्गयुतं गोमूल्यदानरूपप्रत्याम्नायद्वारा यथाशक्ति करिष्ये इति प्रधानप्रतिज्ञासंकल्पं कृत्वा तदङ्गत्वेन केशश्मश्रुनखानि वापयिष्ये [वप्स्ये] इति सङ्कल्प्य—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात् केशान्वपाम्यहम् ॥

इति पठित्वा कक्षोपस्थशिखावर्जं केशादीनि नापितद्वारा वपेत् । (पुत्रादिद्वारा प्रायश्चित्ताचरणेऽपि केशादिवपनं शोध्यस्यैव । फलित्वात् । संस्काराणां तद्गतत्वस्यैव न्याय्यत्वात् । ततः विहितकाष्ठेन—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजापशुवसूनि च ।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

इति मन्त्रेण दन्तधावनं कृत्वा तूष्णीं मार्जनात्मकं स्नानं कुर्यात् ।

ततः सति सम्भवे भस्मादिभिर्दशभिः दश स्नानानि क्रमेण कुर्यात् । तत्र प्रथमं भस्मस्नानम् । तद्यथा—श्रौत-स्मार्ताग्निजं भस्म तदभावेऽन्यद्वा भस्मादाय वामपाणौ धृत्वा दक्षिणेनाच्छाद्य "ॐअग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्म मनएतानि चक्षूंषि भस्मानि" इति मन्त्रेण भस्माभिमन्त्र्य ॐईशानाय नम इति शिरसि, ॐतत्पुरुषाय नमः

इति मुखे, ॐ अघोराय नमः इति हृदये, ॐ वामदेवाय नमः इति गुह्ये ॐ सद्योजाताय नमः इति पादयोश्च भस्म विलिप्य प्रणवेन सर्वाङ्गे विलिम्पेत् ।

ततः शुद्धगोमयमादाय—

अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां रसं वने ।
तासामृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम् ॥
यन्मे रोगं च शोकं च नुद गोमय सर्वदा ।

इत्यनेन "मा नस्तोके" इत्यनेन च अभिमन्त्र्य प्रणवेन दक्षिणभागं चतुर्दिक्षु, उत्तरभागं च तीर्थे प्रक्षिप्य शेषं सूर्यं प्रदर्श्य दक्षिणहस्तेन शिरसि तूष्णीं सकृदनुलिप्य नाभेरुपरितनेष्वङ्गेषु द्विरनुलिप्य नाभेरधस्तात्पादपर्यन्तं वामकरेण त्रिरनुलिम्पेत् ।

अथ मृत्तिकास्नानम् । मृत्तिकां गृहीत्वा—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।
मृत्तिके हर मे पापं यद्दैवं यच्च मानुषम् ॥ इत्यभिमन्त्र्य—
उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
शिरसा धारयिष्यामि रक्ष मां त्वं पदेपदे ॥

इति पठित्वा शरीरे गोमयवदनुलिम्पेत् ।

अथ जलस्नानम् ।

ॐ आपोऽअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्वꣳ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः ॥

इति मन्त्रेण स्रोतसि निमज्ज्य ॐ "उदिदाभ्यः शुचिरापूतऽएमि" इत्युन्मज्जेत् । स्रोतसोऽभावे ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्यपाꣳसुरे" इत्यनेन जलमभिमन्त्र्य स्नायात् । शक्त्यभावे "ॐ आपोहिष्ठा" इत्यादिभिस्तिसृभिर्मार्जयेत् ।

ततो गायत्र्या गोमूत्रमभिमन्त्र्य गोमयमिवानुलिप्य गोमयं पुनः पूर्ववदनुलिप्य ॐ आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे" इति दुग्धमभिमन्त्र्य अनुलिप्य

ॐ"दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूꣳषि तारिषत्"॥ इति दधि अभिमन्त्र्य अनुलिप्य ॐ"तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि" इत्याज्यमभिमन्त्र्य अनुलिप्य ॐ"देवस्यत्वा" इति कुशोदकमभिमन्त्र्य अनुलिप्य स्नायात् मार्जयेद्वा।

ततो धौतं वासः परिधाय भस्मना त्रिपुण्ड्रं गोपीचन्दनादिना ऊर्ध्वपुण्ड्रं वा कृत्वा गोदानोक्तविधिना प्रायश्चित्ताधिकारसिद्ध्यर्थं पूर्वाङ्गभूतं गोदानं कृत्वा विष्णुप्रीत्यर्थं ब्राह्मणचतुष्टयाय भोजनपर्याप्तान्नद्विगुणं तत्समं वा आमं, मिष्टलड्डुकादिकं, तन्निष्क्रयं वा दत्त्वा संस्कारदीपकस्य द्वितीयभागोक्तरीत्या [पृ०२४०–२४२] पञ्चगव्यं विधाय स्थण्डिले पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं प्रतिष्ठाप्य तत्सन्निधौ पञ्चगव्यं निधाय ब्रह्मणो वरणमुत्तरतः कृत्वा दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य तत्र ब्रह्माणमग्नेः पूर्वत उपवेश्य कुशकण्डिकोक्तरीत्या [सं० दी० प्र० पृ० १६८] प्रणीताप्रणयनादिपर्युक्षणान्तं कर्म कृत्वा नामकर्मप्रयोगोक्तरीत्या [सं० दी० द्वि० पृ० २४२—] द्रव्यदेवताभिध्यानाग्निपूजनाघाराज्यभागहोमपञ्चगव्यहोमान् कृत्वा 'भो विप्रा व्रतं ग्रहीष्ये' इति ब्राह्मणान् प्रार्थ्य 'गृहाण' इति तैरनुज्ञातो हुतशेषं पञ्चगव्यं प्रणवेन हस्तेनालोड्य, यज्ञियकाष्ठेन प्रणवेनैव निर्मथ्य, तेनैव उभाभ्यां हस्ताभ्यामुद्धृत्य, शब्दमकुर्वन् तेनैव पिबेत्। तद्दिने आहारान्तरं परित्यजेत्। अशक्तौ दुग्धाद्याहारी वा भवेत् (१)। पञ्चगव्य-

---

(१) यत् त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्। ब्रह्मकूर्चं दहेत् सर्वं प्रदीप्तोऽग्निरिवेन्धनम्॥ इति पराशरेण (अध्या० ११। ३७) ब्रह्मकूर्चस्य अभोज्यभोजनादिषु आहारपरिणामेन दुष्टावयवोपचयरूपस्य दोषस्य निवर्तकत्वाभिधानात्, "ब्रह्मकूर्चोपवासेन योन्यां वर्णस्य निष्कृतिः" इत्यनेन 'उपवासपूर्वकेण ब्रह्मकूर्चस्य पञ्चगव्यस्य पानेन शुद्धिर्योज्या' इत्यर्थकेन अपेयपाने, "ब्रह्मकूर्चं तु पावनम्" इत्यनेन अभोज्यभोजने च पञ्चगव्यपानविधानाच्च अपेयपानादौ पञ्चगव्यपानमावश्यकम्। "इरावती, इदं विष्णुः, मानस्तोके च, शंवती। एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं

पानानन्तरं तद्दिने एव वा निशामतिवाह्य दिनान्तरे वा ब्राह्मणान् संपूज्य वृत्वा देयद्रव्यं च संप्रोक्ष्य संपूज्य देशकालौ संकीर्त्य कुशयवतिलजलान्यादाय मम (पित्रादेः) 'जन्मप्रभृति' इत्यादि 'निरासार्थम्' (१२३) इत्यन्तमुल्लिख्य इमानि अशीत्यधिकशत-नवति-पञ्चचत्वारिंशदन्यतमसंख्याककृच्छ्रप्रत्याम्नायभूतानां गवां मूल्यभूतानि पूर्वोक्तान्यतमसंख्याकानि सुवर्णनिष्काणि, तदर्धानि, तदर्धार्धानि वा वह्निदैवतानि—रजतनिष्काणि, तदर्धानि, तदर्धार्धानि वा चन्द्रदैवतानि—पणद्वात्रिंशत्कानि वा (१) सूर्यदैवताकानि—कार्षापणानि वा सूर्यादिदैवतानि यथाविधि विभज्य नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो (युष्मभ्यं संप्रददे) यथाकालं दास्ये ॐ तत्सत् न मम इति संकल्प्य दद्यात् ।

प्रतिगोमूल्यदानं गोमूल्यतृतीयांशं, तद्दशमांशं, यथाशक्ति वा दक्षिणां दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं दद्यात् । ततो भूरादिहोमं संस्रवप्राशनादि पूर्णपात्रदानान्तं च तत्रैवोक्तरीत्या कृत्वा विष्णुश्राद्धानुकल्पभूतं ब्राह्मणचतुष्टयाय आमान्नादिदानं पूर्ववत्कृत्वा उत्तरगोदानं सति सम्भवे स्वरूपतः कुर्यात् । तदशक्तौ मूल्यं सुवर्णनिष्कात्मकं, तत्रा-

---

पिबेद् द्विजः ॥" इत्यनेन तत्रैव तत्पानस्य होमपूर्वकस्य विधानाद्धोमोऽनुष्ठेयः । "शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुध्यति । ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥" इत्यनेन तत्रैव ब्रह्मकूर्चपानार्थं विहितपूर्वदिनोपवासनिषेधपुरःसरं पञ्चगव्यपानस्य सर्वसाधारण्येन विधानात् स्त्रीशूद्राणामपि प्रायश्चित्तार्थं तत्पानमनुमतम् । "पञ्चगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्राह्मणश्च सुरां पिबेत् । उभौ तौ तुल्यदोषौ हि पूयाख्यं नरकं गतौ ॥" इति अत्रिवचनं तु प्रायश्चित्तातिरिक्तपञ्चगव्यपाननिषेधपरम् । "अग्निवर्णां सुरां पिबेत्" इति प्रायश्चित्तभूतसुरापानातिरिक्तपरसुरापाननिषेधवत् । स्त्रीणां शूद्राणां च होमो न कार्यः इत्येके । ब्राह्मणद्वारा कार्य एवेत्यन्ये । पञ्चगव्यपाने कालविशेषमाह जाबालिः—"चतुर्दश्यामुपोष्याथ पौर्णमास्यां विशेषतः । पञ्चगव्यं पिबेत् प्रातर्ब्रह्मकूर्चमिति स्मृतम्" ॥ इति । देशमाह शातातपः—"नद्योतीरेषु गोष्ठेषु पुण्येष्वायतनेषु च । तत्र गत्वा शुचौ देशे ब्रह्मकूर्चं समाचरेत्" ॥ इति ।

(१) "ताम्रे सूर्यस्तथा प्रोक्तः" इति गारुडोक्तेः ।

प्यशक्तौ रजतनिष्कात्मकं, तत्राप्यशक्तौ यथाशक्ति अन्यगोमूल्यापेक्षयाऽधिकं सर्वथा दद्यात्। अत्रापि दक्षिणा दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं देया। ब्राह्मणाश्च "देवस्य त्वा" इति यजुः पठित्वा द्रव्यमनुस्मृत्य अमुकदेवतायै प्रतिगृह्णामि "ॐस्वस्ति" इति प्रतिगृह्य "ॐकोऽदात्" इति कामस्तुतिं पठेयुः। शोध्यश्च [पुत्रादिः] उत्तराङ्गत्वेन अग्निं सम्पूज्य विसृजेत्।

एवं सर्वप्रायश्चित्तं कृत्वा पूर्वोक्तानि दश दानानि कुर्यात्। तत्र गोदानप्रयोगः व्याससमासाभ्यामुक्तः (पृ० १०७)। भूमिदानप्रयोगोऽप्युक्तः (पृ० ११३)। तदनुसारेण ते कुर्यात्।

अथ तिलदानप्रयोग उच्यते।

दाता आचमनादिभूतोत्सादनान्तं कृत्वा द्रोणत्रयपरिमितान् वा द्रोणद्वयपरिमितान् वा द्रोणपरिमितान् वा [पलाधिकपादोनत्रयोदशसेटकमितान्] यथाशक्ति वा तिलान् पुरतः कस्मिंश्चित्पात्रे वस्त्रे वा संस्थाप्य कुशयवादिकमादाय देशकालौ संकीर्त्य मम [पित्रादेः] सकलपापक्षयद्वारा श्रीविष्णुप्रीतये तिलदानं करिष्ये इति प्रतिज्ञाय ब्राह्मणं सम्पूज्य धृत्वा तिलान् संप्रोक्ष्य—

विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णतिलास्तथा।
धर्मस्य रक्षणायालमेतत्प्राहुर्दिवौकसः॥

इति संपूज्य विष्णुप्रीतये इत्यन्तं पूर्वोक्तमुल्लिख्य इमान् द्रोणत्रय–द्रोणद्वय–एकद्रोणान्यतमपरिमितान् तिलान् प्रजापतिदैवताकान् सुपूजिताय ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम इति जलादिकं ब्राह्मणहस्ते प्रक्षिप्य—

महर्षेर्गोत्रसंभूताः कश्यपस्य तिलाः स्मृताः।
तस्मादेषां प्रदानेन मम पापं व्यपोहतु॥

इति मन्त्रं पठित्वा तिलद्रोणं स्पर्शयेत्।

तिलपात्रदानं तु षोडशपलनिर्मिते यथाशक्ति परिमाणनिर्मिते वा ताम्रपात्रे तिलान् निधाय हिरण्यं च यथाशक्ति तत्र धृत्वा पूर्वोक्तविधिना—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।
तिलपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा ॥

इति मन्त्रविशेषं पठन् कुर्यात् । यथाशक्ति सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं दद्यात् । तिलमूल्यं तिलपरिमाणानुसारेण कल्प्यम् ।

हिरण्यदानप्रयोगस्तु उक्तः (पृ० १२१) । तदनुसारेण तद्दानं कर्तव्यम् । नवपणाधिकः कार्षापणो हिरण्यस्य मूल्यम् ।

अथाज्यदानम् । सेटकचतुष्टयमितं, सेटकमात्रं वा आज्यं पुरतो निधाय पूर्ववद्दानप्रतिज्ञां कृत्वा ब्राह्मणं सम्पूज्य वृत्वा आज्यं संप्रोक्ष्य संपूज्य मम (पित्रादेः) सकलपापक्षयद्वारा विष्णुप्रीतये इदमाज्यं विष्णुदैवतं (मृत्युञ्जयदैवतं) तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम इति संकल्प्य—

कामधेनोः समुद्भूतं देवानामुत्तमं हविः ।
आयुर्वृद्धिकरं दातुराज्यं पातु सदैव माम् ॥

इति पठित्वा दद्यात् । सुवर्णं दक्षिणां तन्मूल्यं वा दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं दद्यात् । आज्यमूल्यं कल्प्यम् ।

अथ वस्त्रदानम् । सूक्ष्मतन्तुनिर्मितं वस्त्रद्वयम् अष्टहस्तायतं हस्तद्वयान्यूनविशालं प्रान्तयोरच्छिन्नं नूतनं पुरतो निधाय पूर्ववत् दानप्रतिज्ञा-ब्राह्मणपूजन-वरण-वस्त्रप्रोक्षण-पूजनानि विधाय मम (पित्रादेः) सकलपापक्षयद्वारा विष्णुप्रीतये इदं वासोयुग्मं बृहस्पतिदैवतं तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम इति संकल्प्य—

शीतवातातपत्राणं लज्जाया रक्षणं परम् ।
देहालंकरणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति पठित्वा दद्यात् । सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं दद्यात् । वस्त्रमूल्यं कार्षापणः ।

अथ धान्यदानम् । १६पलाधिक-सप्तसप्ततिसेटकमितं धान्यं व्रीह्यादिरूपं पुरतो निधाय दानप्रतिज्ञादिकं पूर्ववत् कृत्वा धान्यं संप्रोक्ष्य संपूज्य मम (पित्रादेः) सकलपापक्षयद्वारा विष्णुप्रीतये इदं धान्यं प्रजापतिदैवतं तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम इति संकल्प्य—

सर्वदेवमयं धान्यं सर्वोत्पत्तिकरं महत् ।
प्राणिनां जीवनोपायमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति पठित्वा दद्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् । धान्यमूल्यं परिमाणानुसारेण कल्प्यम् ।

अथ गुडदानम् । सेटकत्रयमितं यथाशक्ति वा गुडं पुरतो निधाय दानप्रतिज्ञादि विधाय गुडं संप्रोक्ष्य संपूज्य मम (पित्रादेः) सकलपापक्षयद्वारा विष्णुप्रीतये इमं गुडं सोमदैवतं तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम इति संकल्प्य—

यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरश्च जनार्दनः ।
सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम् ॥
प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा ।
तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः ॥
मम तस्मात्परां लक्ष्मीं ददस्व गुड सर्वदा ।

इति पठित्वा दद्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् । गुडमूल्यं परिमाणानुसारेण कल्प्यम् ।

अथ रजतदानम् । पलत्रयमितं, पलमितं, यथाशक्ति वा रजतं पुरतो निधाय दानप्रतिज्ञादि विधाय रजतं संप्रोक्ष्य संपूज्य मम (पित्रादेः) सकलपापक्षयद्वारा विष्णुप्रीतये इदं रजतं चन्द्रदैवतं (१) तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम इति संकल्प्य—

प्रीतिर्यतः पितॄणां च विष्णुशंकरयोः सदा ।
शिवनेत्रोद्भवं रौप्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

---

(१) यद्यपि "आग्नेयं कनकं प्रोक्तं सर्वलोहानि चाप्यथ" इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तेः लोहशब्दस्य सर्वधातुवाचकत्वात् रजतस्याग्निदैवतत्वं लभ्यते, "रूप्ये च पितरो ज्ञेयाः" इति तुलादानप्रकरणस्थगारुडोक्त्या च पितृदैवतत्वं, तथापि रजतस्य शिवनेत्रोद्भवत्वात्तद्वामनेत्रस्य च चन्द्रात्मकत्वात् वर्णसाम्येन तदुद्भवत्वनिश्चयात् रजतस्य चन्द्रदैवतत्वम् । पितृदैवतत्वोक्तिस्तु पितॄणां चन्द्राधिष्ठानत्वेन । तेषां तदधिष्ठानत्वं च "विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति" इति सिद्धान्तशिरोमण्यादिग्रन्थेषु स्पष्टम् इति दिक् ।

इति पठित्वा दद्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् ।

अथ लवणदानम् । (१६) षोडशपलाधिक(७७)सप्तसप्ततिसेटकमितं यथाशक्ति वा लवणं पुरतो निधाय दानप्रतिज्ञादि विधाय लवणं संप्रोक्ष्य संपूज्य मम (पित्रादेः) सकलपापक्षयद्वारा विष्णुप्रीतये इदं लवणं सोमदैवतं तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम ।

यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कृष्टा लवणं विना ।
शम्भोः प्रीतिकरं यस्मादतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥

इति पठित्वा दद्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् । लवणमूल्यं परिमाणानुसारेण कल्प्यम् ।

इति दश दानानि ।

अथ प्रसङ्गात् पञ्चधेनूनां दानानि ।

तत्रादौ पापधेनुदानम् । श्वेतां गां तन्मूल्यं वा पुरतः संस्थाप्य दानप्रतिज्ञां विधाय ब्राह्मणं संपूज्य कृत्वा "नमो गोभ्य" इति गां संपूज्य तदभावे "हिरण्यगर्भगर्भस्थम्" इत्यादिना मूल्यं संपूज्य मम (पित्रादेः) मनोवाक्कायैः आजन्मोपार्जितज्ञाताज्ञातसकलपापक्षयद्वारा विष्णुप्रीतये इमां पापापनोदधेनुं रुद्रदैवतां [इदं पापापनोदधेनुमूल्यं सुवर्णादिद्रव्यं वह्न्यादिदैवतं] तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम ।

आजन्मोपार्जितं पापं मनोवाक्कायसंभवम् ।
तत्सर्वं नाशमायातु गोप्रदानेन केशव ॥

इति पठित्वा ब्राह्मणहस्ते गोपुच्छं दद्यात् । गोमूल्यं तु—

गोमूल्यदानात् तत्सर्वं नाशमायातु केशव ।

इत्युत्तरार्धयुक्तं पूर्वार्धं पठन् दद्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् ।

अथ ऋणधेनुदानम् । गां तन्मूल्यद्रव्यं वा पुरतो निधाय दानप्रतिज्ञादिकं पूजनान्तं पापधेनुवत्कृत्वा मम [पित्रादेः] ऐहिकामुष्मिकानेकजन्मार्जितदेवऋषिपितृमनुष्यादिसमस्तऋणपापक्षय-द्वारा

विष्णुप्रीतये इमाम् ऋणापनोदधेनुं यथाशक्त्यलंकरणयोजितां रुद्रदैवतां [इदम् ऋणापनोदधेनुमूल्यं सुवर्णादिद्रव्यं वह्न्यादिदैवतं] तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम ।

ऐहिकामुष्मिकं यच्च सप्तजन्मार्जितं त्वृणम् ।
तत्सर्वं शुद्धिमायातु गामेतां ददतो मम ॥

इति पठित्वा पूर्ववद् दद्यात् । गोमूल्यं तु—चतुर्थपादस्थाने "गोमूल्यं ददतो मम" ।

इति चतुर्थपादं योजयन् दद्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् ।

अथ मोक्षधेनुदानम् । गां द्रव्यं वा पुरतो निधाय दानप्रतिज्ञादि पूर्ववत्कृत्वा मम [पित्रादेः] भगवत्प्रसादात् मोक्षप्राप्तये इमां मोक्षधेनुं रुद्रदैवतां [इदं मोक्षधेनुमूल्यं सुवर्णादि वह्न्यादिदैवतम्] तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सन्न मम ।

मोक्षं देहि हृषीकेश मोक्षं देहि जनार्दन ।
मोक्षधेनुप्रदानेन मुकुन्दः प्रीयतां मम [पित्रादेः] ॥

इति पठित्वा दद्यात् । मूल्यं तु—

"मोक्षधेनुमूल्यदानात्"—

इति तृतीयपादस्थाने योजयन् दद्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् । इमानि पापधेन्वादीनि त्रीणि मिताक्षराटीकायां "पुराणान्तरे" इत्युपक्रम्योक्तानि ।

प्रायश्चित्तधेनुश्च श्राद्धरत्नावल्याम् । तस्या दानमन्त्रः—

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने निष्कृतिर्न कृता यदि ।
तस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं धेनुमेतां ददामि ते ॥ इति ।

मूल्यदाने तु 'धेनुमूल्यं ददामि ते' इत्यूहः । दानप्रयोगस्तु पापधेनुवद्बोध्यः । प्रेतमञ्जर्यां तु इयं दशदानेभ्यः पूर्वं निर्दिष्टा । युक्तं चैतत् । अस्याः सर्वप्रायश्चित्तस्थानीयत्वेन दशदानानां च सर्वप्रायश्चित्तानन्तरमनुष्ठेयत्वेन तेभ्यः पूर्वमेवास्या अनुष्ठेयत्वात् ।

अथ वैतरणीदानम् । तत्र व्यासः—

आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्ववत् ।
तदभावे तु गौरेव नरकोत्तारणाय वै ॥ इति ।

ब्रह्मवैवर्त्ते वैतरणीनदीस्वरूपं भयानकमुपवर्ण्य तस्यास्तरणाय अयनादिषु पुण्यकालेषु पाटलायाः कृष्णाया वा गोदानम् उक्तम् । तद्यथा—द्रोणपरिमितकार्पासस्य शिखराकारं सम्पाद्य पूर्वं सजलं गर्तं कृत्वा तस्मिन् पट्टवस्त्रबद्धामिक्षुदण्डमयीं नौकां संस्थाप्य तत्र द्रोणमितकार्पासं शिखराकारं धृत्वा तत्र वस्त्राच्छन्नं ताम्रपात्रं निधाय तत्र सौवर्णं यमं लोहदण्डयुतं धृत्वा उपरिभागे कांस्यपात्रं धृत्वा तत उपरिभागे कार्पासे सुवर्णशृङ्गादियुतां कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां गां सप्तधान्ययुतामुपवेश्य मम [पित्रादेः] वैतरणीनदीतरणार्थं गोदानं करिष्ये इति दानप्रतिज्ञां कृत्वा ब्राह्मणं संपूज्य वृत्वा "ॐनमो गोभ्य" इति गां संपूज्य कुशादिकमादाय गोपुच्छं करे कृत्वा पादतः नावमाश्रित्य ब्राह्मणं पुरस्कृत्य मम (पित्रादेः) वैतरणीनदीतरणार्थमिमां कृष्णां गां यथाशक्त्यलंकृतां रुद्रदैवतां सवत्सां यमप्रतिमायुतां कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां सप्तधान्ययुतां स्वर्णशृङ्गाद्युपस्करोपेतां कार्पासद्रोणशिखरासीनां सजलगर्तं स्थापितायामिक्षुदण्डमयनौकायां स्थितां तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम ।

यमद्वारे महाघोरे कृष्णा वैतरणी नदी ।
तां तर्तुकामो यच्छामि कृष्णां वैतरणीं तु गाम् ॥
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेव पंक्तिपावन ।
सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः ॥
भवसागरमग्नानां शोकतापोर्मिदुःखिनाम् ।
त्राता त्वं हि जगन्नाथ शरणागतवत्सलः ॥

इति पठित्वा दद्यात् । धर्मराजं ब्राह्मणं गां च प्रदक्षिणीकृत्य गोपुच्छं करे धृत्वा सप्तपदान्यनुव्रज्य—

धेनुके मां [धेनो एतं] प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये ।

उत्तितीर्षुरहं [रथं] देवि वैतरण्यै नमोऽस्तु ते ॥

इति प्रार्थयेत् । गोरभावे मूल्यमेव पुरतो निधाय दानप्रतिज्ञादि विधाय इदं वैतरणीमूल्यं सुवर्णादि अमुकदैवतं मम (पित्रादेः) वैतरणीनदी–तरणार्थं संप्रददे ॐतत्सत् न मम ।

वैतरण्यास्तु गोर्मूल्यं तत्कामो ददामि ताम् ।

इत्युत्तरार्धं प्रथमश्लोके योजयित्वा पठन् गोमूल्यं दद्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् ।

अथ उत्क्रान्तिधेनुदानम् । गां तन्मूल्यं वा पुरतो निधाय दानप्रतिज्ञादि पूर्ववत्कृत्वा मम (पित्रादेः) सुखेन प्राणोत्क्रमणप्रतिबन्धकोक्तनिष्कृत्यनुक्तनिष्कृतिसकलपातकक्षयद्वारा सुखेन प्राणोत्क्रमणसिद्धये इमामुत्क्रान्तिधेनुं रुद्रदैवतां (इदमुत्क्रान्तिधेनुमूल्यं सुवर्णादि वह्न्यादिदैवतं) तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सत् न मम ।

अप्युत्क्रान्तौ प्रवृत्तस्य सुखोत्क्रमणसिद्धये ।
तुभ्यमेनां संप्रददे धेनुमुत्क्रान्तिसंज्ञिकाम् ॥

इति पठित्वा दद्यात् । गोमूल्यं तु—

धेनोरुत्क्रान्तिसंज्ञाया मूल्यं तुभ्यं ददाम्यहम् ।

इत्युत्तरार्धं योजयन् दद्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् । इति पञ्च धेनुदानानि ।

अथ अश्वदानम् ॥

देयसुवर्णपरिमाणकथनप्रसङ्गेन दशदानानि, प्रसङ्गागतं सर्वप्रायश्चित्तं, पञ्चधेनुदानानि चाभिधाय दशमहादानेषु सुवर्णदानोत्तरं पठितमश्वदानमिदानीं निरूप्यते । महाभारते—

सर्वोपकरणोपेतं युवानं दोषवर्जितम् ।
योऽश्वं ददाति विप्राय स्वर्गलोके महीयते ॥
यावन्ति रोमाणि हये भवन्ति हि नरेश्वर ।
तावतो वाजिदा लोकान् प्राप्नुवन्तीह पुष्कलान् ॥

कौर्मे—

अश्वं तन्मूल्यमथवा कनीयोमध्यमोत्तमम् ।
दद्याद्वित्तानुसारेण तारागणपरिच्छदम् ॥

तारागणस्तारानुकार्यश्वालंकारविशेषः ।

अश्वमूल्यं च–कात्यायनेन "कार्षापणा" इत्यनुवर्तमाने "अश्वे पञ्चदशैव तु" इति कार्षापणपञ्चदशकम् उक्तम् । तच्चोत्तमं, तदर्धं मध्यमं, तदर्धं कनीयः ।

शफैः पञ्चपलै रौप्यैः सुवर्णालंकृतं क्रमात् ।
सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणे ॥ इति ।

मन्वादियुगाद्ययनविषुवोपरागादिपुण्यकालेषु दानं कार्यम् ।

अथ अश्वदानप्रयोगः ।

सुलिप्तायां भूमौ सर्वोपस्करसंयुतं यथाशक्ति सुवर्णपट्टवस्त्राद्यलंकृतमश्वं पूर्वाभिमुखमुपस्थाप्य यथोक्तलक्षणं ब्राह्मणमुत्तराभिमुखमुपवेश्य स्वयं यजमानः स्वासने पूर्वाभिमुख उपविश्य पवित्रपाणिराचम्य ॐसुमुखश्चेत्यादिसामान्यवद्विधाय अर्घस्थापनान्ते संकल्पं कुर्यात्–ॐविष्णुः३ अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं समस्तपापक्षयपूर्वकाश्वरोमसमसंख्याकाब्दान् सूर्यलोकनिवासकामः स्वर्गकामो वा अश्वदानं करिष्ये । तत्पूर्वाङ्गत्वेन ब्राह्मणस्य पूजनपूर्वकं वरणम्, अश्वपूजनं च करिष्ये । ततो ब्राह्मणं पादप्रक्षालनपूर्वकमर्घ्यादिभिः नमोऽस्त्वनन्तायेत्यादिना सम्पूज्य वरणसामग्रीं करयोः कृत्वा एभिर्गन्धाक्षतपुष्पमालायज्ञोपवीतपूगीफलद्रव्यवासोभिः अमुकगोत्रम् अमुकवेदाध्यायिनम् अमुकशर्माणं ब्राह्मणम् अश्वदानप्रतिग्रहार्थं त्वामहं वृणे । ॐवृतोऽस्मीति प्रत्युक्तिः । अथाश्वपूजनम् । तत्र सर्वोपचारमन्त्रः—

महार्णवे समुत्पन्न उच्चैःश्रवसपुत्रक ।
मया त्वं पूजितो वाजिन् शान्तिदो भव सर्वदा ॥

अनेन पाद्यादिनीराजनान्तं सम्पूज्य सकुशयवतिलजलहस्तो

दानसंकल्पं कुर्यात् । ॐविष्णुः३ अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं पूर्वोक्तफलसिद्धिकामः सुपूजितमिममश्वं सु-वर्णं [सति संभवे तिल-कालंकृतललाटं, ग्रैवेयकसुपर्याणान्वितं, रौप्यरत्नकटकशोभितं, वज्र-नेत्रं, ताम्रखुरं, क्षौमपुच्छं, सुवाससं, शुभ्रपट्टकसंवृतं, स्वायुधान्वितं, धान्यरत्नोपरिस्थितं, सुवद्धकक्षं] यमदैवतं सुपूजिताय ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सन्न मम । इति संकल्प्य सकुशतिलोदकम् अश्वस्य दक्षिणं कर्णं धृत्वा ब्राह्मणहस्ते—

उच्चैःश्रवास्त्वमश्वानां राज्ञां विजयकारकः ।
सूर्यवाह नमस्तुभ्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति दानवाक्यम्—(मत्स्यपुराणे) पठित्वा दद्यात् ।

ब्राह्मणश्च कर्णे एव स्पृशन् "ॐदेवस्य त्वा" इति पठित्वा ॐस्व-स्तीति प्रतिगृह्णीयात् । कामस्तुतिं च पठेत् । यजमानः सब्राह्मण-मश्वं प्रदक्षिणीकृत्य अश्वसप्तसप्तपदानि यावत् अश्वस्य पुरतो गत्वा भास्करं मनसि ध्यात्वाऽवलोक्य च स्वगृहं परावर्तेत । आसने उपविश्य दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं संकल्प्य दत्त्वा भूयसीं च सं-कल्प्य विभज्य कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा आचार्यादीन्भोजयित्वा स्वयमपि भुञ्जीत । इत्यश्वदानम् ।

तिलदानस्य दशदाननिरूपणप्रसङ्गेनैव प्रदर्शितत्वात् क्रमप्राप्तं हस्तिदानं निरूप्यते ।

अथ हस्तिदानम् ॥

कूर्मपुराणे—दद्याद्गजं पुराणोक्तमूल्यं, पञ्च शतानि वा ।
वित्तानुसारात् तत्रापि कनिष्ठोत्तममध्यमम् ॥
पुराणोक्तं मूल्यमत्र हेममाषशतद्वयम् ।

स्वरूपतो गजदानमुत्तमम् । पञ्चशतानीत्यत्र हेममाषाः संबध्यन्ते । तथाच विंशतिगुञ्जाधिकैकत्रिंशत्कर्षपरिमितसुवर्णदानं मध्यमम् । सार्धद्वादशकर्षपरिमितसुवर्णदानं कनिष्ठम् । कात्यायनेन तु पञ्चशत-कार्षापणा गजमूल्यमुक्तम् । तत्र कार्षापणः पञ्चविध इति पूर्वं निरूपितम् ।

स्वरूपतो गजदानमुक्तं विष्णुसंहितायाम्—

कक्षारज्जुभिरायत्तं शुभासनसमन्वितम्।
मणिकाञ्चनमालाभिर्भूषितं कर्णचामरैः॥
सूत्रखण्डैश्च पुष्पैश्च भूषितं दोषवर्जितम्।
यथालाभोपपन्नं वा यः प्रयच्छति दन्तिनम्॥
ब्राह्मणाय दरिद्राय स्वर्गलोके महीयते।
कर्मक्षयादिहागत्य महाराजो गजाधिपः॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते नात्र संशयः। इति।

अथ हस्तिदानप्रयोगः।

सुलिप्तायां भूमौ दाता प्राङ्मुख उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य गणेशप्रणामादिभूतोत्सादनान्तं कृत्वा प्रत्यङ्मुखं गजं संस्थाप्य ब्राह्मणं चोदङ्मुखं पुरत उपवेश्य दानप्रतिज्ञां कृत्वा ब्राह्मणं संपूज्य दत्वा गजं च शुण्डायां संपूज्य यथाशक्ति कक्षारज्जुस्थिरासनाद्युपचारयुतं संपाद्य कुशादिकमादाय देशकालौ संकीर्त्य अक्षयस्वर्गकामः सकलपापक्षयकामो वा रोगनिवृत्तिकामो वा इमं हस्तिनं [कक्षारज्जुस्थिरासनसहितं काञ्चनमालाकीर्णं चामरगन्धपुष्पालंकृतं] प्रजापतिदैवतं [गजमूल्यममुकदैवतम्] तुभ्यमहं संप्रददे ॐतत्सन्न मम इति विप्रहस्ते शुण्डादण्डं कुशादियुतं—

त्रिलोकीनाथ देवेश सर्वभूत दयानिधे।
गजदानेन तुष्टस्त्वं प्रयच्छ मम वाञ्छितम्॥

इति मन्त्रं पठित्वा दद्यात्। ब्राह्मणश्च गजमारुह्य "देवस्य त्वा" इति यजुः पठित्वा प्रजापतये प्रतिगृह्णामि ॐस्वस्ति इति शुण्डां धृत्वा प्रतिगृह्य कामस्तुतिं पठेत्। गजमूल्यं तु—

गजमूल्यस्य दानेन तुष्टस्त्वं देहि वाञ्छितम्।

इत्युत्तरार्धं योजयन् दद्यात्। दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दद्यात्। ब्राह्मणसहितं गजं प्रदक्षिणीकृत्य भूयसी-ब्राह्मण-भोजनसंकल्पं कृत्वा कर्म ईश्वरार्पणं कुर्यात्।

इति गजदानम्।

अथ दासीदानम् ।

कौर्मे—दासीं दद्याद्यथाशक्ति मूल्येनालंकृतां शुभाम् ।
सुवर्णरजतैः सार्धं विधिवद्दक्षिणायुताम् ॥
वित्तानुसारात् तां दत्त्वा विप्राय गृहमेधिने ।
मोदतेऽप्सरसां लोके यावत्कल्पशतत्रयम् ॥ इति ।

वह्निपुराणे दासीदानं प्रशस्य पर्वादिकं तत्कालं च प्रदर्श्य—
अलंकृत्य यथाशक्ति वासोभिर्भूषणैस्तथा ।
ब्राह्मणाय प्रदातव्या मन्त्रेणानेन शक्तितः ॥
इयं दासी [अयं दासो]मया तुभ्यं श्रीवत्स प्रतिपादिता[तः]।
सर्वकर्मकरी भोग्या[करो भोग्यो]यथेष्टं भद्रमस्तु ते ॥ इति।
पञ्चवर्षाधिका सा तु चत्वारिंशत्समावधिः ।
दासी द्विजाय दातव्या दासदानेऽप्ययं विधिः ॥

दासदाने पुंलिङ्गनिर्देशो मन्त्रे ।

अथ दासीदानप्रयोगः ।

दाता भूतोत्सादनान्तं दानप्रतिज्ञादिकं च पूर्ववत्कृत्वा कुशादिपाणिर्देशकालौ संकीर्त्य कल्पशतत्रयम् अप्सरसां लोके निवासकामो विष्णुलोकप्रीतिकामो वा इमां दासीं यथाशक्त्यलंकृतां गन्धपुष्पादिभिरर्चितां प्रजापतिदैवतां [दासीमूल्यममुकदैवतम्] तुभ्यमहं सम्प्रददे ॐ तत्सत् न मम इति संकल्प्य "इयं दासी" इति पूर्वोक्तं मन्त्रं पठित्वा मूर्धानं स्पर्शयन् दद्यात्। दासीमूल्यं तु—
सर्वकर्मकरी भोग्या दासी प्रोक्ता मनीषिभिः ।
तस्या मूल्यं मया दत्तं तेनेशः प्रीयतां मम ॥

इति ऊहेन पठन् दद्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् । दासीमूल्यं पञ्चाशत्कार्षापणाः ।

अथ रथदानम् ।

कूर्मपुराणे—रथं चतुर्बलीवर्दैरूढं धान्यावृतं त्रिधा ।
वित्तानुसारात् सर्वैश्च रथोपकरणैर्युतम् ॥

सदक्षिणं च विप्राय दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत् ।

धान्यावृतम्—अष्टादशभिः धान्यैर्युतम् । त्रिधेति त्रिकर्षद्विकर्ष-एककर्षान्यतममितसुवर्णदक्षिणानुसारात् उत्तममध्यमकनिष्ठभेदेन त्रिविधम् । रथोपकरणानि युग–योक्त्र–प्रतोद–वरत्रादीनि ।

अथ रथदानप्रयोगः ।

दाता भूतोत्सादनान्तं, दानप्रतिज्ञादिकं च कृत्वा कुशादियुत-हस्तः देशकालौ संकीर्त्य निरतिशयस्वर्गादिसुखशिवपुरगमनकामः विष्णुप्रीतिकामो वा इमं रथं चतुर्भिर्बलीवर्दैर्युक्तमष्टादशधान्यपरिवृतं सकलोपस्करयुतं विश्वकर्मदैवतम् (अङ्गिरोदैवतं) [रथमूल्यमग्नु-कदैवतम्] ब्राह्मणे तुभ्यमहं सम्प्रददे ॐतत्सन्न मम ।

रथाय रथनाथाय नमस्ते विश्वकर्मणे ।

विश्वरूपाय नाथाय अरुणाय नमोनमः ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं मन्त्रं पठित्वा ईषादण्डं स्पर्शयन् ब्राह्म-णहस्ते जलादिकं दद्यात् । रथमूल्यं तु मूल्यदानमन्त्रं पठन्नेव द-द्यात् । दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सुवर्णं तन्मूल्यं वा दद्यात् । रथमूल्यं षट् कार्षापणाः ।

अथ भूमिदानस्य अतिदानेष्वेव निरूपितत्वात्
अष्टमं गृहदानाख्यं महादानं निरूप्यते ।

तत्प्रकारो हेमाद्रौ मात्स्ये—

पक्वेष्टकामयं कृत्वा शैलजं वाऽपि दारुजम् ।

मृन्मयं वाऽपि भवनं शुभलक्षणसंयुतम् ॥

पञ्चावरणशोभाढ्यं धेन्वा चैव समन्वितम् ।

अर्जुनैः सरलैः सालैरन्यैश्चैव मनोरमैः ॥

तिनिशैः सर्जवृक्षैश्च कदम्बैः सह वञ्जुलैः ।

शुभस्थानसमुत्पन्नैर्वास्तुलक्षणसंयुतम् ॥

अत्रार्जुनादिवृक्षोपादानं वास्तुशास्त्रोक्तवृक्षमात्रोपलक्षणम् । एतै-र्दारुभिर्भवनं कृत्वेत्यर्थः ।

स्थापनं च यथान्यायं भूमेश्चैव तु शोधनम् ।
मार्जनं सिञ्चनं चैव शन्तातीयेन कारयेत् ॥

शन्तातीयेन—"शं न इन्द्राग्नी" इत्यादिना सूक्तेन ।

मङ्गल्यानुपहारांश्च वास्तुविद्योदितांस्तथा ।
देवतापञ्चकं तत्र चत्वारिंशत्समन्वितम् ॥
पूजयित्वा यथान्यायं ततो दद्याद् गृहं गृही । इति ।

वास्तुलक्षणं पञ्चचत्वारिंशद्देवताक्रमश्च वास्तुशास्त्रे—

एकाशीतिपदं कुर्यात् रेणुभिः कनकेन च ।
पश्चात्पिष्टेनानुलिम्पेत् सूत्रेणालोड्य सर्वतः ॥
दश पूर्वापरा रेखा दश चैवोत्तरायताः ।
सर्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव ॥
शान्ता यशोवती कान्ता विशाला प्राणवाहिनी ।
सती च सुमना नन्दा सुभद्रा सुस्थिता तथा ॥
पूर्वापरागता ह्येताः, उदग्याम्याश्रितास्तथा ।
हिरण्या सुव्रता लक्ष्मीर्विभूतिर्विमला प्रिया ॥
जया काला विशोका च तथेन्द्रा दशमी स्मृता ।
अङ्गुष्ठकेन वा कुर्यात् मध्याङ्गुल्या तथैव च ॥
प्रदेशिन्या वाऽपि तथा स्वर्णरौप्यादिधातुना ।
मणिना कुसुमैर्वापि दध्यक्षतफलैस्तथा ॥
अपसव्यक्रमे वैरं सव्ये संपदमादिशेत् ।
आदौ सम्पूज्य गणपं दिक्पालान्पूजयेत्ततः ॥
धरित्रीकलशं स्थाप्य, मातृकाः पूजयेत्ततः ।
नान्दीश्राद्धं ततः कुर्यात् पुण्याहं वाचयेत्ततः ॥
अग्निसंस्थापनार्थाय मेखलात्रयसंयुतम् ।
कुण्डं कुर्याद्विधानेन योन्याकारं विशेषतः ॥
स्थण्डिलं वा प्रकुर्वीत मतिमान् सर्वकर्मसु ।
पदस्थान्पूजयेद्देवान् त्रिंशत् पञ्चदशैव च ॥

शिखी चैकपदः प्रोक्तः पर्जन्यश्च तथैव च ।
जयन्त इन्द्रः सूर्यश्च सत्यभृशौ द्विकोष्ठकाः ॥
पदैकमन्तरिक्षं तु वायुश्चैकपदः स्मृतः ।
पूषा चैकपदो ह्यस्मिन् द्विपदो वितथस्तथा ॥
द्विपदौ दक्षिणाशास्थौ गृहक्षतयमावुभौ ।
गन्धर्वमृगराजौ तु द्विपदौ परिकीर्तितौ ॥
मृगः पितृगणश्चैव दौवारिकश्चैकपदाः ।
सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च वरुणश्च तथैव च ॥
असुरश्च तथा शोषः पञ्चैते द्विपदाः स्मृताः ।
पापो रोगस्तथा सर्पस्त्रयश्चैकपदा मताः ॥
मुख्यभल्लाटसोमाख्याः सर्पाश्चैवादितिस्तथा ।
पञ्चैते द्विपदाः प्रोक्ता दितिरेकपदा स्मृता ॥
ईशानकोणमारभ्य द्वात्रिंशद्बाह्यतः स्थिताः ।
आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च ।
तदन्तर्गांश्चैकपदान् ईशानादिषु विन्यसेत् ।
अर्यमा त्रिपदः पूर्वे सविताऽऽग्नेय एकपात् ॥
विवस्वांस्त्रिपदो याम्ये इन्द्रश्चैकपदस्तथा ।
नैर्ऋते पश्चिमे मित्रस्त्रिपदः परिकीर्तितः ॥
वायव्ये राजयक्ष्मा च एकपादः प्रकीर्तितः ।
उत्तरे त्रिपदः पृथ्वीधरो यश्चापवत्सकः ॥
एकपात् स तु विज्ञेयः स्थाप्यश्चेशानकोणके ।
मध्ये नवपदो ब्रह्मा पीतः श्वेतश्चतुर्भुजः ॥ इति ।

एषां वर्णाश्च विश्वकर्मप्रकाशे उक्ताः प्रयोगे प्रदर्शयिष्यन्ते। मण्डलाद्बहिः ईशानादिकोणेषु चरक्यादीनां, पूर्वादिषु स्कन्दादीनां च पूजनं तत्रोक्तं तदपि प्रयोगे द्रष्टव्यम्। अत्र पूर्वस्यां बाह्यपङ्क्तौ ईशानकोणात् तृतीय–चतुर्थ–पञ्चम–षष्ठ–सप्तमानां पञ्चानां पदानां द्विकोष्ठकत्वं तत्तत्पश्चिमस्थितकोष्ठकेन सहैकीकरणाद्बोध्यम् । एवं दक्षिणबाह्यपङ्क्तौ अग्निकोणात्तृतीयादीनां पञ्चानां तत्तदुत्तरस्थितकोष्ठकेनै-

कीकरणात्, पश्चिमबाह्यपङ्क्तौ नैर्ऋतकोणात्तृतीयादीनां पञ्चानां तत्तत्पूर्वस्थितकोष्ठकेनैकीकरणात्, उत्तरबाह्यपङ्क्तौ च वायुकोणात्तृतीयादीनां तत्तद्दक्षिणस्थितकोष्ठकेनैकीकरणात् द्विकोष्ठकत्वम्।

पर्जन्यात् पश्चिमे आपः, आकाशात्पश्चिमे सावित्रः, दौवारिकात्पूर्वस्मिन् जयः, पापात् पूर्वस्मिन् रुद्र इति अन्तर्गताश्चत्वारः स्थाप्याः। "अर्यमा त्रिपदः पूर्वे" इत्यादौ पूर्वत्वादिकं नवपदब्रह्मापेक्षया। नैर्ऋते इति पूर्वान्वयि।

गृहदानार्थं गृहनिर्माणस्य पूर्वोक्तमात्स्ये विधानात्—

प्रासादभवनोद्यानमारम्भे परिवर्तने।

इत्यादिना च तत्रैव गृहारम्भे वास्तुशान्तेर्विधानात्, वास्तुशान्त्यन्ते च ईशानादिकोणेषु मध्यभागे च—

इति वास्तुविधानं तु कृत्वा तां स्नानमण्डपात्।
समानीय शिलां तत्र सूत्रधारो गुणान्वितः॥
तत्र दिक्साधनं कुर्याद् गृहमध्ये सुसाधिते।
ईशानादिक्रमेणैव स्वर्णकुद्दालकेन तु॥
खनित्वा कोणभागे तु मध्ये चैव विशेषतः।
नाभिमात्रे तथा गर्ते शिलानां स्थापनं शुभम्॥

इति शिलान्यासविधानाच्च—

पूर्वं शिलान्याससहितो वास्तुशान्तिप्रयोगः प्रदर्शनीयः।

तत्र सर्वेषां कार्याणामारम्भे शौनकेन—

कार्यारम्भेषु सर्वेषु नववेश्मप्रवेशने।

इत्यादिना ग्रहयागस्यापि विधानात् सति सम्भवे ग्रहयागसहिता वास्तुशान्तिः कर्तव्या।

"कार्यारम्भेषु" इत्यर्धानन्तरम्—

"आरोग्यस्नानसमये संक्रान्तौ रोगसम्भवे।
अभिचारे च यः कुर्यात् ग्रहशान्ति विधानतः॥
सोऽभीष्टफलमाप्नोति" इत्युक्त्या सर्वकार्यारम्भेषु ग्रहशान्तेः काम्यत्वात्, वास्तुशास्त्रे गृहारम्भाङ्गवास्तुशान्तौ "धरित्री कलशं

स्थाप्य" इति कलशस्थापनं निर्दिश्य मध्ये मातृपूजन–नान्दीश्राद्ध–पुण्याहवाचनानि, कुण्ड–स्थण्डिलान्यतरनिर्माणं च निर्दिश्य पूर्वोक्तैकाशीतिपदवास्तुमण्डले पूजनीयदेवानां पञ्चचत्वारिंशत्संख्यां, शिख्यादीनि नामानि, एकपदत्व–द्विपदत्वादीनि स्वरूपाणि, रक्तादिवर्णांश्च मध्ये निर्दिश्य—

कलशे स्थापयेद्देवं वरुणं वरुणेत्यतः ।
कलशं पूरयेत्तीर्थवारिणा सर्वबीजकैः ॥
सर्वौषधैः सर्वरत्नैर्गन्धैश्च विविधैस्तथा ।
पल्लवैः पञ्चकाषायैर्मृदा शुद्धोदकेन वा ॥

इत्यनेन कलशस्थापनं तस्य जलेन पूरणं च विधाय—

मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् ।
शठी–चम्पक–मुस्ताश्च सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥
अश्वत्थो–दुम्बर–प्लक्ष–चूत–न्यग्रोधपल्लवाः ।
पञ्चभङ्गा इमे प्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभनाः ॥
वटी–वटो–दुम्बरस्य वेतसस्य तथैव च ।
अश्वत्थस्यैव मूलं च पञ्च काषायकाः स्मृताः ॥

इति सर्वौषधादीनि कलशे प्रक्षेपणीयानि निर्दिश्य—

ग्रहांश्च पूजयेत्तत्र वास्तुमण्डलमास्थितान् ।

इत्यनेन ग्रहपूजनमात्रस्यैव विधानात् तावन्मात्रमेव वा कर्तव्यम् ।

शिख्यादिपञ्चचत्वारिंशद्देवांस्तत्र पूजयेत् ।
वेदमन्त्रैर्नाममन्त्रैः प्रणवव्याहृतिभिस्तथा ॥

इति ग्रहपूजनानन्तरं वास्तुमण्डलस्थानां पञ्चचत्वारिंशद्देवानां पूजनमभिधाय—

होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके ।
यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत्समिद्भिः क्षीरवृक्षकैः ॥
पालाशैः खादिरैर्वाऽपामार्गोदुम्बरसंभवैः ।
कुशदूर्वामयैर्वाऽपि मधुसर्पिःसमन्वितैः ॥
कार्यस्तु पञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वबीजैरथापि वा ।

होमान्ते भक्ष्यभोज्यैश्च वास्तुदेशे बलिं हरेत् ॥
नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन सर्वतः ।
ततो व्याहृतिभिर्होमं स्विष्टकृद्धोममेव च ॥
पूर्णाहुतिं च जुहुयात् संस्रवमाशनं ततः ।

इति शिख्यादिदेवोद्देशेन होमबलिदानयोर्विधानात् ग्रहपूजनानन्तरं वास्तुमण्डलदेवतापूजनं कृत्वा तदुद्देशेन होमं च कृत्वा बलिदानं कार्यम् । अतएव ग्रहयागकरणेऽपि वेद्यां ग्रहाणां पूजनं वास्तुदेवतापूजनापेक्षया पूर्वमेव कार्यम् । होमोऽपि ग्रहोद्देश्यकः वास्तुदेवतोद्देश्यकहोमापेक्षया पूर्वमेव । ग्रहशान्तेः सकलकर्मसाधारणत्वेन पुण्याहवाचनादीनामिव कर्मारम्भात्पूर्वमेवानुष्ठातुमुचितत्वात् इति दिक् ।

गृहनिर्माणाय भूपरीक्षा चोक्ता पूर्तकमलाकरे मात्स्ये—

पूर्वं भूमिं परीक्षेत पश्चाद्वास्तुं प्रकल्पयेत् ।
अरत्निमात्रे गर्ते तु परीक्ष्यं खातपूरणे ॥
अधिके श्रियमाप्नोति न्यूने हानिः समे समम् ।
फालकृष्टेऽथवा देशे सर्वबीजानि वापयेत् ॥
त्रि–पञ्च–सप्तरात्रेण यत्र रोहन्ति तान्यपि ।
ज्येष्ठोत्तमा कनिष्ठा भूर्ग्राह्या वर्ज्या च सा मता ॥ इति ।
अरत्निमात्रे गर्ते वै अनुलिप्ते तु सर्वशः ॥
घृतमामशरावस्थं कृत्वा वर्तिचतुष्टयम् ।
ज्वलयेद्‌ भूपरीक्षार्थं संपूर्णं सर्वदिङ्मुखम् ॥
दीप्त्या पूर्वादि गृह्णीयाद्‌ वर्णानामनुपूर्वशः ।

सर्वतो दीप्तौ सर्वेषां शुभदा ।

यदि गृहारम्भे स्वामिनोऽङ्गे कण्डूतिः अन्यद्वा अपशकुनं जायते तदा भूमौ शल्यं विजानीयात् । तां भुवं परित्यजेत् । शल्योद्धारं वा कुर्यात् । तदर्थं पुरुषमात्रं गर्तं खनेत् । शल्यालाभे शल्यदोषापनु-

त्तये(१) वास्तुशान्तिं कृत्वा गृहं तत्र कुर्यात्। पुरुषमात्रादधिकं गृहनिर्माणे न खनेत्।

पुरुषाधःस्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत्।
प्रासादे दोषदं शल्यं भवेद्यावज्जलान्तिकम्॥

इति गृहे पुरुषाधःस्थितस्य शल्यस्यादूषकत्वात्। अदूषकत्वेऽपि दोषशङ्कायां शान्त्याचरणं युक्ततरम्। एवं भूमिं शुद्धां ज्ञात्वा गृहनिर्माणाय यावती भूमिरपेक्षिता तावत्याः परिग्रहः कर्त्तव्यः। स च कथं कर्तव्य इत्याकाङ्क्षायाम्—

भूपरिग्रहप्रयोगः संक्षेपेणोच्यते॥

ज्यौतिषिकोक्ते शुभेऽहनि वास्तुभूमेरासन्ने गोमयादिना सुलिप्ते स्थले सपत्नीको यजमान आसने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य भूपरिग्रहविधेर्निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं यथाविधि गणेशं संपूज्य गृहनिर्माणाय भूपरिग्रहं करिष्ये इति प्रधानसंकल्पं कृत्वा करिष्यमाणभूपरिग्रहाङ्गत्वेन कलशस्थापनं तत्र ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहाणां साधिप्रत्यधिदेवानां विनायकादिपञ्चलोकपालेन्द्रादिदशदिक्पालानां वास्तोष्पतेः क्षेत्रपालस्य एकाशीतिपदाधिष्ठितशिख्यादिपञ्चचत्वारिंशद्देवानां च यथामिलितोपचारैः पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य होमरहितग्रहपूजाप्रयोगोक्तरीत्या दिक्पालान्तान् वास्तुमण्डलचक्रानुसारेण ॐशिखिने नमः इत्यादिनाममन्त्रैः शिख्यादींश्च संपूज्य—

ॐनमः शंभवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः। शिवाय च शिवतराय च॥

इति मन्त्रेण शिवञ्च तत्र गन्धादिभिः पञ्चोपचारैः संपूज्य भूपरिग्रहलग्ने आसन्ने लग्नदानं कृत्वा अन्यं कलशं दध्यक्षतचन्दनचर्चितं तोयपूर्णं वस्त्रयुगाच्छन्नमक्षतोपरि संस्थाप्य तत्र शिवं संपूज्य

(१) "तस्मादनेकशल्यानां ज्ञानं नास्ति तदा नरैः। अवश्यमेव कर्तव्यः शल्योद्धारो हितेप्सुभिः॥ वास्तुपूजां च विधिवत्कारयेत्पूर्वकं दिने"—इत्यादिना विश्वकर्मप्रकाशे द्वादशाध्याये शल्योद्धारवास्तुशान्तिर्विहिता।

कुम्भं द्विजेन ग्राहयित्वा तं पुरस्कृत्य गीत–वादित्र–ब्रह्मघोषेण क्षेत्रस्य पूर्वसीमानं गत्वा तत्र स्थित्वा गणेशगुर्वादीन् प्रणम्य "ऋचंवाचम्" इति शान्त्यध्यायं पठन् पाठयंश्च ईशानकोणादारभ्य क्षेत्रसीमान्तचिह्नानि परितः सिञ्चन् घटं प्रदक्षिणं भ्रमयेत् यावदीशानकोणम् । ततो भूमिं तुलादानप्रयोगोक्तरीत्या (३७) गन्धादिना कलशे संपूज्य अर्घ्यं दत्त्वा जनसमक्षं साधुप्रयोगेण भूपरिग्रहं कुर्यात्।

तत आचार्यः ब्राह्मणैः सह कलशोदकेन दूर्वापल्लवयुतेन सगोत्रं यजमानं विश्वकर्मप्रकाशे पञ्चमाध्याये उक्तैः वक्ष्यमाणमन्त्रैरभिषिञ्चेत्—

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च वृद्धाः पुरातनाः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥
देवपत्न्यश्च याश्चोक्ता देवमातर एव च ।
सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु शुभाश्चाप्सरसां गणाः ॥
नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसंधयः ।
संवत्सरा दिनेशाश्च कलाकाष्ठालवक्षणाः ॥
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः ।
वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥
सरितश्च महाभागा नागाः किंपुरुषास्तथा ।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ॥
सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च ।
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥
भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दनः ।
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्यो भगन्धरः ॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जाबालिकश्यपौ ।

दुर्वासा दुर्विनीतश्च कविः कात्यायनस्तथा ॥
मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेपो विदूरथः ।
और्वः संवर्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ॥
द्वैपायनो यवक्रीतो देवरातश्च सानुगः ।
प्रजापतिर्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ॥
पर्वतास्तरवः कल्पाः पुण्यान्यायतनानि च ।
वाहनानि च रत्नानि लोकाश्चापि चराचराः ॥
अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम् ।
एते चान्ये च बहवः पुण्यसंकीर्तनाश्च ये ॥
तोयैरेतैः पवित्रैश्च मन्त्रौषधिबलान्वितैः ।
शुभैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिवर्हणैः ॥ इति ।

एवमभिषिक्तो यजमान आचार्यमन्यांश्च ब्राह्मणान् यथाशक्ति जयित्वा वस्त्रादिना संतोषयेत् । ब्राह्मणाश्च तिलकमन्त्रपाठादिकं त्वा आशीर्वादं दद्युः ।

इति भूपरिग्रहप्रयोगः ।

अथ सूत्रपातप्रयोगः ।

अथ सांवत्सरोक्ते शुभे पुण्येऽहनि परिगृहीतगृहभूमेरुत्तरतः रक्षिते गोमयादिनोपलेपिते शुचिस्थले स्नातः शुचिभूतो भूषितो जमानः, सूत्रपातकर्मणि वृत आचार्यो वा प्रविश्यासने उपविश्या-म्यदीपं प्रज्वलय्य "स्वस्ति नो मिमीताम्" 'आनो भद्राः" ते शान्ति पठित्वा पाठयित्वा वा गणेशवन्दनादि भूतोत्सादनान्तं र्म कृत्वा सूत्रपातकर्मणो निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशं संपूज्य प्रधा-संकल्पं कृत्वा ईशानकोणे धान्यपुञ्जोपरि कलशस्थापनविधिना लशं संस्थाप्य अभिमन्त्र्य तत्र वरुणं संपूज्य—

"विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृ-ारवध्यम् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विह-व्यो यथाऽसत् ॥" इति मन्त्रेण विश्वकर्माणम् आवाहनादि-रुपचारैः, गन्धादिभिः पञ्चोपचारैर्वा तत्रैव संपूज्य—

परशुं, लोहमुष्टिं, मानहस्तं, कौशं शाणं कार्पासं वा अर्धाङ्गुलविशालं ग्रन्थिवर्जितं सूत्रं, शमी–वट–बिल्वाद्यन्यतमवृक्षसंभूतान् ऋजून् निर्व्रणान् दृढान् तीक्ष्णाग्रान् मूलभागान्वितान् चतुष्कोणान् आचार्यहस्तमात्रान् षडङ्गुलपरिणाहान् ऊर्ध्वाग्रान् अधोमूलान् चतुरः शङ्कून् कलशात् उत्तरोत्तरान् स्थापयित्वा परश्वादीनि निजनाममन्त्रैः, शङ्कून् "अग्निं दूतम्" "एषते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व" "वातो वा मनो वा" "तमीशानम्" इति मन्त्रैः अग्न्यादिनाममन्त्रैर्वा गन्धादिभिः पूजयित्वा विश्वकर्माणं विज्ञाप्य शोधितायां भूमौ मण्डपनिर्माणप्रकारोक्तरीत्या (पृ० १५) उदीचीसाधनपूर्वकं चतस्रो दिशः चतुरः कोणांश्च संसाध्य चतुरस्रं क्षेत्रं सूत्रपातेन संपाद्य दिक्चिह्नानि कोणचिह्नानि च दिक्षु विदिक्षु च क्षेत्राद्बहिः शिलादिषु समुत्कीर्य भित्तिनिर्माणार्थं चिरं धारयेत् । ततो मौहूर्तिकोक्तलग्ने क्रियासौकर्यार्थं वह्न्यादिकोणेषु प्रादक्षिण्येन अधिवासितान्यशङ्कून् निवेश्य ईशानकोणशङ्कौ अधिवासितान्यसूत्रं बध्वा अग्निकोणशङ्कुं नीत्वा तं सूत्रेण द्विर्वेष्टयित्वा निर्ऋतिशङ्कुं वायुशङ्कुम् ईशानशङ्कुं च क्रमेण तथैव वेष्टयित्वा ईशानशङ्कौ सूत्रं दृढं बध्नीयात् । सांवत्सरोक्ते लग्ने प्राप्ते विश्वकर्माणं विज्ञाप्य कलशोत्तरे अधिवासितशङ्कूनां मूलानि मधुसर्पिर्दधिक्षीरैर्विलिप्य अलक्तकरसेन तेषु त्रिशूलं चक्रं वा विलिख्य चन्दनेनानुलिप्य त्रिसूत्र्या वेष्टयित्वा तान् केनचिद्द्विजेन ग्राहयित्वा आचार्यः स्वीकृतगृहक्षेत्रस्य वह्निदिशं गत्वाऽऽसने प्राङ्मुख उपविश्य पूर्वनिवेशितशङ्कुमुत्पाट्य दक्षिणपाणिना शङ्कुमुत्थाप्य वाममुष्टिना गृहीत्वा पूर्वशङ्क्वधिष्ठितभूम्यामवक्रं दृढं धृत्वा अष्टकृत्वः—

ॐविशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः ।
अस्मिन् स्थाने तु तिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा ॥

इति मन्त्रं पठन् शुभनिमित्तं दृष्ट्वा लोहमुष्टिना ताडयेत् । ततः प्रधानशिल्पी ताडयेत् लोहमुष्टिना, यथा शनैः शनैः शङ्कुरवटभूमौ प्रविशेत् । शङ्कोर्भेदे भङ्गे चानिष्टम् । पूर्वतः, उत्तरतः, ईशाने च

शङ्कौ प्रणते शुभम्, अन्यदिशि प्रणतेऽशुभम् । एवं नैर्ऋते वायव्ये ऐशाने च शङ्कुमारोप्य प्रागधिवासितं सूत्रमीशानशङ्कौ दृढं बध्वा-ऽन्यादिकोणशङ्कून् प्रदक्षिणक्रमेण द्विर्द्विर्वेष्टयित्वा पूर्ववदीशानकोणशङ्कौ दृढं बध्नीयात् । ततः आग्नेयकीलके तदभिमुखः—

ॐ अग्निभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तत्समाश्रिताः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥ स्वाहा

इति बलिं दत्त्वा—नैर्ऋतकीलके तदभिमुखो भूत्वा—

ॐ नैर्ऋताधिपतिश्चैव नैर्ऋत्यां ये च राक्षसाः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि सर्वे गृह्णन्तु मन्त्रितम् ॥ स्वाहा

इति बलिं दत्वा—वायव्यकीलके तदभिमुखो भूत्वा—

ॐ नमो वायुस्थरक्षोभ्यो ये चान्ये तत्समाश्रिताः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि गृह्णन्तु पुण्यमोदनम् ॥ स्वाहा

इति बलिं दत्त्वा—ईशानकीलके तदभिमुखो भूत्वा—

ॐ रुद्रेभ्यश्चैव सर्वेभ्यो ये चान्ये तत्समाश्रिताः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि गृह्णन्तु सततोत्सुकाः ॥ स्वाहा—

इति बलिं दद्यात् । तत आचम्य (सति सम्भवे गन्धादिना वास्तुभूम्येकदेशे हस्तमात्रे मध्यभागे एकाशीतिपदं वास्तुमण्डलं विलिख्य उत्तराभिमुख उपविश्य अर्घस्थापनादिकं विधाय शङ्कुस्थानस्थदेवान् संपूज्य (१) ब्रह्मस्थाने गन्धोदकेन चतुरस्रं कृत्वा

---

(१) ततः संपूजयेत्तस्मिन् सर्वलोकधरां महीम् । सुरूपां प्रमदारूपां दिव्याभरणभूषिताम् ॥ ध्यात्वा तामर्चयेद्देवीं परितुष्टां स्मिताननाम् । ब्रह्मस्थाने ततो विद्वान् कुर्याद्वाधारमत्ततैः ॥ तस्मिन् संस्थापयेत् कुम्भं पर्वम्भसा सह पूरितम् । तस्मिंश्चतुर्मुखं देवं प्रजेशं मन्त्रविग्रहम् ॥ गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च नैवेद्यैः सुमनोहरैः । ततो मण्डलबाह्ये तु प्रतीच्यां प्राङ्मुखः स्थितः ॥ आचार्यो गृह्यसंभारं ब्रह्मादींस्तर्पयेत् सुरान् । प्रजेशं तर्पयेद्विद्वानाहुतीनां शतेन च ॥ इतरान् दशभिर्वैवानाहुतिभिः प्रतर्पयेत् । ततः प्रणम्य विज्ञाप्य कृत्वा वै स्वस्तिवाचनम् ॥ प्रगृह्य कर्करीं सम्यङ्मण्डलान्तः प्रदक्षिणम् । सूत्रमार्गेण तेनैव तोयधाराञ्च कारयेत् ॥ पूर्वमुसेन मार्गेण सप्तबीजानि वापयेत् । आरम्भं तेन मार्गेण तस्य स्नातस्य कारयेत् ॥

तदुपरि अक्षतैः चतुरस्रं कृत्वा तत्र "स्योना पृथिवि" इति मन्त्रेण प्रमदारूपिणीं पृथिवीमावाह्य प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वा गन्धादिना पूजयित्वा ततो वास्तुपुरुषं सर्वदेवमयं ध्यात्वा "वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान् स्वावेशो ऽअनमीवो भवा नः। यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भवद्विपदे शं चतुष्पदे" इति मन्त्रेण ध्यानाद्युपचारैः संपूज्य ब्रह्मस्थानेऽक्षतोपरि कलशम् "आजिघ्र" इति प्रतिष्ठाप्य तत्र "ब्रह्मजज्ञानम्" इति ब्रह्माणं ध्यात्वा गन्धादिना संपूज्य वास्तुदेवांश्च शिख्यादीन् संपूज्य) (१) कलशे एव वा सर्वान् संपूज्य (सति संभवे वास्तुभूमेर्बहिः सार्वभौतिकं बलिं दत्त्वाऽऽचम्य वास्तुभूमेः प्रतीच्यां प्राङ्मुखः स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य आज्यभागान्तं कृत्वा "वास्तोष्पते" इति मन्त्रेण, अष्टोत्तरशतसंख्यवास्तोष्पतिहोमं कृत्वा प्रणवादिभिः स्वाहान्तैः नाममन्त्रैः ॐ शिखिने स्वाहा (२) इत्यादिभिः वास्तुदेवानां दशदशाहुतीर्हुत्वा पूर्णाहुतिं कृत्वा

ततो गर्तं खनेन्मध्ये हस्तमात्रप्रमाणतः। चतुरङ्गुलमात्रं तु अधः खन्यात्सुसंमितम् ॥ गोमयेन प्रलिप्याथ चन्दनेन विलेपितम्। मध्ये दत्त्वा तु पुष्पाणि शुक्लान्यक्षतमेव च ॥ आचार्यः प्राङ्मुखो भूत्वा ध्यायेद्देवं चतुर्भुजम्। तूर्यमङ्गलघोषेण ब्रह्मघोषरवेण च ॥ अर्घ्यं दद्यात् सुरश्रेष्ठ कुम्भतोयेन मन्त्रवित्। प्रगृह्य कर्करीं तां तु तत्स्थातं पूरयेज्जलैः ॥ सर्वरत्नसमायुक्तैर्विमलैश्च सुगन्धिभिः। तस्मिन् पुष्पाणि शुक्लानि प्रक्षिपेद्वोर्मिति स्मरन् ॥ तदावर्तं परीक्षेत दधि भक्तान्वितं क्षिपेत्। शुभं स्याद्दक्षिणावर्तेऽशुभं वामे भवेत्ततः ॥ बीजैः शालियवादीनां गर्तं तं पूरयेत्ततः। क्षेत्रजाभिः पवित्राभिर्मृद्भिर्गर्तं प्रपूरयेत् ॥ एवं निष्पाद्य विधिना वास्तुयागं सुरोत्तम। सुवर्णं गां च वस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत् ॥ इति वास्तुयागतत्त्वे देवीपुराणाद्यौ।

(१) "प्रतिमास्थानेष्वप्सु आवाहनविसर्जनवर्जम्" इति वास्तुयागतत्त्वे बोधायनवचनात्। आवाहनाविमुद्रया तयोर्वर्जनेऽपि उन्मुखीकरणार्थमावाहनमन्त्रस्य पुष्पाञ्जलिदाने, यागपूर्त्तिसिद्धये चान्ते पुष्पाञ्जलिदाने विसर्जनमन्त्रस्य "आवाहनऋचा कुर्यात् पूर्वं पुष्पाञ्जलिं हरेः। तस्यैवोन्मुखताप्राप्त्यै यागे चोद्वासनऋचा ॥ अन्ते पुष्पाञ्जलिं दद्याद्यागसंपूर्त्तिसिद्धये।" इति मन्त्रराजानुष्ठानविधानोक्तेर्विनियोगो ज्ञेयः।

(२) एकैकां देवतां राम समुद्दिश्य यथाविधि। चतुर्थ्यन्तेन धर्मज्ञो

ब्रह्माणं प्रणम्य क्षमस्वेति विज्ञाप्य ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयित्वा जलकलशमादाय ईशानादिप्रादक्षिण्येन सूत्रमार्गेण तोयधारां दत्त्वा स्वस्थाने कलशं प्रतिष्ठाप्य तेनैव मार्गेण सर्वबीजानि प्रक्षिपेत्। ततः कलशं ब्रह्मकलशस्योत्तरतो न्यस्य अर्घोदकेन प्रोक्ष्य गन्धादिना नाममन्त्रेणाऽभ्यर्च्य त्रिसूत्र्याऽऽवेष्ट्य) प्राप्ते लग्ने आचार्यः कलशमादाय शान्तिपाठादिपुरःसरं गृहीतपिटककुद्दालेन शिल्पिना सह वास्तोराग्नेयकोणं गच्छेत्। ततः उदङ्मुखेन शिल्पिना आज्यमध्वक्तमुखेन कुद्दालेन वहिः पदं खानयेत्। ततो मृदमुद्धृत्य वैणवेन नवेन सुबद्धेन पिटकेन सप्तकृत्वो नैर्ऋत्यामुत्किरं प्रक्षिपेत्। आचार्यः शान्तिकलशोदकेन तत्खातमासिच्य भूमिं सर्वत्र शान्तिपाठपुरःसरं संप्रोक्ष्य कुद्दालादिकं जले आप्लाव्य गन्धादिना पूजयेत्। अथ यजमान आचार्यादीन् सूत्रधारादींश्च दक्षिणादानादिना तोषयेत्। इति सूत्रपातः।

अथ भूमिखननप्रयोगः।

अथापरेऽह्नि गृहभूमिं प्रादक्षिण्येन आग्नेयकोणादारभ्य खानयेत् अधः पुरुषपर्यन्तं चतुर्हस्तं द्विहस्तं वा, न ततोऽधिकम्।

पुरुषाधः स्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत्। इति मात्स्यात्।
चतुर्हस्तं द्विहस्तं वा जलान्तं वाऽपि शोधयेत्। इति लैङ्गाच्च।

अत्र जलान्तमिति प्रासादादिपरम्।

प्रासादे दोषदं शल्यं भवेद्यावज्जलान्तिकम्। इति मात्स्यात्।
पाषाणान्तं जलान्तं वा शर्करान्तमथापि वा।
प्रासादपादभूमिष्ठं सच्छल्यं दोषदं यतः॥
प्रासादादिभुवं तस्मात्तत्तन्मानेन शोधयेत्।

इति त्रिविक्रमपद्धतौ स्मृत्यन्तराच्च। अथ खन्यमानायां भुवि शङ्खादि, सुवर्णादि, रत्नादि, सजीवो मण्डूकः, कच्छपो वा दृश्येत तत्सर्वं सुरक्षितमन्यत्र धारयेत्। सिद्धे खाते आचार्यः प्रातरागत्यो-

---

नाम्ना च प्रणवादिना॥ इति विष्णुधर्मोत्तरवचनात्। स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन्वै मन्त्रदेवताम्। इति वास्तुयागतत्त्वे स्मृत्यन्तराच्च।

पविश्याचमनादि विधाय खातस्य ईशानभागे अक्षतोपरि कलशं प्रतिष्ठाप्य तत्र "तमीशानम्" इति मन्त्रेण शिवं गन्धादिभिः संपूज्य कलशोत्तरतः अक्षतैः एकाशीतिपदं वास्तुमण्डलं कृत्वा पूर्ववद् वास्तुमिष्ट्वा (सति संभवे कलशस्य पश्चिमे अग्निं प्रतिष्ठाप्य आज्यभागान्तं कृत्वा वास्तुदेवताभ्यो नाममन्त्रैर्दशदशाहुतीर्हुत्वा भूरादिहोमं पूर्णाहुतिं च कृत्वा कर्मशेषं समाप्य दिक्पालेभ्यः (१)भूतेभ्यश्च बलिं दत्त्वा कलशपूजां समाप्य कलशमादाय अग्निकोणं गत्वा प्राङ्मुखोऽवस्थाय बहिःपदं कलशोदकेनाभ्युक्ष्य खातलब्धं सुवर्णादिकं तत्र सुरक्षितं निक्षिप्य अष्टाङ्गुलं मृदा प्रपूर्य कलशाम्भसाऽभ्युक्ष्य कपिशीर्षप्रमाणैः प्रोक्षिताचितैः पाषाणैः निबिडतरं कृत्वा जलेन आप्लाव्य पालाशादिकाष्ठमयैः हस्तपट्टैः (पिटना) आकोटयेत् (आकोचयेत्) । अथाचार्यः कलशोदकेन सपरिवारं यजमानमभिषिच्य आशीर्वादमन्त्रान् ब्राह्मणैः सह पठेत् । यजमानश्च दक्षिणादिना सर्वांस्तोषयेत् । ततः प्रभृति सर्वं खातं तावत्या मृदा प्रपूर्य तथाविधैरेव पाषाणैः चित्वा आप्लाव्य आकोच्य चतुर्थभागावशेषं खातपूरणं कुर्यात् । इति भूमिखननादिकम् ।

अथ शिलान्यासः ।

तत्रादौ तदुपयोगिनिरूपणम् । ज्योतिर्विदादिष्टे मुहूर्ते यजमानानुज्ञातः स्थपतिः आचार्योक्त्यनुसारेण पञ्च शिलाः शिरःपृष्ठविभक्ताङ्गाः एकविंशत्यङ्गुलदीर्घाः, सप्तदशाङ्गुलदीर्घाः, त्रयोदशाङ्गुलदीर्घाः, नवाङ्गुलदीर्घाः क्रमेण विप्र–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्राणां–तथा दैर्घ्यप्रमाणार्धप्रमाणविशालाः विशालताऽर्धोच्छ्रयाश्चतुरस्राः समाः श्लक्ष्णा घटयेत् ।

शिलाप्रमाणं क्रमशः प्रदिष्टं वर्णानुपूर्व्येण तथाऽङ्गुलानाम् ।

---

(१)"चतुःषष्टिपदे क्षेत्रे" इत्यादिना ईशादीनां वास्तुदेवानां बलिविधानमुक्त्वा "रक्षोमातृगणेभ्यश्च पिशाचादिभ्य एव च । पितृभ्यः क्षेत्रपालेभ्यो बलीन् दद्यात्प्रकामतः ॥ अदत्त्वैतानसंतर्प्य प्रासादादीन् न कारयेत्" । इति राक्षसादीनां च बलिविधानमुक्तमग्निपुराणे ।

अथैकविंशद् घन-विश्व-नन्दा-विस्तारके न्यासमितं तदर्धम् ॥
तदर्धमानं त्वथ पिण्डिका स्यादूर्ध्वाधिका न्यूनतरा न कार्या ।

इति विश्वकर्मोक्तेः ।

एकविंशद् द्विजाग्र्याणां क्षत्राणां दश सप्त च ।
त्रयोदश तु वैश्यानां शूद्राणां तु नवाङ्गुलम्॥इति स्मृत्यन्तराच्च।

हस्तायामत्वादिकं त्रिविक्रमाद्युक्तं प्रासादपरम् । प्रासादमधिकृत्य—

प्रासादादौ विधानेन न्यस्तव्याः सुमनोहराः ।
चतुरस्राः समाः कृत्वा समन्ताद्धस्तसंमिताः ॥ इति विश्वकर्मोक्तेः ।

नन्दा-भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णा इत्याख्यासु पञ्चसु शिलासु क्रमेण पद्मं, सिंहासनं, तोरणच्छत्रे, कूर्मं, चतुर्भुजं विष्णुं च टङ्केन लेखयेत् । नन्दादिशिलानां च स्थापनार्थं किंचित्तदधिकप्रमाणान् शिलामयानेवाधारान् कल्पयेत् । ता उपशिला इत्युच्यन्ते । उपशिलासु पद्मादिनिधिकुम्भस्थापनार्थं मध्ये एकैकं गर्तं कारयेत् । ऐष्टकं चेद् गृहं तदा वितस्त्यायताः (१) षडङ्गुलविस्ताराः द्विचतुराङ्गुलोच्छ्रया इष्टकाः कारयितव्याः । ताश्च सुपक्काः अकृष्णवर्णाः अस्फुटिता अपेक्षिताः । पद्मादिनिधिकुम्भाश्च ताम्रमया मृन्मया वा विप्रादीनां क्रमेण पञ्चाङ्गुलाः, सार्धद्व्यङ्गुलाः सपादाङ्गुलाः पञ्च कार्याः । शूद्राणामपि सपादाङ्गुला एव । चतुर्थमानस्यानुक्तेः ।

ध्रुवे शिलायास्तु ततः खनित्वा कुम्भं प्रतिष्ठाप्य शराङ्गुलीयम् ।
विप्रादिवर्णानुगतः प्रशस्तस्तदर्धमानं तु तदर्धमानम् ॥

इति विश्वकर्मोक्तेः । कुम्भानां पिधानानि च कार्याणि ।

ततो यजमानः खातभूमेरुत्तरतः सति संभवे अष्टहस्तं मण्डपं, अन्यथा तावत्प्रमाणां भुवं सुलिप्तां संपाद्य तन्मध्ये तत्त्रिभागपरिमाणां, हस्तपरिमाणां वा वेदिं कुर्यात् ।

---

(१) इष्टकाश्च सुपक्काः स्युर्द्वादशाङ्गुलसंमिताः । विस्तारस्य त्रिभागेण वैपुल्येन समन्विताः ॥ इति अग्निपुराणे (अ० ४१) उक्तेः । आयामतुल्यविस्तारकरणे चतुरङ्गुलस्थूलाः, तदर्धविस्तारकरणे द्व्यङ्गुलस्थूला इष्टकाः कर्तव्याः । शिलाविस्तारस्य द्विविधस्य इष्टत्वेन इष्टकाविस्तारस्यापि तथाविधस्य ग्रहीतुमुचितत्वात् ।

त्रिभागं मण्डपं कृत्वा मध्यभागे तु वेदिका ।

इति क्रियासारोक्तेः,

"निर्माणे मन्दिराणां च प्रवेशे त्रिविधेऽपि वा ।

वास्तुपूजा तु कर्तव्या तस्मात्तां कथयाम्यतः ॥

गृहमध्ये हस्तमात्रे समन्तात्तण्डुलोपरि ।

एकाशीतिपदं कार्यम्" इति वसिष्ठसंहितोक्तेश्च । सा च चतुरङ्गुलोच्छ्रिता कार्या । "ईशान्यां चतुरस्रां चतुरङ्गुलमुच्छ्रितां हस्तमात्रीं वेदिं कृत्वा" इति आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टोक्तेः । अत्र 'ईशान्याम्' इत्युक्तेः, वसिष्ठसंहितायां च मध्ये इत्युक्तेर्विकल्पः । आश्वलायनानाम् ईशाने, अन्येषां मध्ये इति व्यवस्था । संहितानां सर्वसाधारणत्वात् । पञ्चकुण्ड्यादौ तु कुण्डव्यवस्थानुरोधेन तेषामपि मध्ये एवेति दिक् । वास्तुवेदेः पश्चिमे उत्तरतो वा मेखलायोनियुतं हस्तमात्रं कुण्डं, तावत्परिमाणं चतुरङ्गुलमुच्छ्रितं स्थण्डिलं वा कुर्यात् । कुण्डात् ईशानभागे ग्रहवेदिं हस्तमितां द्वादशाङ्गुलमुच्छ्रितां कुर्यात् । तत्र प्रथमो वप्रो द्व्यङ्गुलोच्छ्रायो द्वितीयस्त्र्यङ्गुलोच्छ्रायः । द्वावपि द्व्यङ्गुलविस्तारौ । मण्डपं च चतुर्द्वारं तोरणपताकाद्यलंकृतं पूर्वोक्तरीत्या कुर्यात् । तस्य पुरतः शिलानां स्नानमण्डपं तदर्धपरिमाणं (पादोनषोडशाङ्गुलाधिकपञ्चहस्तायामविस्तारं) विदध्यात् । यद्यपि—

सूत्रपाते तथा कार्यं तथा स्तम्भोदये पुनः ।

द्वारबन्धोच्छ्रये तद्वत् प्रवेशसमये तथा ॥

वास्तूपशमने तद्वत् वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा ।

इति शब्दकल्पद्रुमे मात्स्योक्तेः सूत्रपातादौ वास्तुशान्तेः कर्तव्यता प्रतीयते तथापि—

प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे परिवर्तने ।

पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये ॥

इति सर्वदोषापनोदफलश्रवणात् प्रारम्भप्रवेशयोरावश्यकत्वम् । गृहप्रारम्भश्च शिलादिन्यासरूप एव । तत्स्वरूपस्य तन्मयत्वात् । अतः शिलान्यासाय वास्तुशान्तिरवश्यं विधेयेति—

वास्तुशान्तिसहितः शिलान्यासप्रयोगः प्रदर्श्यते ।

तत्र पूर्वेऽहनि कृतैकभक्तादिनियमो यजमानः सस्त्रीकः शुचिः प्राङ्मुख उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य स्वस्तिवाचनं पठित्वा ॐ सुमुखश्चेत्यादिना गणेशाय पुष्पाञ्जलिं समर्प्य विष्ण्वादीन्प्रणम्य अर्घं संस्थाप्य सूर्य्यायार्घ्यं दत्त्वा पुनरर्घं संस्थाप्य प्राणायामं कृत्वा सर्षपाक्षतैर्भूतोत्सादनं विधाय कुशतिलयवजलान्यादाय संकल्पं कुर्यात् । अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं सवास्तुशान्तिशिलान्यासकर्म्मणि (१) सवास्तुशान्तिगृहप्रवेशकर्म्मणि वा निर्विघ्नतासिद्ध्यै श्रीभगवतो गणेश्वरस्य पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य यथाविधि गणेशं संपूज्य—

प्रधानसंकल्पं कुर्य्यात् । अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं गृहनिर्माणाय शिलान्यासं [अद्य श्वो वा गृहप्रवेशं] करिष्ये । तत्रादौ सर्वोपद्रवशान्तिपूर्वकम् आयुरारोग्यपुत्रपौत्रद्विपदचतुष्पदधनधान्यादिसमृद्धये, श्रीपरमेश्वरप्रीतये वा ग्रहयज्ञसहितां वास्तुशान्तिं करिष्ये । तत्पूर्वाङ्गत्वेन मातृपूजा–नान्दीश्राद्ध–पुण्याहवाचनानि करिष्ये इति संकल्प्य प्रधानदीपं संस्थाप्य मातृपूजा–नान्दीश्राद्ध–पुण्याहवाचनानि यथाविधि विधाय आचार्य्यब्रह्मर्त्विक्सदस्यानां पौराणशान्तिकाध्यायसप्तशत्यादिपाठकानां गणेशादिमन्त्रजापकानां च यथाक्रमं वरणं कुर्य्यात् । [मण्डपकरणे वैदिकशान्त्यध्यायजापकानां द्वारपालानां च वरणं कुर्यात्] । तत्र संकल्पः—अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं सवास्तुशान्तिशिलान्यासकर्म्मणि (गृहप्रवेशकर्मणि) आचा-

---

(१) हेमाद्रौ मत्स्यपुराणे—एतद्वास्तुपशमनं कृत्वा कर्म समाचरेत् । प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे परिवर्तने ॥ पुरवेश्मप्रवेशे च सर्वदोषोपशान्तये । वास्तूपशमनं कृत्वा ततः सूत्रेण वेष्टयेत् ॥ रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनाधिकम् । नृत्यमङ्गलवाद्यैश्च कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् ॥ अनेन विधिना यस्तु प्रतिसंवत्सरं बुधः ॥ गृहे वाऽऽयतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात् ॥ नच व्याधिभयं तस्य नच बन्धुधनक्षयः । जीवेद्वर्षशतं स्वर्गे कल्पमेकं वसेन्नरः ॥ इति गृहनिर्माणगृहप्रवेशादौ वास्तुशान्तिः सर्वाशुभनिवृत्त्यादिफलिका विहिता ।

र्य्यब्रह्मर्त्विक्सदस्य (जापकद्वारपाल) शान्तिकाध्याय–सप्तशतीपाठकानां गणेशादिमन्त्रजापकानां च पूजनपूर्वकं वरणं करिष्ये इति संकल्प्य आचार्य्यादिभ्योऽर्घ्यं दत्त्वा गन्धाक्षतपुष्पैः संपूज्य एभिर्गन्धाक्षतयज्ञोपवीतपुष्पमालावासोलंकरणद्रव्यैः सवास्तुशान्तिशिलान्यास [गृहप्रवेश] कर्मणि आचार्यत्वेन त्वामहं वृणे । वृतोऽस्मीति प्रत्युक्तिः।

आचार्य्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः ।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्य्यो भव सुव्रत ॥ इति प्रार्थयेत् ।

तथा कृताकृतावेक्षणादिकर्म्म कर्त्तुं ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे । वृतोऽस्मि इति प्रत्युक्तिः । यथा चतुर्मुखो ब्रह्मेत्यादिना ब्रह्माणं सम्प्रार्थ्य ऋत्विजौ द्वौ [वैदिकशान्त्यध्यायजापकान्, द्वारपालान्,] शान्तिकाध्यायसप्तशत्यादिपाठकान्, गणेशादिमन्त्रजापकाँश्च वृणुयात् । ततो यजमान आचार्यादिसहितो दीपादीनि सर्वोपकरणानि द्विजैर्ग्राहयित्वा मङ्गलघोषपुरःसरं मण्डपं (सुसंस्कृतस्थलं) प्रदक्षिणीकृत्य "भद्रं कर्णेभिः" इति मन्त्रेण पश्चिमद्वारेण प्रविशेत् । तत आचार्यः यजमानानुज्ञातः पश्चिमे उपविश्याचम्य अर्घस्थापनं विधाय अद्येत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं वास्तुशान्त्यामाचार्यकर्म्म करिष्यामि इति संकल्प्य प्रथमं सर्षपाक्षतैर्भूतोत्सादनं कुर्यात्—

यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा ।
स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रत्यं तत्र गच्छतु ॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् ।
सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म्म समारभे
भूतप्रेतपिशाचाद्या अपक्रामन्तु राक्षसाः ।
स्थानादस्माद् व्रजन्त्वन्यत्स्वीकरोमि भुवं त्विमाम् ॥

इति भूतोत्सादनं कृत्वा पञ्चगव्येन कुशैः गृहनिर्माणाय परिगृहीतां सर्वां भुवं, निर्वृत्ते गृहे गृहप्रवेशाङ्गवास्तुशान्तौ सर्वं गृहं, मण्डपभूमिं च "आपोहिष्ठा" इति संप्रोक्ष्य तोरणेषु मण्डपस्य द्वारेषु

च कलशस्थापनपूर्वकं ध्रुवादीन् इन्द्रादींश्च तुलादानप्रयोगोक्तरीत्या (पृ० ४७) संपूज्य संक्षेपेण ध्वजपताकोच्छ्रयणवर्जं बलिदानान्तं कृत्वा मण्डपमध्ये प्राच्यां यजमानहस्तेन हस्तमितायामविस्तारां चतुरङ्गुलोच्छ्रितां वास्तुवेदिं निर्माय तत्पश्चिमे सयोनिमेखलं हस्तमात्रं कुण्डं, स्थण्डिलं वा चतुरङ्गुलोच्छ्रितं कृत्वा कुण्डात् ऐशान्यां हस्तमितां वितस्त्युच्छ्रितां ग्रहवेदीं निर्माय तत्राष्टदलं पद्मं विलिख्य स्थण्डिलेऽग्निं पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं प्रतिष्ठाप्य ग्रहयागप्रयोगोक्तरीत्या तत्र ग्रहान् अधिदेवताप्रत्यधिदेवतालोकपालवास्तोष्पतिक्षेत्रपालदिक्पालसहितानावाह्य तदैशाने कलशे वरुणमावाह्य ग्रहादीन् सर्वान् "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य संपूज्य रक्षासूत्रं चाभिमन्त्र्य वेद्युपरि वितानं कृत्वा ततो वास्तुवेदेः ईशानादिकोणचतुष्के—

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः ।
अस्मिन्गृहे तु तिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा ॥

इति मन्त्रेण (१) शम्यादिकाष्ठोद्भवहस्तमात्रकीलकारोपणं विधाय कीलकारोपणक्रमेण तत्पार्श्वे माषभक्तबलिं—

अग्निभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तत्समाश्रिताः ।
तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥

इति (दध्यक्षतबलिं) दद्यात् । ततः वास्तुवेद्युपरि वस्त्रे सुवर्णरजतान्यतरशलाकया कुङ्कुमादिना ॐ शान्तायै नमः, यशोवत्यै नमः, कान्तायै नमः, विशालायै नमः, प्राणवाहिन्यै नमः, सत्यै नमः, सुमनायै नमः, नन्दायै नमः, सुभद्रायै नमः, सुरथायै नमः १० इत्योंकारपूर्वकैः नमोऽन्तनामभिः पश्चादारब्धाः प्रागन्ता उदक्संस्थाः समा अङ्गुलद्वयान्तराला दश रेखाः कृत्वा, ततः ॐ हिरण्यायै नमः,

(१) वास्तुमण्डलकोणेषु ईशानादिक्रमेण च । शङ्कूनां रोपणं शस्तं प्रादक्षिण्येन मार्गतः ॥ इति विश्वकर्मकृतवास्तुशास्त्रे शङ्कुरोपणं विधाय 'विशन्तु' इति तन्मन्त्रं निर्दिश्य "अग्निभ्योऽप्यथ सर्पेभ्य" इति वक्ष्यमाणेन बलिदानं च विहितम् । इदं वेदिकोणेषु शङ्कुरोपणं बलिदानं च सूत्रपातसमये वास्तुभूमेश्चतुर्षु कोणेषु अकृते शङ्कुरोपणे बलिदाने च बोध्यम् ।

सुव्रतायै नमः, लक्ष्म्यै नमः, विभूत्यै नमः, विमलायै नमः, प्रियायै नमः, जयायै नमः, कलायै नमः, विशोकायै नमः, इडायै नमः १० इति नामभिर्दक्षिणारम्भा उदगन्ताः प्राक्संस्था द्व्यङ्गुलान्तरालाः समा दश रेखाः कृत्वा एकाशीतिपदं वास्तुमण्डलं संपाद्य वक्ष्यमाणपीतादिवर्णैः तानि पदानि वर्णयित्वा तस्मिन् वास्तुमण्डले शिख्यादिदेवानावाहयेत् । तत्र पूर्वम् ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः परमात्मा देवता व्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजा ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि अग्निवायुसूर्य्या देवताः शिख्यादिदेवावाहने विनियोगः इति स्मरेत् । तत ईशानादितः वास्तुमण्डलचक्रलिखिताङ्कानुसारेण शिख्यादिदेवाः मध्यस्थितब्रह्माभिमुखाः स्थाप्याः । तद्यथा बाह्यपङ्क्तौ ईशाने एकपदे प्रथमकोष्ठे रक्तवर्णे ॐभूर्भुवः स्वः शिखिने नमः—

पूजार्थं त्वाम् आवाहयामि शिखिन् इहागच्छेहतिष्ठ इति प्रतिमायां पूगफले दध्यक्षतपुञ्जे वा आवाह्य स्थापयेत् १ । तद्दक्षिणदिशि एकपदे द्वितीयकोष्ठके पीतवर्णे ॐभूर्भुवः स्वः पर्जन्याय नमः पू० पर्जन्य इहा० २ । तद्दक्षिणदिशि द्विपदे तृतीये पीतवर्णे ॐभूर्भुवः स्वः जयन्ताय नमः पू० जयन्त इहा० ३ । ततो द्विपदे चतुर्थे पीतवर्णे ॐभूर्भुवः स्वः कुलिशायुधाय नमः पू० कुलिशायुध इहा० ४ । ततः पञ्चमे द्विपदे रक्तवर्णे ॐभूर्भुवः स्वः सूर्याय नमः पू० सूर्य्य इहा० ५ । षष्ठे द्विपदे शुक्लवर्णे ॐभूर्भुवः स्वः सत्याय नमः पू० सत्य इहा० ६ । सप्तमे द्विपदे कृष्णवर्णे ॐभूर्भुवः स्वः भृशाय नमः पू० भृश इहा० ७। अष्टमे एकपदे कृष्णवर्णे ॐभूर्भुवः स्वः आकाशाय नमः पू० आकाश इहा० ८ । नवमे एकपदेऽग्निकोणे धूम्रवर्णे ॐभूर्भुवःस्वः वायवे नमः पू० वायो इहा० ९ । तत्पश्चिमे एकपदे दशमे रक्तवर्णे ॐभूर्भुवःस्वः पूष्णे नमः पू० पूषन् इहा० १० । शुक्ले एकादशे द्विपदे ॐभू० वितथाय नमः पू० वितथ इहा० ११ । पीते द्वादशे द्विपदे ॐ भू० गृहक्षताय नमः पू० गृहक्षत इहा० १२ । कृष्णे त्रयोदशे द्विपदे ॐ भू० यमाय नमः पू० यम इहा० १३ । रक्ते चतुर्दशे द्वि० ॐ भू० गन्धर्वाय नमः पू०

गन्धर्व इहा० १४ । कृष्णे पञ्चदशे द्वि० ॐ भू० भृङ्गराजाय नमः पू० भृङ्गराज इहा० १५ । पीते षोडशे ए० ॐ भू० मृगाय नमः पू० मृग इहा० १६ । रक्ते सप्तदशे एकपदे निर्ऋतिकोणे ॐ भू० पितृगणाय नमः पू० पितृगण इहा० १७ । रक्ते तदुत्तरे एकपदे अष्टादशे ॐ भू० दौवारिकाय नमः पू० दौवारिक इहा० १८ । शुक्ले ऊनविंशे द्वि० ॐ भू० सुग्रीवाय नमः पू० सुग्रीव इहा० १९ । रक्ते विंशे द्वि० ॐ भू० पुष्पदन्ताय नमः पू० पुष्पदन्त इहा २० । शुक्ले एकविंशे द्वि० ॐ वरुणाय नमः पू० वरुण इहा० २१ । पीते द्वाविंशे द्वि० ॐ भू० असुराय नमः पू० असुर इहा० २२ । कृष्णे त्रयोविंशे द्वि० ॐ भू० शोषाय नमः पू० शोष इहा० २३ । पीते चतुर्विंशे ए० ॐ भू० पापाय नमः पू० पाप इहा० २४ । रक्ते पञ्चविंशे वायुकोणे ए० ॐ भू० रोगाय नमः पू० रोग इहा० २५ । रक्ते तत्पूर्वे षड्विंशे ए० ॐ भू० अहये नमः पू० अहे इहा० २६ । रक्ते सप्तविंशे द्वि० ॐ भू० मुख्याय नमः पू० मुख्य इहा० २७ । कृष्णेऽष्टाविंशे द्वि० ॐ भू० भल्लाटाय नमः पू० भल्लाट इहा० २८ । शुक्ले ऊनत्रिंशे द्वि० ॐ भू० सोमाय नमः पू० सोम इहा० २९ । कृष्णे त्रिंशे द्वि० ॐ भू० सर्पेभ्यो नमः पू० सर्पाः इहागच्छतेह तिष्ठत ३० । पीते एकत्रिंशे द्वि० ॐ भू० अदितये नमः पू० अदिते इहा० ३१ । पीते द्वात्रिंशे ए० ॐ भू० दितये नमः पू० दिते इहा० ३२ । शुक्ले द्वितीयपङ्क्तिस्थे ईशानकोणे ए० ॐ भू० आपाय नमः पू० आप इहागच्छ इह तिष्ठ ३३ । शुक्ले चतुस्त्रिंशे द्वि० पङ्क्तिस्थेऽग्निकोणे ए० ॐ भू० सावित्राय नमः पू० सावित्र इहा० ३४ । शुक्ले पञ्चत्रिंशे द्वि० पं० नैर्ऋते ए० ॐ भू० जयाय नमः पू० जय इहा० ३५ । रक्ते षट्त्रिंशे द्वि० पं० वायुकोणे ए० ॐ भू० रुद्राय नमः पू० रुद्र इहा० ३६ । कृष्णे त्रिपदे तृतीयपङ्क्तिस्थे ब्रह्मपदात्पूर्वे सप्तत्रिंशे ॐ भू० अर्यम्णे नमः पू० अर्यमन् इहा० ३७ । रक्ते अष्टात्रिंशे तृ० पं० ए० अग्निकोणे ॐ भू० सवित्रे नमः पू० सवितः इहा० ३८ । शुक्ले ऊनचत्वारिंशे तृ० पं० ब्रह्मपदाद्दक्षिणे त्रि०

ॐ भू० विवस्वते नमः पू० विवस्वन् इहा० ३९। रक्ते चत्वारिंशे तृ० पं० निर्ऋतिकोणे ए० ॐ भू० विबुधाधिपाय नमः पू० विबुधाधिप इहा० ४०। शुक्ले एकचत्वारिंशे तृ० पं० ब्रह्मपदात् पश्चिमे त्रि० ॐ भू० मित्राय नमः पू० मित्र इहा० ४१। रक्ते द्विचत्वारिंशे तृ० पं० वायुकोणे ए० ॐ भू० राजयक्ष्मणे नमः पू० राजयक्ष्मन् इहा० ४२। रक्ते त्रिचत्वारिंशे तृ० पं० ब्रह्मपदादुत्तरे त्रि० ॐ भू० पृथ्वीधराय नमः पू० पृथ्वीधर इहा० ४३। शुक्ले चतुश्चत्वारिंशे तृ० पं० ऐशाने ए० ॐ भू० आपवत्साय नमः पू० आपवत्स इहा० ४४। मध्ये पञ्चचत्वारिंशे नवपदे पीतवर्णे ॐभूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः पू० ब्रह्मन् इहागच्छेह तिष्ठ॥ ४५॥

ततस्तास्मिन्नेव पदे तदुत्तरतः स्त्रीरूपां पृथिवीं ॐभू० पृथिव्यै नमः पृथिवि इहागच्छ इह तिष्ठ (१)।

ततस्तस्मिन्नेव तदुत्तरतो माषान्यूनहिरण्यप्रतिमायां रजतप्रतिमायाम् अक्षतपुञ्जे वा दृषवास्तुं सर्पाकारं (२) विलिख्य स्थापयेत् ॐभूर्भुवः स्वः वास्तुपुरुषाय नमः पू० वास्तुपुरुष कपिलजटाभार पृथ्वीधर देवानां प्रधानपुरुष सकलकर्म्मप्रधानपुरुष सकलकर्म्मप्र साधक पुष्करकूपोद्यानगृहप्रथमारम्भकाले सर्वसिद्धिप्रदायक सर्व सिद्धदेवमनुष्यैः सर्वदा पूज्यमान गृहस्थाने प्रजापतिक्षेत्रे शीघ्रमागच्छागच्छेति॥

---

(१) वास्तुमण्डलमध्ये तु ब्रह्मस्थाने प्रपूजयेत्। सुरूपां पृथिवीं दिव्यरूपाभरणसंयुताम्॥ इति विश्वकर्मप्रकाशे [अ० ५। ३४] पृथिवीपूजनमुक्तम्। तदनुरोधेनात्रावाहनमुक्तम्। एतदनन्तरं वास्तुपुरुषस्य गन्धादिभिरर्चनं "वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु" इत्यादिना तस्य प्रार्थ चाभिधाय स्वस्तिवाचनपूर्वकं वेष्टितसूत्रमार्गेण कर्कर्या जलधाराकर बीजप्रक्षेपणं च तत्र विहितम्।

(२) इति प्रार्थ्य ततो भूमौ संलिखेद्वास्तुपूरुषम्। पिष्टातकैः तण्डुलैर्वा नागरूपधरं विभुम्॥ इति तत्स्वरूपं विश्वकर्मप्रकाशे [अ० १ ६७] उक्तम्। सुवर्णेन मूर्तिकरणं तु आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टेऽभिहितम् [अ० ४]।

ततो बाह्यदेवतानां स्थापनम् । ईशाने धूम्रे ॐभू० चरक्यै नमः पू० चरकि इहा० १ । आग्नेये रक्तवर्णे ॐभू० विदारक्यै नमः पू० विदारकि इहा० २ । नैर्ऋते पीतवर्णे ॐभू० पूतनायै नमः पू० पूतने इहा० ३ । वायव्ये धूम्रवर्णे ॐभू० पापराक्षस्यै नमः पू० पापराक्षसि इहा० ४ । पूर्वे रक्तवर्णे ॐभू० स्कन्दाय नमः पू० स्कन्द इहा० ५ । दक्षिणे कृष्णवर्णे ॐभू० अर्यम्णे नमः पू० अर्य्यमन् इहा० ६ । पश्चिमे रक्तवर्णे ॐभू० जृम्भकाय नमः पू० जृम्भक इहा० ७ । उत्तरे पीतवर्णे ॐभू० पिलिपिच्छाय नमः पू० पिलिपिच्छ इहा० ८ । एवं पूर्वादिदिक्षु इन्द्रादिदशदिक्पालांश्चावाह्य सर्वेषामुत्तरतः मण्डलाद्बहिः "ॐभूर्भुवः स्वः क्षेत्रपालाय नमः पू० क्षेत्रपाल इहागच्छेह तिष्ठ । ॐनमो भगवते क्षेत्रपालाय त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवाधिनिर्जिताय भास्वद्भासुरकिंकिणीज्वालामुखाय भैरवरूपिणे तुरु २ मुरु २ लल २ पप २ फेँफेँकाररूपिणे हुँफट्" इति मन्त्रेण क्षेत्रपालमावाहयेत् ।

एवमावाहनं विधाय पूजासंकल्पं कुर्य्यात् । अद्येहेत्यादि सङ्कीर्त्य अमुकोऽहं गृहारम्भशिलान्यासकर्म्मणि[गृहप्रवेशकर्मणि]वेद्युपरि शिख्यादिब्रह्मपर्य्यन्तानां पञ्चचत्वारिंशद्देवानां, पृथिव्याः, वास्तुपुरुषस्य, चरक्यादीनामष्टानाम्, इन्द्रादीनां दशदिक्पालानां बाह्यदेवतानां, क्षेत्रपालस्य च पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य "एतन्ते" इत्यादिमन्त्रं पठित्वा ॐभूर्भुवः स्वः शिख्यादिपञ्चचत्वारिंशद्देवताः पृथिवी वास्तुपुरुषः चरक्याद्यष्टौ इन्द्रादयो दश बाह्यदेवताः क्षेत्रपालश्च सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु इति प्रतिष्ठाप्य नाममन्त्रैर्ध्यानावाहनासनपाद्यार्घ्याचमनस्नानवस्त्रयज्ञोपवीतगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलभूषणनीराजनादिभिः पूजयेत् । ॐशिखिने नमः१ ॐपर्जन्याय नमः२ ॐजयन्ताय नमः३ ॐकुलिशायुधाय नमः४ ॐसूर्याय नमः५ ॐसत्याय नमः६ ॐभृशाय नमः७ ॐआकाशाय नमः८ ॐवायवे नमः९ ॐपूष्णे नमः१० ॐवितथाय नमः११ ॐगृहक्षताय नमः१२ ॐयमाय नमः१३ ॐगन्धर्वाय नमः१४ ॐभृङ्गराजाय नमः१५

ॐमृगाय नमः१६ ॐपितृगणाय नमः१७ ॐदौवारिकाय नमः१८ ॐसुग्रीवाय नमः१९ ॐपुष्पदन्ताय नमः२० ॐवरुणाय नमः२१ ॐ असुराय नमः२२ ॐशोषाय नमः२३ ॐपापाय नमः२४ ॐरोगाय नमः२५ ॐअहये नमः २६ ॐमुख्याय नमः २७ ॐभल्लाटाय नमः २८ ॐसोमाय नमः २९ ॐसर्पेभ्यो नमः ३० ॐअदितये नमः ३१ ॐदितये नमः ३२ ॐआपाय नमः ३३ ॐसावित्राय नमः ३४ ॐजयाय नमः ३५ ॐरुद्राय नमः ३६ ॐअर्य्यम्णे नमः ३७ ॐसवित्रे नमः ३८ ॐविवस्वते नमः ३९ ॐविबुधाधिपाय नमः ४० ॐ मित्राय नमः ४१ ॐराजयक्ष्मणे नमः ४२ ॐपृथ्वीधराय नमः ४३ ॐआपवत्साय नमः ४४ ॐब्रह्मणे नमः ४५ ॐपृथिव्यै नमः ४६ ॐवास्तोष्पतये नमः ४७ ॐचरक्यै नमः ४८ ॐविदारक्यै नमः ४९ ॐपूतनायै नमः ५० ॐपापराक्षस्यै नमः ५१ ॐस्कन्दाय नमः ५२ ॐअर्य्यम्णे नमः ५३ ॐजृम्भकाय नमः ५४ ॐपिलिपिच्छाय नमः ५५ ॐइन्द्राय नमः ५६ ॐ अग्नये नमः ५७ ॐयमाय नमः ५८ ॐनिर्ऋतये नमः ५९ ॐ वरुणाय नमः ६० ॐवायवे नमः ६१ ॐकुबेराय नमः ६२ ॐईशानाय नमः ६३ ॐब्रह्मणे नमः ६४ ॐअनन्ताय नमः ६५ इति चतुर्थ्यन्तनाममन्त्रैः पाद्यादिनीराजनान्तं सम्पूजयेत्। वास्तुपूजायां मन्त्रविशेषः—

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ इति मन्त्रेण वास्तुदेवं संपूजयेत्। तत ईशानदेशे कलशविधिना कलशं संस्थाप्य तत्र ब्रह्माणं तीर्थानि वरुणं चावाह्य संपूजयेत्। ततः क्षेत्रपालं ॐ क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः॥ इति मन्त्रेण नाममन्त्रेण च पाद्यादिभिः पूजयेत्। ततः रक्षासूत्रमभिमन्त्र्य कलशे स्थापयेत्, वेदिद्वयोपरि वितानं च कुर्यात्। ततो होमवेदीसमीपमागत्य ब्रह्मासनास्तरणादिपर्य्युक्षणान्तं कर्म्म कृत्वा शिलानामभिषेकार्थं संस्रवधारणार्थं जलकुम्भमग्नेरुत्तरतः यथाविधि संस्था-

पयेत्। ततः "एतंते" इत्यादिना (१)वरदनामानं प्रजापतिनामानं वाऽग्निं प्रतिष्ठापयेत्।

ततो यजमानः द्रव्यदेवताभिध्यानं कृत्वा द्रव्यत्यागं कुर्य्यात्। अद्येह स शिलान्यास[गृहप्रवेशाङ्ग]वास्तुकर्म्मणा यक्ष्ये। तत्र प्रजापतिम् इन्द्रम् अग्निं सोमम् आज्येन, आदित्यादिग्रहान् समिच्चर्वाज्यकृष्णतिलैः प्रत्येकमष्टसंख्याहुतिभिः, अधिदेवताः प्रत्यधिदेवताश्च तैरेव चतुस्संख्याहुतिभिः, शिख्यादीन् पञ्चचत्वारिंशद्देवान् मधुघृताक्तोदुम्बरखदिरापामार्गपलाशान्यतमसमिदाज्ययवकृष्णतिलैः दशसंख्याहुतिभिः, पृथिवीं तैरेवाष्टसंख्याहुतिभिः, वास्तोष्पतिं तैरेवाष्टोत्तरशताहुतिभिः पञ्चभिः विल्वफलैश्च [विल्ववीजैश्च], चरक्यादीन् समिदादिभिरष्टसंख्याहुतिभिः, शेषेण स्विष्टकृतम्, अग्न्यादीन् प्रजापत्यन्तान्नन्दाद्याः शिलाश्चाज्येनाहं यक्ष्ये। एतत्संपादितमाज्यादिद्रव्यम् आघाराज्यभागदेवताभ्यः आदित्यादिनवग्रहादिभ्यः शिख्यादिपञ्चचत्वारिंशद्देवताभ्यः पृथिव्यै वास्तुपुरुषाय चरक्याद्यष्टदेवताभ्यः स्विष्टकृदग्नये महाव्याहृतिसर्वप्रायश्चित्तदेवताभ्यो नन्दादिशिलाभ्यश्च मया परित्यक्तं यथादैवतमस्तु न मम इति।

तत आचार्यः "तदेवाग्निः" इत्यादिना मन्त्रेण अग्निं पाद्यादिनीराजनान्तं रेखा जिह्वाश्च सम्पूज्य ब्रह्मणाऽन्वारब्धो दक्षिणं जान्वाच्य मनसा प्रजापतिं ध्यात्वा ॐप्रजापतये स्वाहा (इदं प्रजापतये) ॐइन्द्राय स्वाहा (इदमिन्द्राय) ॐअग्नये स्वाहा (इदमग्नये) ॐसोमाय स्वाहा (इदंसोमाय) इत्याघारावाज्यभागौ च हुत्वा ऋत्विग्भिः सहानन्वारब्धस्तिलादिना प्रत्येकमष्टसंख्यया ग्रहहोमं, चतुःसंख्ययाऽधिदेवताप्रत्यधिदेवताहोमं, द्विसंख्यया लोकपालदिक्पालहोमं च कृत्वा प्रधानशिख्यादिहोमं मधुघृताक्तोदुम्बराद्यन्यतमसमिदादिभिः दशसंख्यया कुर्य्यात्। ॐकारः सर्वत्र योज्यः। शिखिने स्वाहा १

(१) "शान्तिके वरदो नाम"ति वचनात्। "वास्तुयागे प्रजापतिः" इति मत्स्यसूक्तवचनात् "अत्र प्रजापतिनामाऽग्निः" इति वास्तुयागतत्त्वे रघुनन्दनः।

पर्जन्याय स्वाहा २ जयन्ताय स्वाहा ३ कुलिशायुधाय स्वाहा ४ सूर्य्याय स्वाहा ५ सत्याय स्वाहा ६ भृशाय स्वाहा ७ आकाशाय स्वाहा ८ वायवे स्वाहा ९ पूष्णे स्वाहा १० वितथाय स्वाहा ११ गृहक्षताय स्वाहा १२ यमाय स्वाहा १३ गन्धर्वाय स्वाहा १४ भृङ्गराजाय स्वाहा १५ मृगाय स्वाहा १६ पितृगणाय स्वाहा १७ दौवारिकाय स्वाहा १८ सुग्रीवाय स्वाहा १९ पुष्पदन्ताय स्वाहा २० वरुणाय स्वाहा २१ असुराय स्वाहा २२ शोषाय स्वाहा २३ पापाय स्वाहा २४ रोगाय स्वाहा २५ अहये स्वाहा २६ मुख्याय स्वाहा २७ भल्लाटाय स्वाहा २८ सोमाय स्वाहा २९ सर्पेभ्यः स्वाहा ३० अदितये स्वाहा ३१ दितये स्वाहा ३२ आपाय स्वाहा ३३ सावित्राय स्वाहा ३४ जयाय स्वाहा ३५ रुद्राय स्वाहा ३६ अर्य्यम्णे स्वाहा ३७ सवित्रे स्वाहा ३८ विवस्वते स्वाहा ३९ विबुधाधिपाय स्वाहा ४० मित्राय स्वाहा ४१ राजयक्ष्मणे स्वाहा ४२ पृथ्वीधराय स्वाहा ४३ आपवत्साय स्वाहा ४४ ब्रह्मणे स्वाहा ४५ इति मन्त्रैर्होमं प्रत्येकं दशसंख्यया कृत्वा पृथिवीहोमं "स्योनापृथिवि" इति मन्त्रेण अष्टसंख्यया कृत्वा वास्तोष्पतिहोमं वक्ष्यमाणेन "वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्" इति मन्त्रेण 'वसिष्ठऋ. त्रिष्टुप्छन्दो वास्तोष्पतिर्दे. होमे वि.' इति स्मृत्वा अष्टोत्तरशतसंख्यया तैरेव द्रव्यैः कृत्वा बिल्वपञ्चकेन घृताक्तेन "वास्तोष्पते" इत्यादिमन्त्रपञ्चकेन जुहुयात् ।

वास्तोष्पते प्रतीति चतसृणां वसिष्ठऋषिः । आद्यास्तिस्रस्त्रिष्टुभः अन्त्या गायत्री । वास्तोष्पतिर्देवता । वास्तोष्पते ध्रुवेत्यस्या रिरिम्बिठिर्ऋषिः । बृहतीछन्दः । वास्तोष्पतिर्देवता । सर्वासां होमे विनियोगः । [पा० गृ० कां०३ कं०४]

ॐवास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशो ऽअनमीवो भवा॑नः । यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा ॥ १ ॥ ॐवास्तोष्पते प्रतरणो न ऽएधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्ये

स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व स्वाहा ॥ २ ॥ वास्तोष्पते शग्मया सꣳसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। पाहि क्षेम ऽउत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा ॥ ३ ॥ [ऋ.सं.५ । ४ । २१ । १–३]

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्। सखा सुशेव ऽएधि नः स्वाहा ॥४॥[ऋ. सं. ५ । ४ । २२ । १] [६।१।२४] वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम्। द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा स्वाहा ॥ ५ ॥

इति बिल्वपञ्चकहोमं विधाय ततश्चरक्यादिवाह्यदेवताभ्यः प्रत्येकमष्टसंख्याहुतिभिस्तैरेव द्रव्यैर्जुहुयात्। चरक्यै स्वाहा १ विदार्यै स्वाहा २ पूतनायै स्वाहा ३ पापराक्षस्यै स्वाहा ४ स्कन्दाय स्वाहा ५ अर्यम्णे स्वाहा ६ जृम्भकाय स्वाहा ७ पिलिपिच्छाय स्वाहा ८। ततः ब्रह्मान्वारब्धेन सर्वशेषेण स्विष्टकृद्धोमम्, आज्येन भूरादिनवाहुतिहोमं च विधाय संस्रवप्राशनम्, पवित्रप्रतिपत्तिः, प्रणीताविमोकश्च कार्याणि।

ततो यजमानः ब्रह्मणे पूर्णपात्रम् अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं शिलान्यासवास्तूपशमनाङ्गहोमकर्मणः सांद्गुण्यार्थमपूर्णपूरणार्थं च इदं पूर्णपात्रं ससुवर्णं तुभ्यमहं संप्रददे इति संकल्प्य दद्यात्। ब्रह्मा च अक्रन्कर्मेति मन्त्राशिषं दद्यात्। तत आचार्यो वास्तुदेवताभ्यः प्रत्येकं पायसबलिं दध्यक्षतबलिं वा दद्यात्। तत्र संकल्पः— अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं सपुत्रसपरिवारस्य मम यजमानस्य आयुरारोग्याभिवृद्धिपूर्वकं सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं नवग्रहादिभ्यः शिख्यादिपञ्चपञ्चाशद्देवताभ्यश्च पायसेन दध्यक्षतैर्वा बलिदानं करिष्ये। ॐकारः सर्वत्र योज्यः। बलिं गृहीत्वा ग्रहयागप्रयोगोक्तरीत्या ग्रहादिभ्यो बलिं दत्वा वास्तुवेदेः पश्चात् शिखिने—

साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय एष सदीपः पायसबलिः। [दध्यक्षतबलिः] नमः।

इति बलिं समर्प्य हस्ते जलं गृहीत्वा भोभोः शिखिन्—

एनं सदीपं सद्रव्यं पायसबलिं [दध्यक्षतबलिं] गृहाण मम यजमानस्य सपुत्रसपरिवारस्य रक्षाकर्त्ता आयुष्कर्त्ता क्षेमकर्त्ता शान्तिकर्त्ता तुष्टिकर्त्ता पुष्टिकर्त्ता स्थिरकर्त्ता भव इति बल्युपरि जलं विसृजेत् १।

पर्जन्याय० नमः भोभोः पर्जन्य एनमित्यादि पू० २ जयन्ताय० नमः भोभो जयन्त एनं. ३ कुलिशायुधाय० नमः भोभोः कुलिशायुध एनं. ४ सूर्याय. नमः भोभोः सूर्य्य एनं. ५ सत्याय. नमः भोभोः सत्य एनं. ६ भृशाय. नमः भोभो भृश एनं. ७ आकाशाय. नमः भोभो आकाश एनं. ८ वायवे. नमः भोभो वायो एनं. ९ पूष्णे. नमः भोभोः पूषन् एनं. १० वितथाय. नमः भोभो वितथ एनं. ११ गृहक्षताय. नमः भोभो गृहक्षत एनं. १२ यमाय. नमः भोभो यम एनं. १३ गन्धर्वाय. नमः भोभो गन्धर्व एनं. १४ भृङ्गराजाय. नमः भोभो भृङ्गराज एनं. १५ मृगाय. नमः भोभो मृग एनं. १६ पितृगणाय. नमः भोभोः पितृगण एनं. १७ दौवारिकाय. नमः भोभो दौवारिक एनं. १८ सुग्रीवाय. नमः भोभोः सुग्रीव एनं. १९ पुष्पदन्ताय. नमः भोभोः पुष्पदन्त एनं. २० वरुणाय. नमः भोभो वरुण एनं. २१ असुराय. नमः भोभो असुर एनं. २२ शोषाय. नमः भोभोः शोष एनं. २३ पापाय. नमः भोभोः पाप एनं. २४ रोगाय. नमः भोभो रोग एनं. २५ अहये. नमः भोभो अहे एनं. २६ मुख्याय. नमः भोभो मुख्य एनं. २७ भल्लाटाय. नमः भोभो भल्लाट एनं. २८ सोमाय. नमः भोभोः सोम एनं. २९ सर्पेभ्यः० नमः भोभोः सर्पा एनं. बलिं गृह्णीत यजमानस्यायुष्कर्तारः. भवत ३० अदितये. नमः भोभो अदिते एनं. आयुष्कर्त्री. ३१ दितये. नमः भोभो दिते एनं. आयुष्कर्त्री. ३२ आपाय. नमः भोभो आप एनं. ३३ सावित्राय. नमः भोभोः सावित्र एनं. ३४ जयाय. नमः भोभो जय एनं. ३५ रुद्राय. नमः भोभो रुद्र एनं. ३६ अर्यम्णे. नमः भोभो अर्य्यमन् एनं. ३७ सवित्रे.

नमः भोभोः सवितः एनं. ३८ विवस्वते. नमः भोभो विवस्वन् एनं. ३९ विबुधाधिपाय. नमः भोभो विबुधाधिप एनं. ४० मित्राय. नमः भोभो मित्र एनं. ४१ राजयक्ष्मणे. नमः भोभो राजयक्ष्मन् एनं. ४२ पृथ्वीधराय. नमः भोभोः पृथ्वीधर एनं. ४३ आपवत्साय. भोभो आपवत्स एनं. ४४ ब्रह्मणे. नमः भोभो ब्रह्मन् एनं. ४५ पृथिव्यै. नमः भोभोः पृथिवि एनं. आयुष्कर्त्री. ४६ वास्तोष्पतये. नमः भोभो वास्तोष्पते एनं. ४७ ई० चरक्यै. नमः भोभोश्चरकि एनं. पायसबलिं (दध्यक्षतबलिं) सद्रव्यं गृहाण मम यजमानस्य सपुत्रसपरिवारस्य रक्षाकर्त्री आयुष्कर्त्री क्षेमकर्त्री शान्तिकर्त्री तुष्टिकर्त्री पुष्टिकर्त्री स्थिरकर्त्री भव ४८ आ० विदारक्यै० नमः भोभो विदारकि एनमित्यादि चरकीवत् ४९ नै० पूतनायै० नमः भोभोः पूतने एनं. ५० वा. पापराक्षस्यै० नमः भोभोः पापराक्षसि एनं. ५१ पू. स्कन्दाय० नमः भोभो स्कन्द एनं. ५२ द० अर्यम्णे० - नमः भोभो अर्य्यमन् एनं. ५३ प. जृम्भकाय० नमः भोभो जृम्भक एनं. ५४ उ० पिलिपिच्छाय० नमः भोभोः पिलिपिच्छ एनं. ५५ ।

ततः इन्द्रादिदिक्पालेभ्यो गृहप्रवेशवक्ष्यमाणरीत्या बलिं दत्त्वा क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात् । चतुर्वर्त्तिकदीपयुतं द्रव्यताम्बूलकृसरान्नादिभिः क्षेत्रपालबलिं संपाद्य संकल्पं कुर्यात् । अद्येत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं मम यजमानस्य सपुत्रसपरिवारस्य रक्षार्थं सर्वारिष्टपरिहारार्थं च क्षेत्रपालाय बलिदानं करिष्ये । तदङ्गत्वेन क्षेत्रपालस्य पूजनं करिष्ये । कृसरबल्युपरि चतुर्वर्त्तिकं दीपं प्रज्वाल्य बलिं सम्प्रोक्ष्य रक्तचन्दनादिभिः पूजयेत् । ध्यानम्—

भ्राजद्वक्त्रजटाधरं त्रिनयनं नीलाञ्जनाद्रिप्रभं
दोर्दण्डान्तगदाकपालमरुणस्रग्गन्धवस्त्रावृतम् ।
घण्टाघुर्घुरमेखलध्वनिमिलद्धुंकारभीमं विभुं
वन्दे संहितसर्पकुण्डलधरं श्रीक्षेत्रपालं भजे ॥

इति ध्यात्वा ॐ क्षौं क्षेत्रपालाय भूतप्रेतपिशाचडाकिनीशाकिनो-

वेतालादिपरिवारयुताय एष सदीपताम्बूलदक्षिणः कृसरान्नबलिर्नमः ॐ नमो भगवते क्षेत्रपालाय त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवाधिनिर्जिताय भास्वद्भासुरकिङ्किणीज्वालामुखभैरवरूपिणे तुरु२ मुरु२ लल२ षष२ फेँ फेँकाररूपिणे भोः२ क्षेत्रपाल एनं सदीपं कृसरान्नबलिं गृह्ण२ मम यजमानं पाहि२ दिशो रक्ष२ बलिं भक्ष२ मम यजमानस्य सपुत्रसपरिवारस्य रक्षाकर्त्ता आयुष्कर्त्ता क्षेमकर्त्ता शान्तिकर्ता तुष्टिकर्त्ता पुष्टिकर्त्ता स्थिरकर्त्ता भव इति क्षेत्रपालाय बलिदानं विधाय आचामेत् । वक्ष्यमाणं सायंकालिकभूतबलिदानं चेदानीमेवापकृष्याचरन्ति । एवं होमान्ते [वि.क.प.]विहितं बलिदानं विधायाचार्यः सपरिवारं यजमानं प्राङ्मुखं स्वयं प्रत्यङ्मुखः शान्तिकलशोदकेन पूर्वोक्तैः(१४६) "सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु" इत्यादिभिर्वैदिकैश्च मन्त्रैर्ऋत्विग्भिः सहोत्थाय तत्रैव बलिदानान्ते विहितमभिषेकं कुर्यात् । ततः सर्वौषधीरनुलिप्य तं शुद्धोदकेन स्नापयित्वा नवपदे ब्रह्मस्थाने पृथिवीं सुभूषितां स्त्रीरूपां ध्यात्वा "ॐ भूर्भुवः स्वः धरायै नमः"इति विश्वकर्मप्रकाशोक्तेन मन्त्रेण संपूज्य संप्रार्थ्य "सर्वदेवमयं वास्तु वास्तुदेवमयं परम्" इति वास्तुदेवं च तत्र भावयित्वा संपूज्य संप्रार्थ्य च वास्तुभूमिं[गृहं] प्रागादितस्त्रिसूत्र्या ।

(१)ॐ कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ २॥ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥१॥
तव भ्रमास ऽआशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूᳪंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसंदितो विसृज विष्वगुल्काः ॥२॥
प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो ऽअस्या ऽअदब्धः ।
यो नो दूरेऽअघशᳪंसो यो ऽअन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥३॥

(१) वास्तूपशमनं कृत्वा ततः सूत्रेण वेष्टयेत् । रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम् ॥ इति हेमाद्रौ मात्स्यात् । रक्षोघ्नं सूक्तं "कृणुष्व पाज" इति पञ्चर्चम् [य० सं० अ० १३ । कं० ९–१३] । पावमानं "पुनन्तु मा पितरः सोम्यास"इति नवर्चम् अष्टकण्डिकात्मकम् [य० सं० अ० १९ । कं० ३७–४४]

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ२॥ ओषतात् तिग्महेते।
यो नो ऽअरातिᳪ समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४॥
ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने।
अवस्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् ॥५॥
इति रक्षोघ्नेन—

ॐपुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः।
पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा ॥ १ ॥
पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः।
पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ २ ॥
अग्न ऽआयूᳪषि पवस ऽआसुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥३॥
पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ ४ ॥
पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२॥ रनु॥५॥
यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥६॥
पवमानः सो ऽअद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा॥७॥
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। मां पुनाहि विश्वतः ॥८॥
वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः।
तया मदन्तः सधमादेषु वयᳪस्याम पतयो रयीणाम् ॥९॥

इति पावमानेन च सूक्तेन वेष्टयेत्। ततो (१)दुग्धपूर्णया जलपूर्णया च स्तनकुम्भीभ्यां(झारियोंसे)वास्तुभूमिं [गृहं]प्रागादितः अविच्छिन्नधाराद्वयेन सिञ्चेत् सप्तधान्यबीजानि प्रक्षिपेच्च।

अथ यजमानः गृहस्याग्नेये ईशानकोणात् अष्टमे(२)आकाशपदे

---

(१) "बलिं च सम्यग्विधिवत्प्रयुज्य क्षीरेण धारां परितस्तु दद्यात्" इति मदनरत्ने गृहदानप्रकरणे मात्स्योक्तेः, विश्वकर्मप्रकाशे वास्तुपुरुषप्रार्थनान्तं कर्माभिधाय "वाचयित्वा ततः स्वस्ति कर्करीं परिगृह्य च। सूत्रमार्गेण तोयस्य धारां कुर्यात् प्रदक्षिणम् ॥ प्रक्षिपेत्तन मार्गेण सप्तबीजानि चैव हि"। इत्युक्तेश्च जलदुग्धोभयधाराकरणं लभ्यते। कर्करो 'झारी' इति प्रसिद्धा।

(२) "होमशेषं समाप्याथ यजमानो वास्तुमूर्ति रौद्रकोणेऽधोमुखी

भूमिं जानुमात्रं खानयित्वा गोमयमृज्जलैरुपलेप्य शुक्लगन्धपुष्पादिभिरलंकृत्य सप्तधान्यानि दधि च तत्र प्रक्षिप्य जलपूर्णं गन्धादिभिरर्चितं नवकुम्भं हस्ताभ्यामादाय जानुनी भूमौ निपात्य ॐ नमो वरुणाय इति जलेन गर्तं पूरयेत्। ततो मृन्निर्मितपेटिकायां सप्तधान्यदधिशैवालपुष्पाणि प्रक्षिप्य ब्रह्मस्थाने पूजितरूपवास्तुप्रतिमां मङ्गलघोषपूर्वकमानीय तस्यां संस्थाप्य गन्धादिभिः संपूज्य—

प्रसीद पाहि विश्वेश देहि मे गृहजं सुखम्।
पूजितोऽसि मया वास्तो होमाद्यैरर्चनैः शुभैः॥
वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूमिशय्यारत प्रभो।
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा।॥

इति प्रार्थयेत्। ततः मृन्मयपिधानेन पेटिकामाच्छाद्य पेटिकां गृहीत्वा तस्मिन् गर्ते—

सशैलसागरां पृथ्वीं यथा वहसि मूर्धनि।
तथा मां वह कल्याणसंपत्संततिभिः सह॥

इति मन्त्रेण शनैर्निक्षिपेत्। गर्तं पूर्वोत्खातमृदा पूरयेत्। मृद आधिक्ये शुभं, साम्ये मध्यमं, न्यूनत्वेऽधमम्। गर्तोपरि भूमिं गोमयादिनोपलेप्य गन्धादिभिर्भूषयेत्।

गृहनिर्माणाय एतत्सर्वं कर्म कृत्वा शिलान्यासमुपक्रमेत। पूर्वं यथाप्रमाणतः निर्माप्य स्थापिताः नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णेति पञ्च-

---

गर्तं प्रच्छादयेत्" इति पूजितवास्तुप्रतिमाया गर्ते प्रच्छादनम् आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे [अ० ४। खं० २] अभिहितम्। "मृत्पेटिकां स्वर्णरत्नधान्यशैवालसंयुताम्। गृहमध्ये हस्तमात्रे गर्ते न्यासाय विन्यसेत्"॥ इति नारदसंहितायां मृत्पेटिकाया गर्ते निधानमुक्तम्। शान्तिसारादिपद्धतिकारैस्तु उभयैकवाक्यतया वास्तुप्रतिमां पेटिकायां निधाय गर्ते तस्या निधानमुल्लिखितम्। अस्माभिरपि तदेवाश्रितम्। वास्तुभूमेरेकाशीतिपदानि कल्पयित्वा ईशानकोणात् अष्टमे आकाशपदे निधानमपि शान्तिसाराद्यनुरोधात्। परिशिष्टे रौद्रकोणे, नारदसंहितायां च मध्ये निधानस्योक्तत्वात्। आकाशपदस्यैव या रौद्रत्वं लिङ्गतोभद्रमण्डले रुद्राग्न्योर्मध्यस्य रुद्रायतनत्वकथनात्कथंचिद्योज्यमिति दिक्।

शिलाः पद्माद्यङ्किता उपशिलासहिताः स्नानमण्डपमानीय कुशशय्यायां भद्रासने स्थापयित्वा ताम्रमयान् मृन्मयान्वा १७स्नानकलशान् मृत्-पञ्चकषाय-गोमूत्र-गोमय-समस्तपञ्चगव्य-व्यस्तपञ्चामृत-फल-रत्न-सुवर्ण-वृषशृङ्ग तोर्थ-गन्धोदकयुक्तान् कृत्वा नन्दादिषु ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-ईशान-सदाशिवान् आवाह्य प्रतिष्ठाप्य वस्त्रेणाच्छाद्य मन्त्रैः नन्दाद्याः शिलाः स्नापयेत्।

तद् यथा—प्रथमं सप्तमृत्तिकोदकेन—

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽअयम्। अपाᳬं रेताᳬंसि जिन्वति॥ इति मन्त्रेण।

अथ अश्वत्थप्लक्षवटोदुम्बरवेतसमूलसंभवैः पञ्चकषायैः—

यज्ञा यज्ञा वो ऽअग्नये गिरागिरा च दक्षसे। प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शᳬंसिषम्॥

[य. सं. अ. २७ । कं. ४२] इति मन्त्रेण।

गायत्र्या गोमूत्रेण, "गन्धद्वाराम्" इति गोमयेन गन्धोदकेन च मलस्नानं कारयित्वा "पयः पृथिव्याम्" इति समुदितेन पञ्चगव्येन स्नापयित्वा "आप्यायस्व" इति दुग्धेन संस्नाप्य "गन्धद्वाराम्" इति गन्धतोयेन संस्नाप्य "दधिक्राव्णः" इति दध्ना संस्नाप्य "गन्धद्वाराम्" इति गन्धोदकेन सं. "घृतवती" इति घृतेन सं. पूर्ववद्गन्धतोयेन सं.,

"मधुव्वाता ऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः" इति मधुना सं० गन्धतोयेन पू० सं०

आऽयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः" इति शर्करया सं. पू. गन्धतोयेन स्ना.,

याः फलिनीर्या ऽअफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वᳬंहसः॥ इति फलोदकेन,

परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानि दाशुषे॥ इति रत्नोदकेन,

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽ

आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय ह॒विषा विधेम ॥ इति सुवर्णोदकेन,

हविष्मतीरिमा ऽआपो हविष्माँ २ ॥ आविवासति। हविष्मान्देवो ऽअध्वरो हविष्माँ २॥ अस्तु सूर्यः॥ इति वृषभशृङ्गोदकेन,

ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन् पारयामसि ॥ इति सप्तधान्योदकेन,

इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके ॥ इति तीर्थोदकेन,

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ इति गन्धोदकेन च (१) संस्नाप्य वस्त्रेण परिमार्ज्य सरलासने निवेश्य केसरादियुतेन सुगन्धिना चन्दनेनानुलिप्य सुवर्णादिशलाकया कुङ्कुमादिना नन्दाशिलायां पद्मं, भद्राशिलायां सिंहासनम्, जयायां तोरणं छत्रं च, रिक्तायां कूर्म्मम्, पूर्णायां चतुर्भुजं विष्णुं च टङ्कोत्किरणमनुसृत्य लिखित्वा वस्त्रेणाच्छाद्य नन्दादिशिलानां मूलेषु (२) अभिषेकं कुर्यात्

(१) सर्वासामविशेषेण तन्तुनाऽवगुण्ठनम्। मृद्भिर्गोमयगोमूत्रकाषाययैर्गन्धवारिणा ॥ विधिना पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च। गन्धतोयान्तरं कुर्यान्निजनामाङ्कितागुना ॥ फलरत्नसुवर्णानां गोशृङ्गसलिलैस्ततः। चन्दनेन समालभ्य वस्त्रैराच्छादयेच्छिलाः ॥ इति स्नापनप्रकारः अग्निपुराणे [अ० ९२] उक्तः। मन्त्राश्च "अग्निर्मूर्धा" इत्यादयः विश्वकर्मप्रकाशे [अ० ४। श्लो० ६४] उक्ताः। अन्यानि च स्नापनद्रव्याणि समन्त्राणि तत्रोक्तानि। "आऽयं गौः" इति शर्करया, "ओषधय" इति धान्योदकेन, "हविष्मतीः" इति शृङ्गोदकेन, "हिरण्यगर्भ" इति सुवर्णोदकेन इति त्रिविक्रमपद्धतौ। यद्यपि तत्र तीर्थोदकस्नाने "इमं मे गङ्गे" इति मन्त्रो विनियुक्तस्तथापि तस्य यजुःसंहितायामनभिधानात् अस्माभिस्तत्स्थाने "इमं मे वरुण" इत्युक्तः। सम्प्रदायपद्धतौ तस्यैवोक्तेः।

(२) आब्रह्मन्निति नन्दाया भद्रं कर्णेति वै तथा। जातवेदसेति तथा यमायत्वेति मन्त्रकैः ॥ पूर्णादर्वीति पूर्णायाः क्रमेणापि समाचरेत्। मूले, मध्येऽपि च तथा नाभिर्मेतिच मन्त्रकैः ॥ ब्रह्मजज्ञानमिति च विष्णोरराटमिति च। नमस्ते रुद्र इति च इमं देवेति संस्नपेत् ॥ शीर्षे चावाह

तत्र पूर्वं नन्दाशिलाया मूलेऽभिषिञ्चेत्—आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर ऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः। सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य व्वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो व्वर्षतु फलवत्यो न ऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ १ ॥ इति मन्त्रेण।

अथ भद्राशिलाया मूलेऽभिषिञ्चेत्—भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬंसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२॥ इति मन्त्रेण।

अथ जयाशिलाया मूलेऽभिषिञ्चेत्—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ३ ॥ इति ऋग्वेदोक्तेन मन्त्रेण।

अथ रिक्ताशिलाया मूलेऽभिषिञ्चेत्—

यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे देवस्त्वा सविता मध्वाऽनक्तु पृथिव्याः, सᳬंस्पृशस्पाहि। अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥ ४ ॥ इति मन्त्रेण। [३७।११]

अथ पूर्णाशिलाया मूलेऽभिषिञ्चेत्—

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत। व्वस्नेव व्विक्रीणावहाऽइषमूर्जᳬं शतक्रतो ॥५॥ इति मन्त्रेण। [३।४९]

एवं शिलानां मूलेषु अभिषेकं कृत्वा—नन्दाया मध्ये नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्। आनन्दनन्दावाण्डौ

कुर्यात् तद्विष्णोः परमं पदम्। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥ समवये देव्या धिया इति च त्र्यम्बकं यजामहे इति च। मूर्धानं दिवेत्यृचया सम्पूज्य च यथाविधि ॥ इति नन्दादिशिलानां मूलमध्यशिरःसु अभिषेकः, शिरसि आवाहनं चोक्तम्। "शीर्षे चावाहनं कुर्यात्" इत्यत्र चशब्दो भिन्नक्रमः। शीर्षे आवाहनं च कुर्यादिति तदर्थः। "ब्रह्मजज्ञानम्" इत्यादयः शिलास्थापनमन्त्रा ब्रह्मयागप्रयोगे द्रष्टव्याः।

मे भगः सौभाग्यं पसः ॥ (२०।६) इति मन्त्रेण, भद्रामध्ये "ब्रह्म जज्ञानम्" इति, जयामध्ये "विष्णो रराटम्" इति, रिक्तामध्ये "नमस्ते रुद्र" इति, पूर्णामध्ये "इमं देवा" इति चाभिषिच्य—"तद्विष्णोः परमं पदम्", "इदं विष्णुर्विच-क्रमे", "समख्ये देव्या धिया", "त्र्यम्बकं यजामहे", "मूर्धानं दिवो" इति मन्त्रैः क्रमेण तासां शिरसि अभिषिच्य—नन्दायाः शिरसि ब्रह्माणं, भद्रायाः शिरसि विष्णुम्, जयायाः शिरसि रुद्रम्, रिक्तायाः शिरसि ईश्वरम्, पूर्णायाः शिरसि सदाशिवं क्रमेणावाह्य स्थापयेत् । ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः पूजार्थं त्वामावाहयामि स्थापयामि ॐभू. विष्णवे नमः पू. ॐ भू. रुद्राय नमः पू. ॐभू. ईश्वराय नमः पू. ॐभू. सदाशिवाय नमः पू० इत्यावाह्य—नाममन्त्रैः पाद्यादिभिः सम्पूज्य 'ॐभूर्भुवः स्वः' इति शिलानामावाहनं नन्दात्वादिना कुर्यात् । तत्र प्रथमम् ओंभूर्भुवः स्वः नन्दे इहागच्छेह तिष्ठेति नन्दाया आवाहनम् १। ततः ओंभू० भद्रे इ० भद्रावाहनम् २। अथ ओंभू० जये इ० जयावाहनम् ३। अथ ओंभू० रिक्ते इ० रिक्तावाहनम् ४ । अथ ओंभू० पूर्णे इ० पूर्णावाहनम् ५। एवमावाह्य नाममन्त्रैः गन्धादिनाऽभ्यर्च्य अधिवासनमण्डपमानीय वेद्यां भद्रासने कुशतल्पास्तीर्णे निवेश्य पाद्यादि—नीराजनान्तं सम्पूज्य सुवर्णवस्त्रादिभिरलंकुर्यात् । ततः

ओंनन्दायै स्वाहा१ ओंभद्रायै स्वाहा२ ओंजयायै स्वाहा३ ओंरिक्तायै स्वाहा४ ओंपूर्णायै स्वाहा५ इति—

शिलानाममन्त्रैः घृतेन अष्टोत्तरशत—अष्टाविंशति—अष्टान्यतमसंख्यया हुत्वा ओं या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शंतमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ इत्यघोरमन्त्रेण शुक्लयजुःसंहितोक्तेन शान्त्यर्थं रुद्रायाष्टोत्तरशताज्याहुतिभिर्जुहुयात् । एवं होमं विधाय "मूर्धानं दिव" इति पूर्णाहुतिं कृत्वा आचार्यः प्रोक्षणीस्थान् संस्रवान् स्थण्डिलस्योत्तरतः स्थापितकलशे निक्षिप्य तेनोदकेन शिलानां मूलमध्यशिरःसु कुशर-

भिषिञ्चेत् ["प्रोक्ष्याः शान्तिजलैः शिलाः" इत्यग्निपुराणात्[६२]। तत आचार्यः वास्तुभूमिं गत्वा ईशानादिकोणेषु मध्ये च प्रादक्षिण्येन नन्दा–भद्रा–जया–रिक्ता–पूर्णा इत्येतासां नामभिश्चिह्नानि कृत्वा भूमिं प्रार्थयेत् ।

विश्वे त्वं कमले भूते पृथिवी लोकधारिणी ।
यज्ञार्थे शोभिता देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥
तस्मात्त्वां खानये देवि सानुकूला मखे भव ।
सर्वदेवमयी भूमिः सर्वदेवरसान्विता ॥

इति भूमिं सम्प्रार्थ्य दिक्साधनं कृत्वा वास्तुभूमेः ईशानादिकोणेषु(१)मध्ये च सुवर्णकुद्दालादिना (२)नाभिमात्रं चतुर्हस्तं खनि-

(१) इति वास्तुविधानं तु कृत्वा ताः स्नानमण्डपात्। समानीय शिलास्तत्र सूत्रधारो गुणान्वितः ॥ तत्र दिक्साधनं कुर्यात् गृहमध्ये सुसाधिते। ईशानादिक्रमेणैव स्वर्णकुद्दालकेन तु ॥ खनित्वा कोणभागेषु मध्ये चैव विशेषतः। नाभिमात्रे तथा गर्ते शिलानां स्थापनं शुभम् ॥ (अ० ४। श्लो० ४२–४४) गृहकोणेषु सर्वेषु पूजां कृत्वा विधानतः। ईशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत् ॥ नन्दा–भद्रा–जया–रिक्ता–पूर्णानाम्नीर्यथाक्रमम्। नन्दायां पद्ममालिख्य भद्रा सिंहासनं तथा ॥ जयायां तोरणच्छत्रे रिक्तायां कूर्ममेव च। पूर्णायां च चतुर्बाहुं विष्णुं संलेखयेद् बुधः ॥ भूर्भुवः स्वरिति तथा तासामावाहनं स्मृतम्। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईशानश्च सदाशिवः ॥ भूतान्येतानि पञ्चैव पञ्चस्वावाहयेत्पुनः। स्नपनं च ततः कुर्यात् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ इति विश्वकर्मप्रकाशे [श्लो० ५७–६२] अभिहितम्। अनेन हि खननेऽपि ईशानादिक्रम एव लभ्यते। "खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरः" इत्यादि तु संपूर्णवास्तुभूमिखनने आरम्भस्य आग्नेये कर्तव्यताबोधकम्। शिलान्यासस्य आग्नेयोपक्रमपक्षे तत्र खननोपक्रमकर्तव्यताबोधकं वा।

(२) "नाभिमात्रे तथा गर्ते" इति पूर्वोक्तवचनात्। "चतुर्हस्तप्रमाणं तु कृत्वा गर्तं समन्ततः" इति निर्णयसिन्धौ शान्तिरत्नोद्धृतं वचनं तु "चतुर्हस्तं द्विहस्तं वा" इति पूर्वोक्त (१५१) लैङ्गवचनसिद्धचतुर्हस्ताधःपरिमाणबोधकमेव, एकवाक्यत्वात्। भित्तिरचनार्थं वास्तुभूमेः समन्ततः खातस्य कर्तव्यत्वेन ज्ञातपरिमाणस्य वास्तुभूमिपरिमाणाधीनत्वेन तत्र चतुर्हस्तत्वस्य नियमयितुमशक्यत्वात्। "अर्थात् परिमाणम्" इति कात्यायनसूत्रात् प्रयोजनानुरूपपरिमाणस्यैव न्याय्यत्वेन रत्निदीर्घाणां तदर्ध-

मात्रं वा गर्त्तं कृत्वा गोमयेनोपलिप्य तत्र सर्पाकारं वास्तुपुरुषं पिष्टातकैरक्षतैर्वा लिखित्वा—

आवाहयाम्यहं देवं भूमिष्ठं चाप्यधोमुखम् ।

वास्तुनाथं जगत्प्राणं पूर्वस्यां प्रमथाश्रितम् ॥ इत्यावाह्य "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य—

ओं वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्त्स्वावेशोऽअनमीवो भवा नः । यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शञ्चतुष्पदे ॥ इति मन्त्रेण सम्पूज्य प्रार्थयेत्—

विस्ताराणां शिलानां न्यासार्थं च तावत्परिमाणस्यानुपयोगात् । तस्मात् अधःखननपरिमाणमेव चतुर्हस्तत्वम् । नाभिमात्रखननं तु लोकोक्तद्विहस्तखननैकवाक्यतापन्नम् । तदुच्छ्रायस्य द्विहस्तोच्छ्रायतुल्यत्वात् । रत्निमात्रं तु भूपरीक्षार्थं रत्निमात्रखननस्य दृष्टत्वादभिहितम् ।

त्रिविक्रमेण तु "किञ्चित् खातं कृत्वा" इत्युक्तम् । तस्यायं भावः—सूत्रपातस्यानन्तरं चतुर्हस्तं खननस्य पादोनखातपूरणस्य चानुष्ठितत्वेन इदानीमधिकखननस्यानुपयोगात् किञ्चिदेव शिलान्यासार्थं खननस्योपयोगात् तावन्मात्रमेव खननं विधेयम् इति । एवं च पूर्वमकृते एव खनने अस्मिन्नवसरे एतावत्खननम् ।

कन्यासिंहे तुलायां भुजगपतिमुखं शम्भुकोणेऽग्निखातं
वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनुमकरे, ईशखातं वदन्ति ।
कुम्भे मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं, खात वायव्यकोणे
अग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे, रक्षखातम् ॥

अस्यार्थः । सिंहकन्यातुलासु वास्तुसर्पस्य मुखमीशानकोणे भवति । अतः खातं खातस्योपक्रमः सिंहकन्यातुलास्थे सूर्ये अग्निकोणे कार्यः । वृश्चिकादिराशित्रयस्थे सूर्ये सर्पास्यं वायव्ये भवति, अतस्तदा ईशाने खातोपक्रमः । कुम्भादिराशित्रयगे सूर्ये नैर्ऋते सर्पमुखम्, अतो वायुकोणे तदा खातोपक्रमः । वृषादिराशित्रयगे सूर्ये अग्निकोणे सर्पमुखम्, अतो नैर्ऋते तदा खातोपक्रम इति । इदमपि [नि. सि.] शिल्पशास्त्रवचनं भित्त्यर्थं समन्ततः कर्तव्यस्य, भूमिदोषनिवारणार्थं समस्तवास्तुभूमौ कर्तव्यस्य वा खातस्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम् । न तु शिलान्यासाय कर्तव्यखातस्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम् । तत्र सर्वदा दिग्विशेषस्य व्यवस्थितत्वेन कालविशेषे दिगन्तरस्य नियमयितुमशक्यत्वात् । इत्थमेव सामञ्जस्ये बाध्यबाधकभावकल्पनाऽनवकाशात् इति दिक् ।

वास्तोष्पते नमस्तेऽस्तु भूमिशय्यारत प्रभो ।
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा ॥ इति ।

(१)ततः सुलग्ने समागते लग्नदानं विधाय स्वस्तिवाचनं पठित्वा गीतवादित्ररवे जायमाने देवपितृब्राह्मणान्नमस्कृत्य शिलास्थापनं कुर्यात् । तदुक्तं विश्वकर्मप्रकाशे—(अ. ५ । १०५ । १०६)

मृदादिना दृढीकृत्य प्रादक्षिण्येन सर्वतः ।
ईशानादिक्रमेणैव स्थाप्याः सर्वार्थसिद्धये ॥
अन्येषां चैव वर्णानामाग्नेयादिक्रमेण च ।
सर्वेषामपि वर्णानां केचिदिच्छन्ति सूरयः ॥ इति ।

तत्र प्रथमम् ईशाने आधारशिलां न्यस्य तस्या मध्यगर्तेऽक्षतो-

---

(१) ततः सुलग्ने संप्राप्ते पञ्चवाद्यानि वादयेत् । नन्दां प्रगृह्य च शिलां तत्राधारशिलां न्यसेत् ॥८२॥ तत्रोपरि न्यसेत्पद्मकलशं मन्त्रमन्त्रितम् । सर्वौषधिजलोपेतं पारदाज्यघृतप्लुतम् ॥८३॥ विहितं रत्नगर्भं च तेजोराशिभिरन्वितम् । सदाशिवस्वरूपां च ध्यात्वा पञ्चोपचारकैः ॥८४॥ संपूज्य दीपं विन्यस्य वामभागेऽथ गर्तके । तत्रोपरि न्यसेन्नन्दां संपूज्य च यथाविधि ॥८५॥ नाभिर्मेति च मन्त्रेण स्थिरो भवेति वै तथा । प्रार्थनं च तथा कुर्यात् आगमोक्तेन मन्त्रवित् ॥८६॥ नन्दे त्वं० ॥८७॥ ॥८८॥ महापद्मं न्यसेत्तत्र [आधारशिलायां] पूजयेद्रत्नगर्भितम् । तत्र भद्रां च संस्थाप्य पूजयेन्नाममन्त्रकैः ॥८९॥ भद्रं कर्णेति सूचया स्थापयेद्वारुणैस्तथा । भद्रे त्वं० ॥९०॥९१॥ आधारोपरि विन्यस्य कलशं शङ्खसंज्ञकम् । कोणे संपूज्य विधिवज्जयां संस्थापयेत्ततः ॥९२॥ जातवेदसेति मन्त्रेण पूर्वोक्तेन च मन्त्रतः । गर्गगोत्रसमुद्भूतां० ॥९३॥९४॥ आधारोपरि विन्यस्य विजयं कलशं ततः । रिक्तां संस्थापयेत्तत्र मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥९५॥ त्र्यम्बकंयजामहेति तथा वरुणमन्त्रकैः । पूजयेत्प्रार्थयेत्तद्वद्रिक्तां रिक्तार्तिहारिणीम् ॥९६॥ रिक्ते त्वं ० ॥९७॥ आधारे विन्यसेन्मध्ये सर्वतोभद्रसंज्ञकम् । पूर्णं रत्नान्वितं पुष्टं सर्वमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥९८॥ तं च संपूज्य विधिवद् ध्यात्वा तत्र सदाशिवम् ॥ तत्रोपरि न्यसेत् पूर्णां पूर्णानन्दप्रदायिनीम् ॥९९॥ पूर्णे त्वं० ॥१००॥१०१॥ पूर्णादर्वीति मन्त्रेण इमं देवेति वै तथा । मूर्धानं दिवेति तथा शान्तिमन्त्रैस्तथैव च ॥१०२॥ सहस्रशीर्षेति षोडशभिरग्निमीळेति वै तथा । इषेत्वोर्जेत्वग्न आयाहीति तथा पुनः पुनः ॥१०३॥ शन्नोदेवीति मन्त्रेण स्थापयेत् प्रयतः शुचिः ।
इति शिलानां स्थापनप्रकार उपदिष्टो वि. क. प्र. [अ० ५] ।

परि मध्वाज्यपारदपञ्चरत्नगर्भितं पिहितमुखं पद्मकलशं गन्धाक्षत-पुष्पादिभिरलंकृतं निधाय ओं पद्माय नमः इति नाममन्त्रेण आवाहनमतिष्ठापनपूर्वकं सम्पूज्य आधारशिलां सदाशिवरूपिणीं तेजोमयीं ध्यात्वा—"एतन्ते" इत्यादि पठित्वा ओंभूर्भुवःस्वः आधारशिले सुप्रतिष्ठिता भवेति प्रतिष्ठापयेत्। ततस्तां संपूज्य मृदा दृढीकृत्य तस्या वामे दीपं च विन्यस्येत्। ततः पद्मकलशोपरि प्राक्शिरसं नन्दाम्—[११।४४] ओं स्थिरो भव व्वीड्वङ्ग ऽआशुर्भव व्वाज्यर्वन्। पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः॥[२०।९]नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्। आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः॥ इति मन्त्राभ्यां संस्थाप्य गन्धादिभिः सम्पूजयेत्। ततः—

नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम्।
वेश्मनि त्विह सन्तिष्ठ यावच्चन्द्रार्कतारकाः॥
आयुः कामं श्रियं देहि देववासिनि नन्दिनि।
अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या सदा वेश्मनि यत्नतः॥

इति प्रार्थयेत्। इति नन्दास्थापनम्।

तत आग्नेयकोणे आधारशिलां विन्यस्य तस्या मध्यगर्तेऽक्षतोपरि मध्वाज्यपारदपञ्चरत्नगर्भितं पिहितमुखं महापद्मकलशं निधाय ओं महापद्माय नमः इति गन्धाक्षतपुष्पैः आवाहनादिपूर्वकं सम्पूज्य आधारशिलां सदाशिवरूपिणीं ध्यात्वा "एतन्ते" इत्यादि पठित्वा ओंभूर्भुवः स्वः आधारशिले सुप्रतिष्ठिता भवेति प्रतिष्ठापयेत्। ततस्तां संपूज्य तस्या वामे दीपं संस्थाप्य मृदा दृढीकृत्य प्राक्शिरसं भद्राशिलाम् "ओं भद्रं कर्णेभिः" इति मन्त्रेण, "व्वरुणस्योत्तम्भनमसि" इत्यादिभिः एककण्डिकात्मकैः पञ्चभिर्वारुणैर्यजुभिश्च स्थापयित्वा गन्धपुष्पाक्षतैः संपूज्य—

भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि।
आयुर्दा कामदा देवि सुखदा च सदा भव॥

त्वामत्र स्थापयाम्यद्य गृहेऽस्मिन् भद्रदायिनि। इति प्रार्थयेत्।

ततो नैर्ऋतकोणे आधारशिलां न्यस्य तस्या मध्यगर्तेऽक्षतोपरि मध्वाज्यपारदयुक्तं पञ्चरत्नगर्भितं पिहितमुखं शङ्खनामककुम्भं निधाय गन्धाक्षतपुष्पैः संपूज्य आधारशिलां सदाशिवरूपिणीं ध्यात्वा "एतंते" इत्यादि पठित्वा ओंभूर्भुवः स्वः आधारशिले सुप्रतिष्ठिता भवेति प्रतिष्ठाप्य सम्पूज्य वामे दीपं संस्थाप्य मृदा दृढीकृत्य प्राक्शिरसं जयाशिलां "जातवेदसे" इति मन्त्रेण "स्वरुणस्योत्तम्भनम्" इति च संस्थाप्य गन्धाक्षतपुष्पैः संपूज्य—

गर्गगोत्रसमुद्भूतां त्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम् ।
गृहेऽस्मिन् स्थापयाम्यद्य जयां चारुविलोचनाम् ॥
नित्यं जयाय भूत्यै च स्वामिनो भव भार्गवि । इति प्रार्थयेत् ।

ततो वायव्यकोणे आधारशिलां न्यस्य तस्या मध्यगर्तेऽक्षतोपरि मध्वाज्यपारदपञ्चरत्नगर्भितं पिहितमुखं विजयनामककुम्भं निधाय गन्धाक्षतपुष्पैः संपूज्य आधारशिलां सदाशिवरूपिणीं ध्यात्वा "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य संपूज्य वामे दीपं संस्थाप्य मृदा दृढीकृत्य प्राक्शिरसं रिक्ताशिलां "त्र्यम्बकं यजामहे" इति मन्त्रेण "स्वरुणस्योत्तम्भनमसि" इत्यनेन च संस्थाप्य गन्धपुष्पाक्षतैः पूजयित्वा—

रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्ने सिद्धिभुक्तिप्रदे शुभे ।
सर्वदा सर्वदोषघ्नि तिष्ठास्मिंस्तत्र नन्दिनि ॥ इति प्रार्थयेत् ।

ततो वास्तुभूमेर्मध्ये आधारशिलां न्यस्य तस्या मध्यगर्तेऽक्षतोपरि सर्वतोभद्रनामकं कुम्भं मध्वाज्यपारदपञ्चरत्नगर्भितं पिहितमुखं निधाय गन्धाक्षतपुष्पैः संपूज्य आधारशिलां सदाशिवरूपिणीं ध्यात्वा "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य संपूज्य वामे दीपं संस्थाप्य मृदा दृढीकृत्य प्राक्शिरसं पूर्णाशिलां "पूर्णा दर्वि" इति (१) मन्त्रेण संस्थाप्य गन्धाक्षतपुष्पैः पूजयित्वा—

(१) सति संभवे "इमं देवा" "मूर्धानं दिवो" "द्यौः शान्तिः" इत्येतैः, "सहस्रशीर्षा" इत्यादिषोडशभिः, "अग्निमीळे" "इषेत्वोर्जेत्वा" "अग्न आयाहि" "शन्नोदेवीः" इत्येतैश्च स्थापयेत् । वि. क. प्र. एषां सर्वेषां पूर्णास्थापने करणत्वेनोपदेशात् ।

पूर्णे त्वं सर्वदा पूर्णान् लोकानां कुरु काश्यपि ।
आयुर्दा कामदा देवि धनदा सुतदा तथा ॥
गृहाधारा वास्तुमयी वास्तुदीपेन संयुता ।
त्वामृते नास्ति जगतामाधारश्च जगत्प्रिये ॥

इति प्रार्थयेत् । ततः पञ्चशिलासु अष्टधातूँश्च निक्षिप्य क्रमेण ओं नन्दायै नमः १ ओं भद्रायै नमः २ ओं जयायै नमः ३ ओं रिक्तायै नमः ४ ओं पूर्णायै नमः ५ इति सदीपं पायसबलिं दध्यक्षतबलिं वा दत्त्वा हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य शान्तिकाध्यायं पठित्वा शिख्यादिदेवानां वास्तुपुरुषस्य क्षेत्रपालस्य च उत्तराङ्गत्वेन पूर्ववत्पूजनं विदध्यात् । ततः सपत्नीकः सपुत्रपौत्रो यजमानः (१) प्राङ्मुख उदङ्मुखाय आचार्य्याय गां, ब्रह्मणे ऋत्विग्भ्यः सप्तशत्यादिपाठकेभ्यश्च [मण्डपकरणे जापकेभ्यो द्वारपालेभ्यश्च] यथांशेन सुवर्णादिदक्षिणां, सर्वेभ्यो भूयसीं च—अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकराशिः सपत्नीकः सपुत्रपौत्रोऽहं कृतैतत्सवास्तुशान्तिशिलान्यासकर्मणः साङ्गफलप्राप्तये साद्गुण्यार्थं च इमां गां गोनिष्क्रयद्रव्यं वा आचार्याय, सुवर्णरजतान्यतरदक्षिणां ब्रह्मादिभ्यः, न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थम् इमां भूयसीं दक्षिणां नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नटनर्त्तकगायकेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च विभज्य दास्ये इति संकल्प्य दद्यात् । ततो यथासंख्याकान् ब्राह्मणानन्यांश्च भोजयिष्ये

(१) ततस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा आचार्याय निवेदयेत् । दक्षिणां ब्रह्मणे दद्याद्यथावित्तानुसारतः ॥ उदङ्मुखाय च ततः नमस्येति पुनः पुनः । गां सवत्सां स्वर्णयुतां तथा वासोयुगान्विताम् ॥ यज्ञान्ते आप्लुतान्स्नानाचार्याय निवेदयेत् । ददद्भ्यं च ततस्तोष्य स्थपतीन्वैष्णवानपि ॥ दक्षिणां च ततो दद्याद् घृते छायां विलोकयेत् । रक्षाबन्धं मन्त्रपाठं ज्यायुषं च समाचरेत् ॥ ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याच्छिष्टेभ्यश्च स्वशक्तितः ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्च दद्याद्वित्तानुसारतः । शिल्पिवर्गास्तु संतोष्य दानमानैस्तथैव च ॥ बन्धवांश्च संपूज्य यथावित्तानुसारतः । संप्राप्नोति नरो लक्ष्मीं पुत्रपौत्रधनान्विताम् ॥ यावदस्मिन्वसेल्लोके सर्वसंपत्समन्वितः । इति यज्ञान्ते गोदानादि उपदिष्टम [शि. क. प्र. ५ अध्याये] ।

एकाशीतिपदं वास्तुमण्डलम् ।

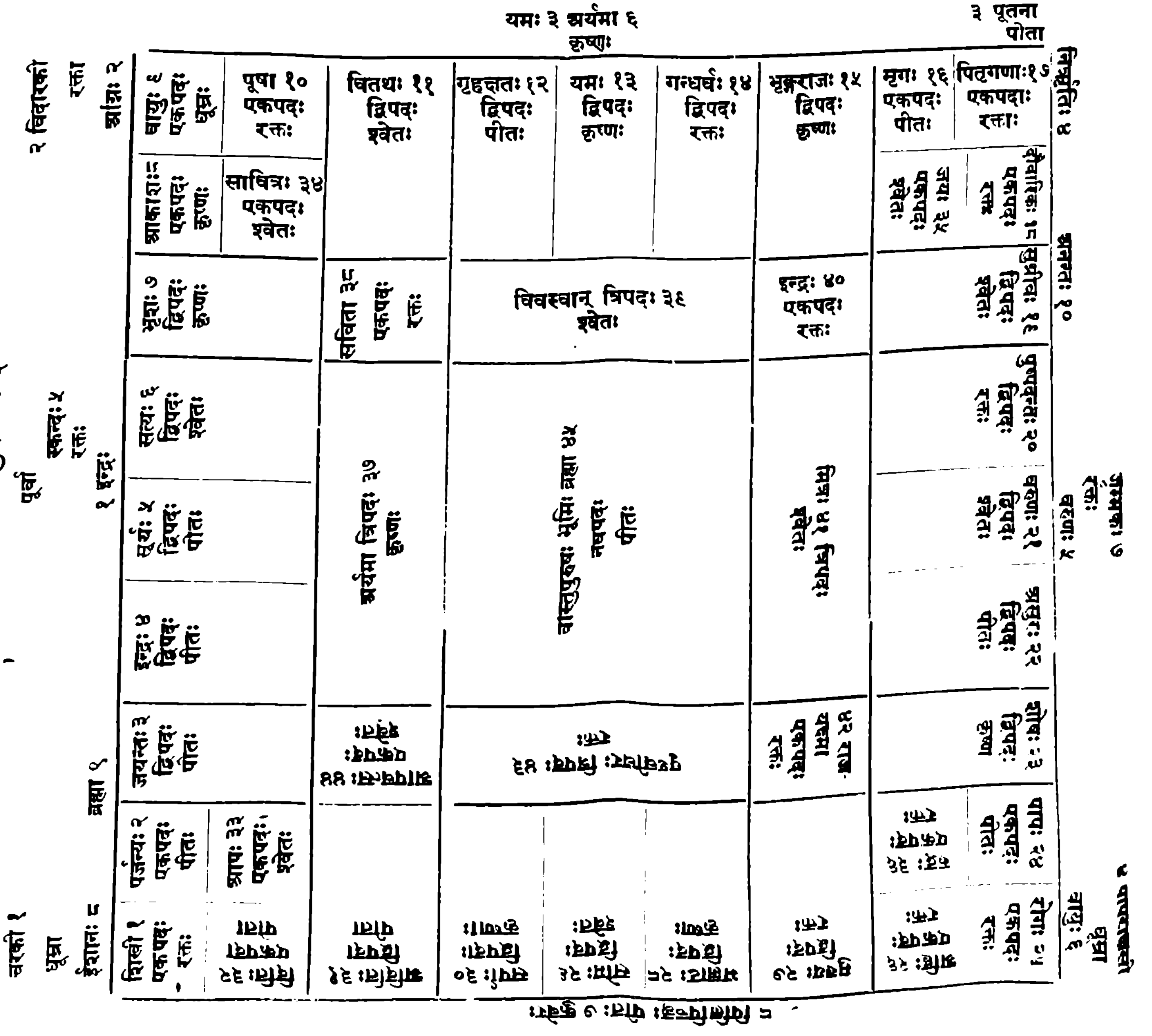

इति संकल्पयेत् । अधुना वा सपरिवारं यजमानम् आचार्य्यादयो ब्राह्मणाः शान्तिकलशोदकेन वैदिकैः पौराणैश्च मन्त्रैरभिषिञ्चेयुः । ततो यजमानः सहस्रधाराभिः सचैलं स्नात्वा शुक्लाम्बरधरो भूत्वा आसने उपविशेत् । आचार्यादयश्च तिलकाक्षतारोपणं रक्षाबन्धनं त्र्यायुषलापनं मन्त्रपाठादिकं कुर्य्युः । यजमानश्च घृते छायादर्शनं कृत्वा ब्राह्मणाय तद् दत्त्वा ब्राह्मणान्प्रणम्य ।

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामिकाम् ।
इष्टकामसमृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ इति ।

देवान्विसृज्य कायेन वाचेति कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा यस्य स्मृत्येत्यादि पठेत् ॥

इति सवास्तुशान्तिशिलान्यासप्रयोगः ॥

अथ गृहप्रवेशप्रयोगे विशेषः ।

तत्र शिख्यादिपिलिपिच्छान्तेभ्यो बलिदानान्तं कर्म पूर्ववत्कृत्वा गृहात् बहिः पूर्वादिदिक्षु (शिलान्यासे वास्तुभूमेः पूर्वादिदिक्षु) दशदिक्पालानां नाममन्त्रैर्वैदिकमन्त्रैश्चावाहनादिपूजनं *विधाय दधिमधुघृतमिश्रितभक्तं, दध्यक्षतं वा सदीपं बलिं संपाद्य दद्यात् पताकाश्चारोपयेत् ।

---

* वितानैस्तोरणैः पुष्पैः पताकाभिर्विशेषतः । अलंकृत्य नवं गेहं देहलीं पूजयेत्ततः ॥ दिक्पालांश्च तथा क्षेत्रपालं ग्रामाधिदेवतान् । प्रणम्य विधिवत्पूज्य द्वारमार्गे विशेद् गृहम् ॥ पूजयेद्गणनाथं च मातृकाश्च विशेषतः । वसोर्धारां पातयित्वा ग्रहांश्चैव तु पूजयेत् ॥ वास्तुनाथं च संपूज्य ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः । गोदानं भूमिदानं च कारयेच्च [कुर्यात्] यथाविधि ॥ इति पताकारोपणादिप्रकारो गृहप्रवेशाङ्गत्वेन [वि० क० प्र०] दशमे अध्याये उपदिष्टः । शिलान्यासे तु अस्मिन्नवसरे पताकारोपणादिकं वास्तुभूमौ न विहितम् । मण्डपपूजावसरे तत्रैव तद् यदृच्छया कर्तव्यम् ।

"अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् । गृहं न प्रविशेदेव विपदामाकरं हि तत्" ॥ इति नारदसंहितायाम् एकोनत्रिंशाध्यायस्यान्तेऽभिधानात् गृहात् पूर्वादिषु दिक्पालेभ्यो बलिदानं गृहे ब्राह्मणानां भोजनं च कृत्वा गृहं पूर्वोक्तरीत्या प्रविशेत् ।

तत्र पूर्वं पूर्वे इन्द्रं प्रार्थयेत्—

इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः।
शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमोनमः॥

ओम् इन्द्राय—साङ्गाय सायुधाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः एतं सदीपं बलिं समर्पयामि।

भो२ इन्द्र दिशं रक्ष२ बलिं भक्ष२ यजमानस्यायुष्कर्त्ता—
पुष्टिकर्त्ता तुष्टिकर्त्ता क्षेमकर्त्ता भव।

बलिना सह वज्राङ्कितां पीतपताकां च गृहाण इति दत्त्वा आचामेत् १। तत आग्नेय्यामग्निं प्रार्थयेत्।

आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः।
धूम्रकेतुर्ध्वजो यस्य तस्मै नित्यं नमोनमः।

अग्नये साङ्गाय०। भो२ अग्ने दिशं रक्ष२ बलिं भक्ष२ यजमानस्यायुष्कर्त्ता० शक्त्यङ्कितां रक्तपताकाञ्च गृहाणेति दत्त्वा आचामेत् २ ततो दक्षिणे—महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम्।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥

यमाय साङ्गाय०। भो२ यम दिशं रक्ष२ बलिं भक्ष२ यजमानस्यायुष्कर्त्ता० दण्डाङ्कितां कृष्णवर्णपताकां च गृहाणेति दत्त्वा आचामेत् ३। ततः नैर्ऋते—

निर्ऋतिं खड्गहस्तं च सर्वलोकैकभावनम्।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥

निर्ऋतये साङ्गाय०। भो२ निर्ऋते दिशं रक्ष२ बलिं भक्ष२ यजमानस्यायुष्कर्त्ता० खड्गाङ्कितां नीलवर्णपताकां च गृहाणेति दत्त्वाऽऽचामेत् ४। ततः पश्चिमे—

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां पतिमीश्वरम्।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥

वरुणाय साङ्गाय०। भो२ वरुण दिशं रक्ष२ बलिं भक्ष२ यजमानस्यायुष्कर्त्ता० पाशाङ्कितां श्वेतपताकाञ्च गृहाणेति दत्त्वाऽऽचामेत् ५। ततो वायव्ये—

वायुमाकाशगं चैव पवनं मृगवाहनम् ।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

वायवे साङ्गाय० । भो भो वायो दिशं रक्ष२ बलिं भक्ष२ यजमानस्यायुष्कर्ता० धूम्रामङ्कुशाङ्कितां पताकां च गृहाणेति दत्त्वाऽऽचामेत् ६ । तत उत्तरदिशि—

सर्वनक्षत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः ।
तस्मै सोमाय देवाय कुबेराय नमोनमः ॥

कुबेराय साङ्गाय० । भो भोः कुबेर दिशं रक्ष२ बलिं भक्ष२ यजमानस्यायुष्कर्ता० गदाङ्कितां हरितपताकां च गृहाणेति दत्त्वाऽऽचामेत् ७ । तत ईशानदिशि—

वृषभस्कन्धमारूढं शूलहस्तं पिनाकिनम् ।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

ईशानाय साङ्गाय० । भो भो ईशान दिशं रक्ष२ बलिं भक्ष२ यजमानस्यायुष्कर्ता० त्रिशूलाङ्कितां श्वेतपताकां च गृहाणेति दत्त्वाऽऽचामेत् ८ । ततः पूर्वेशानयोर्मध्ये—

पद्मपाणिश्चतुर्मूर्तिर्वेदावासः पितामहः ।
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥

ब्रह्मणे साङ्गाय० । भो भो ब्रह्मन् दिशं रक्ष२ बलिं भक्ष २ यजमानस्यायुष्कर्ता० कमण्डल्वङ्कितां रक्तपताकां च गृहाणेति दत्त्वा आचामेत् ९ ।

नैर्ऋतपश्चिमयोर्मध्ये—

अनन्तरूपिणा येन विष्णुना सचराचरम् ।
पुष्पवद्धारितं नित्यं तस्मै तुभ्यं नमोनमः ॥

अनन्ताय साङ्गाय० । भो भो अनन्त दिशं रक्ष२ बलिं भक्ष२ यजमानस्यायुष्कर्ता० चक्राङ्कितां मेघवर्णपताकां च गृहाणेति दत्त्वाऽऽचामेत् १० ।

एवं दशदिक्पालेभ्यो गृहप्रवेशाङ्गत्वेन बलीन् पताकाश्च दत्त्वा पूर्वोक्तरीत्या क्षेत्रपालाय माषभक्तबलिं दत्त्वा—

नैर्ऋत्यां दिशि भूतेभ्यः संध्याकाले विशेषतः।
बलिं दद्याद्विधानेन मन्त्रविन्नक्तभुग्यमी ॥ [अ० ५]

इत्यनेन सायंकाले विहितं सर्वभूतेभ्यो बलिदानम् अस्मिन्नेव समयेऽपकृष्य गृहान्नैर्ऋते [शिलान्यासे वास्तुभूमेर्नैर्ऋते] कुर्यात्। तद्यथा—उत्तराभिमुखो भूत्वा पाणिपुटकद्वयेन बलिशेषमादाय—

देव्यो देवा मुनीन्द्राः सभुवनपतयो दानवाः सर्वसिद्धा
यक्षा रक्षांसि नागा गरुडमुखखगा गुह्यका देवदेवाः।
योगिन्यो देववेश्या हरिदधिपतयो मातरो विघ्ननाथाः
प्रेता भूताः पिशाचाः पितृवननगराद्याधिपाः क्षेत्रपालाः ॥ १ ॥
गन्धर्वाः किन्नराः सर्वे गुह्यकाः पितरो ग्रहाः।
कूष्माण्डाः पूतना रोगास्तथा वेतालकाः शिवाः ॥ २ ॥
असृक्प्लुताश्च पिशुना मांसभक्षान्यनेकशः।
लम्बक्रोडास्तथा ह्रस्वा दीर्घाः शुक्लास्तथैव च ॥ ३ ॥
खञ्जाः स्थूलास्तथैकाक्षा नानापक्षिमुखास्तथा।
व्यालास्या उष्ट्रवक्त्राश्च अश्ववक्त्राः क्रोडवर्जिताः ॥ ४ ॥
धमनाभास्तमालाभा द्विपाभा मेघसन्निभाः।
गवलाभाः क्षितिनिभा अशनिस्वनसन्निभाः ॥ ५ ॥
द्रुतगाश्च मनोगाश्च वायुवेगसमाश्च ये।
बहुवक्त्रा बहुशिरा बहुबाहुसमन्विताः ॥ ६ ॥
बहुपादा बहुदृशः सर्पाभरणभूषिताः।
विकटामुकुटाः केचित् तथा वै रत्नधारिणः ॥ ७ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशा विद्युत्सदृशवर्चसः।
कपिला हुतभुग्वर्णाः प्रमथा बहुरूपिणः ॥ ८ ॥
गृह्णन्तु च बलिं सर्वे तृप्ता यान्तु बलिर्नमः।
इति विश्वकर्मप्रकाशे [अ० ५। श्लो० ५—१३]।

उक्तैः मन्त्रैः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो बलिं दत्त्वा हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचामेत् । ततः यजमानाभिषेकं गृहस्य त्रिसूत्र्या वेष्टनं कर्करीभ्यां जलदुग्धोभयधाराकरणं वास्तुप्रतिमासहितमृत्पेटिकानिखननं पूर्णाहुतिहोमं शिख्यादीनामुत्तराङ्गत्वेन पूजनम् आचार्याय ब्रह्मादिभ्यः सुवर्णरजतान्यतरदक्षिणादानं सर्वेभ्यो भूयसीदानं च पूर्ववत्कुर्यात् ।

(१) ततो नवगृहे ब्राह्मणान् आवाहितदेवताप्रीतये भोजयित्वा अग्निं देवांश्च विसृज्य द्वितीयदिने तद्दिने एव वा दैवज्ञबोधिते सुलग्ने शुक्लाम्बरधरः सपत्नीको यजमानः स्वगृहदेवान्भूमिदेवाँश्च प्रणम्य सदुग्धजलां कर्करीं पत्नीहस्ते दत्त्वा, पीवरां वर्तिकां प्रज्वलय्य दासीहस्ते अग्रे दत्त्वा, स्त्रिया अञ्चलग्रन्थिं बध्वा, मार्गे जलं सिञ्चन्त्या तया पुस्तकपुत्रादिभिश्च सहितो मङ्गलकलशान्वितः—उपरि वितानैः, समन्तात् आम्रपल्लवतोरणैः फलपुष्पकदलीस्तम्भैश्च, पूर्वादिदिक्षु मध्ये च पताकाभिरलंकृतं दध्यक्षतविभूषितं दत्तबलिं भोजितब्राह्मणं धूपधूपितं गृहम्—एकवारं प्रदक्षिणीकृत्य मङ्गलगीतवादित्रतूर्यघोषेण प्रसन्नमना देहलीसमीपमागत्य देवताः प्रणम्य देहलीं द्वारमातृश्च पूजयित्वा लग्नदानं कुर्यात् । तद्यथा—अद्येहेत्यादिसंकीर्त्य अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं गृहप्रवेशलग्नाद्यत्रकुत्र स्थितादित्यादिनवग्रहाणां दुष्टानां दुष्टफलोपशान्त्यर्थं शुभानां शुभफलाधिक्यप्राप्तये इमां दक्षिणां दैवज्ञाय संप्रददे इति दत्त्वा स्वस्तिवाचनं [शान्तिपाठं] कुर्वन् कारयंश्च गृहाभ्यन्तरं प्रविश्य गणेशं संपूज्य पुण्याहं वाचयित्वा ग्रहान् वास्तुनाथं च कलशे संपूज्य गोदानं[सति संभवे भूमिदानं च] कृत्वा गणपतिसहितजीवमातृपूजनं विधाय दक्षिणां दत्त्वा महानीराजनं तिलकं च कारयित्वा सुहृद्बन्धुयुतो भुञ्जीत ।

---

(१)कृत्वाऽग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदल-पुष्प-फलोपशोभम् ।
कृत्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहं विशेत्तु ॥
गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात् प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः ।
संतर्पयेद् द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत् सधूपम् ॥

इति मात्स्ये(२५७) गृहप्रवेशप्रकार उपदिष्टः ।

ततः संध्यासमये अश्वत्थपत्रसहितेन सूत्रेण प्रादक्षिण्येन गृहं प्रवेष्ट्य शेषकलशोदकेन गृहं स्नापयित्वा गृहोपरि पञ्चवर्णपताकारोपणं कृत्वा महाध्वजं नूपुरसहितं एकादशहस्तप्रमाणं गृहदेहलीमध्यभूमौ आरोप्य सति सम्भवे पुनरपि क्षेत्रपालाय वलिं दद्यात्।

भूतवलिं च सति संभवे पुनः—"भोभो भूत—प्रेत—डाकिनी—शाकिनी—पिशाच—वेतालादिपरिग्रहाः एतं कृसरान्नवलिं भक्षत यजमानं रक्षत यजमानस्य आयुष्कर्त्तारः क्षेमकर्त्तारः शान्तिकर्त्तारः पुष्टिकर्त्तारः तुष्टिकर्त्तारश्च भवत" इति मन्त्रेण दक्षिणस्यां दिशि दद्यात्। ततो गृहे यथासुखं पञ्चरात्रपर्यन्तं शयनाशनादि अविच्छेदेन कर्तव्यम् इति शिवम्॥

इति गृहप्रवेशप्रयोगसम्बन्धी विशेषः।

अथ शिलान्यासादिकर्म्मणि सामग्रीसूचिका।

शिख्यादिदेवानां पञ्चचत्वारिंशत् ४५, चरक्यादीनामष्ट८, आदित्यादिग्रहाणां नव९, वरुणस्य१, एवं ६३ देवानां प्रतिमाः सौवर्ण्यः, पूगीफलानि वा। वास्तुपुरुषप्रतिमा सौवर्णी सर्पाकारा१। सुवर्णशलाका वास्तुमण्डललेखनार्था१। ताम्रमया निधिकलशाः५। नन्दादिशिलासु निक्षेपणार्थं सुवर्णाद्यष्टधातवः। कलशमुखपिधानाय ताम्रपात्राणि५। आज्यस्थाली१। चारुस्थाली१। यवस्थाली१। तिलस्थाली१। शिलानां वामभागे स्थापनार्थं ताम्रदीपाः५। नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा इति पञ्च शिलाः५। आधारभूता उपशिलाः ५। निधिकलशेषु प्रक्षेपार्थं मध्याज्यपारदपञ्चरत्नानि। स्रुक्स्रुवौ। प्रणीता। प्रोक्षणी। पीता, रक्ता, कृष्णा, नीला, श्वेता, धूम्रा, हरिता, श्वेता, रक्ता, मेघवर्णा चेति दिक्पालपताका दश १०। वास्तुपताका पञ्चवर्णा १। महाध्वजः पञ्चवर्णः सकिङ्किणीकः१। वेदिद्वयाय वितानद्वयम्२। नवग्रहवेदी वितस्त्युच्छ्राया हस्तायामविस्तारा च १। वास्तुमण्डलवेदी चतुरङ्गुलोच्छ्राया हस्तविस्तृतायता १। बिल्वकाष्ठशङ्कवः ४। सरलसमिधः २। सर्वौषध्यः।

सप्तमृत्तिकाः । सप्तधान्यानि । पञ्चपल्लवाः । पञ्चरत्नानि । पञ्चसुगन्धयः-कस्तूरिका, केसरम्, कर्पूरम्, श्रीखण्डचन्दनम्, अगुरुश्च । पञ्चवर्णत्रिसूत्री गृहवेष्टनार्था । नारिकेलफले २ । होमार्थं विल्वफलानि, विल्वबीजानि वा ५। गव्यं घृतं होमसंख्यानुसारेण। होमसंख्यानुसारेण कृष्णास्तिलाः, यवाश्च । आचार्यब्रह्मवरणार्थं धौतवस्त्रोपवस्त्रयज्ञोपवीतादि, पुष्पमालाश्च । सदस्यर्त्विक्शान्तिकाध्यायसप्तशत्यादिपाठजपकर्तॄणां वरणसामग्री च । पूर्णपात्रद्वयम् । उदुम्बरसमिधः होमसंख्यानुसारेण । वलिदानार्थं पायसं दध्यक्षतं वा । क्षेत्रपालबलिदानाय माषभक्तम् । ग्रहहोमार्थं चरुः अर्कादिसमिधस्तिला आज्यं च । गोदानार्थं सवत्सा पयस्विनी च गौः । अभिषेकार्थमष्ट चत्वारो वा कुम्भाः । सहस्रधारघटः । रक्षासूत्रम् । घृतच्छायापात्रम् । भूयसी दक्षिणा । ब्राह्मणभोजनसामग्री चेत्यादि ।

इति सामग्रीसूचिका ।

अथ गृहदानविधिः ।

इत्थं वास्तुशान्तिपूर्वकं शिलान्यासं कृत्वा शिलामयमैष्टकं वा गृहं गृहाणि वा वास्तुशास्त्रोक्तरीत्या निर्माप्य संभृतसंभारं कृत्वा यजमानो विप्रनिमन्त्रणादिकं कुर्यात् । तदुक्तं मदनरत्ने वह्निपुराणे—

एवं संभृतसंभारं गृहं कृत्वा द्विजोत्तमान् ।
कुलशीलसमायुक्तान्गृहसंख्यान्निमन्त्रयेत् ॥
गृहधर्मरताञ्छान्तान्निःस्वान्बहुकुटुम्बिनः ।
अधीतवेदांस्तत्त्वज्ञान्पुराणस्मृतिपारगान् ॥
निराश्रयांस्तथा राजंस्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ।
अलंकृत्य सपत्नीकान्वस्त्राभरणकुण्डलैः ॥
कृत्वाऽग्नियजनं भूयो वास्तुं पूज्य विधानतः ।
समुच्चरन्निदं दाता विदधीत गतस्मयः ॥
जगदीशो गृहावासो गोविन्दः प्रीयतामिति ।

ब्रह्मवैवर्तेऽपि—

गृहाङ्गणे कारयित्वा कुण्डमेकं समेखलम् ।
ग्रहयज्ञः प्रकर्तव्यस्तुष्टिपुष्टिकरः सदा ॥
रक्षोघ्नानि च सूक्तानि पठेयुर्ब्राह्मणास्ततः ।
वास्तोः पूजा प्रकर्तव्या दिक्पालानां बलिं क्षिपेत् ॥
ततः पुण्याहघोषेण ब्राह्मणांस्तेषु वेश्मसु ।
प्रवेशयित्वा सर्वांस्तु सभार्यानुपवेशयेत् ॥
यजमानस्ततः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।
यद्यस्य विहितं (देयत्वेन निर्दिष्टं) पूर्वं तत्तस्मै प्रतिपादयेत् ॥

मत्स्यपुराणे—

प्राप्ते दानदिने कार्यमैशान्यां हस्तसम्मितम् ।
चतुरस्रं समं कुण्डं मेखलायोनिभूषितम् ॥
पूर्वोत्तरे हस्तमिताऽथ वेदी ग्रहादिदेवेश्वरपूजनाय ।
अथार्चनं ब्रह्मशिवाच्युतानां सूर्यस्य कार्यं फलमाल्यगन्धैः ॥
द्वारेषु कार्याणि च तोरणानि पत्रैरपि क्षीरवनस्पतीनाम् ।
मध्ये च संस्थाप्य सतोयकुम्भं स्रग्गन्धधूपाम्बररत्नयुक्तम् ।
गृह्योक्तेन विधानेन कृत्वा चाग्निमुखं ततः ।
गव्येन पयसा दिव्यं स्थालीपाकं चरुं श्रपेत् ॥
ततः शृतं चैव चरुं जुहोति मध्यस्थिताभ्यो गृहदेवताभ्यः ।
बलिं च सम्यग्विधिवत्प्रयुज्य क्षीरेण धारां परितस्तु दद्यात् ॥
शय्यां दक्षिणभागे तु सोपधानां सदीपिकाम् ।
सितवस्त्रैः सुसञ्छन्नां लक्ष्मीनारायणान्विताम् ॥
सिताम्बरं कुण्डलहैमभूषितं केयूरकण्ठाभरणाभिरामम् ।
पत्नीसमेतं च करे गृहीत्वा दाता पठेन्मन्त्रमिमं गृहस्थः ॥
*प्रह्येहि नारायण दिव्यरूप सर्वामरैर्वन्दितपादपद्म ।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश लक्ष्म्या युतस्त्वं हि गृहं गृहाण॥१॥
नमः कौस्तुभनाथाय हिरण्यकवचाय च ।
क्षीरोदार्णवसुप्ताय जगद्धात्रे नमोनमः ॥ २ ॥

नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय वै नमः ।
चराचरस्य जगतो गृहभूतविदे नमः ॥ ३ ॥
भूर्लोकप्रमुखा लोकास्तव देहे व्यवस्थिताः ।
नन्दन्ति यावत्कल्पान्तं तथाऽस्मिन्भवने गृही ॥ ४ ॥
त्वत्प्रसादेन देवेश पुत्रपौत्रैर्युतो गृहे ।
पञ्चयज्ञक्रियायुक्तो वसेदाचन्द्रतारकम्* ॥ ५ ॥
एवमुक्त्वाऽथ देवेशं सपत्नीकं द्विजोत्तमम् ।
तिलप्रस्थोपरिस्थायां शय्यायामुपवेश्य च ॥
वदेदिदं ततो वाक्यं सर्वधान्ययुतं त्विदम् ।
सर्वोपस्करसंयुक्तं गृहं गृह्ण द्विजोत्तम ॥
तत्रोपकरणं सर्वं दम्पत्योर्विनिवेदयेत् ।
पादुकोपानहच्छत्रभूषणासनभाजनम् ॥
संपन्नं वाऽप्यसम्पन्नं गृहोपस्करभूषणम् ।
सर्वं संपूर्णमेवास्तु पठित्वैवं निवेदयेत् ॥
य एवं सर्वसम्पन्नं पक्वेष्टं विनिवेदयेत् ।
कल्पकोटिशतं यावद्ब्रह्मलोके महीयते ॥
शैलजं दारुजं वाऽपि यो दद्याद्विधिपूर्वकम् ।
वसेत्क्षीरार्णवे रम्ये नारायणसमीपतः ॥
मृन्मयं चैव यो दद्याद् गृहं चोपस्करान्वितम् ।
पुरेषु लोकपालानां प्रतिमन्वन्तरे वसेत् ॥ इति ।

इति गृहदानविधिः ।

अथ गृहदानप्रयोगः ।

अथ दाता निर्मितं गृहं सुधाधात्वादिभिरलंकृत्य वक्ष्यमाणैरुपकरणैर्गृहं सुसंचितं कृत्वा गृहाङ्गणस्येशानदिग्भागे यथासंभवमष्टहस्तादिकं मण्डपं कटादिना कृत्वा तत्र चत्वारि द्वाराणि विधाय द्वारेषु क्षीरद्रुमपत्रैस्तोरणचतुष्टयं बध्वा मण्डपान्तर्मेखलायोनियुतं हस्तमितं कुण्डं स्थण्डिलं वा कृत्वा तदीशाने हस्तमितां ग्रहवेदीं

विरचय्य तत्र प्रविश्य शुभासने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य शान्तिपाठं(स्वस्तिवाचनं)कृत्वा गणेशवन्दनादिभूतोत्सादनान्तं कर्म कृत्वा गृहदानकर्मणो निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशं संपूज्य देशकालौ संकीर्त्य दानकल्पोक्तफलकामः सकलपापक्षयपूर्वकविष्णुप्रीतिकामो वा गृहदानं करिष्ये इति संकल्प्य तत्पूर्वाङ्गत्वेन मातृपूजनं नान्दीश्राद्धं पुण्याहवाचनम् आचार्यादिवरणं ग्रहपूजनं (ग्रहशान्ति) वास्तुपूजनं च करिष्ये इति संकल्प्य क्रमेण मातृपूजां नान्दीश्राद्धं पुण्याहवाचनं च कृत्वा तुलादानोक्तरीत्या 'गृहदानकर्मणि' इति विशेषमुल्लिख्याचार्यादीन्पञ्चर्त्विजो ब्राह्मणान्वृणुयात् ।

तत आचार्यो होमकुण्डात् ईशाने यजमानाभिषेकार्थं कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणं संपूज्य पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं प्रतिष्ठाप्य कुण्डसत्त्वे मेखलायोनिपूजनं च कृत्वा ग्रहयागोक्तरीत्या ग्रहवेद्यां ग्रहादीन्संस्थाप्य ब्रह्मशिवाच्युतसूर्य्याणामग्न्युत्तारितासु सुवर्णप्रतिमासु ग्रहोत्तरत आवाहनस्थापने कृत्वा ग्रहवेद्या ईशानकोणे कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणमावाह्य पाद्यादिभिरुपचारैः ग्रहादीन् ब्रह्मादीन् वरुणं च संपूज्य रक्षासूत्रमभिमन्त्र्य कलशे प्रतिष्ठाप्य मण्डपस्य मध्ये एकाशीतिपदं वास्तुमण्डलमुद्धृत्य तत्र शिख्यादीन्पञ्चचत्वारिंशद्देवानावाह्य प्रतिष्ठाप्य संपूज्य—वेदिद्वयोपरि फलपुष्पोपशोभितं वितानद्वयं दद्यात् ।

ततो ब्रह्मोपवेशनादिपात्रप्रोक्षणान्तं कर्म कृत्वा गव्येन पयसा ब्रह्मादिदेवताभ्यश्चरुं श्रपयित्वा पर्युक्षणान्तं कर्म कुर्यात् । संस्रवधारणार्थं प्रोक्षणीपात्रं च प्रणीताग्न्योर्मध्ये निदध्यात् ।

ततो यजमानः 'अद्येह गृहदानाङ्गहोमेनाहं यक्ष्ये । तत्र प्रजापतिम्, इन्द्रम्, अग्निम्, सोमम् आज्येन—आदित्यादिनवग्रहान्, ईश्वराद्यधिदेवताः, अग्न्यादिप्रत्यधिदेवताः, विनायकादिपञ्चलोकपालान्, इन्द्रादिदशदिक्पालान्, विश्वकर्माणम्, ब्रह्मशिवविष्णुसूर्यांश्च चरुणा, यवैः, कृष्णतिलैः, औदुम्बरादिसमिद्भिः, आज्येन च अष्टोत्तरशत—अष्टाविंशति—अष्टान्यतमसंख्यया—शिख्यादिब्रह्मान्तदेवान्पायसचरुणा पूर्वोक्तान्यतमसंख्यया—शेषेण स्वि-

ष्टकृतम्—अग्न्यादिप्रजापत्यन्तांश्चाज्येनाहं यक्ष्ये। एतच्चर्वादिद्रव्यजातं पूर्वाङ्गदेवताभ्यः प्रधानदेवताभ्य उत्तराङ्गदेवताभ्यश्च मया परित्यक्तं यथादैवतमस्तु न मम' इति द्रव्यदेवताभिध्यानपूर्वकं द्रव्यत्यागं कुर्यात्।

तत आचार्यो वरदनामानं प्रजापतिनामानं वा अग्निम् "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य कुशकण्डिकोक्तरीत्या (सं० दी० प्र० १७०) अग्निं रेखा अग्निजिह्वाश्च संपूज्य दक्षिणं जान्वाच्य ब्रह्मणाऽन्वारब्ध आघारावाज्यभागौ च हुत्वा—अनन्वारब्धो ग्रहादीनां विश्वकर्मान्तानां ब्रह्मशिवाच्युतमूर्त्तीनां च ग्रहयागोक्तवैदिकमन्त्रैः, प्रणवादिभिश्चतुर्थ्यन्तैः स्वाहान्तैर्नाममन्त्रैर्वा यथासंभवम् अष्टोत्तरशत-अष्टाविंशति-अष्टान्यतमसंख्याहुतीर्ऋत्विग्भिः सह पूर्वोक्तचर्वादिद्रव्यैर्जुहुयात्।

ततः शिख्यादिब्रह्मान्तदेवेभ्यः पायसचरुणा पूर्वोक्तान्यतमसङ्ख्याहुतीर्नाममन्त्रैर्जुहुयात्। ततो ब्रह्मणाऽन्वारब्ध आचार्यः सर्वाणि हवनीयद्रव्याण्येकीकृत्य स्विष्टकृतं हुत्वा भूरादिप्रजापत्यन्तहोमं चाज्येन कृत्वा बर्हिर्होमं संस्रवप्राशनमग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिं प्रणीताविमोकं च कुर्यात्।

ततो यजमानो ब्रह्मणे सहिरण्यं पूर्णपात्रं दद्यात्।

तत आचार्यो वेदिसमीपे सर्वेभ्यः पायसबलिं दध्यक्षतबलिं वा वास्तुशान्त्युक्तप्रकारेण दत्त्वा क्षेत्रपालाय माषभक्तबलिं, कृसरबलिं वा दत्त्वा आचामेत्। तत आचार्यो मृडनामाग्नौ "मूर्धानं दिव" इति मन्त्रेण पूर्णाहुतिहोमं कुर्यात्।

ततो यजमानो होमसाङ्गतासिद्ध्यर्थं सर्वेषां देवानां प्रीतये ऋत्विग्भ्यः सुवर्णरजतान्यतरदक्षिणाम् आचार्याय धेनुं च दद्यात्।

तत आचार्यादयः सपरिवारं यजमानमभिषेकमन्त्रैर्होमकुण्डसमीपस्थितस्य ग्रहवेदिसमीपस्थितस्य च कलशस्य जलैर्दूर्वापल्लवयुतैरभिषिञ्चेयुर्मङ्गलघोषपुरस्सरम्।

तत उद्वर्तनपूर्वकं यजमानः सति सम्भवे स्नायात्।

अथ स्नानवस्त्रं त्यक्त्वा शुक्लवस्त्रान्तरं परिधाय शुक्लमाल्यप्रावारधरो धृततिलकोऽनुलिप्ताङ्गो यजमानो गीतमङ्गलवाद्यादिभिर्गृहं पूर्वोक्तैः (१६८) रक्षोघ्नपावमानमन्त्रैः त्रिसूत्र्या प्रदक्षिणमावेष्ट्य तैरेव स्तनकुम्भ्या(कर्कर्या)क्षीरधारां परितः पातयित्वा गृहमध्ये दक्षिणभागे अष्टदलं पद्मं लिखित्वा तदुपरि प्रस्थमात्रांस्तिलान् प्रक्षिप्य तत्र उपधानादिसर्वोपकरणसहितां शय्यां पूर्वापरायतां स्थापयित्वा तत्र अग्न्युत्तारितां पञ्चामृतस्नापितां सौवर्णलक्ष्मीनारायणप्रतिमां संस्थाप्य यथाविधि सम्पूज्य प्रतिग्रहीतारं सपत्नीकं ब्राह्मणं कुण्डलवस्त्रकेयूरादिभिरलंकृत्य गृहदानप्रतिग्रहार्थं मण्डपे एव वृत्वा—तं करे गृहीत्वा सुलग्ने मङ्गलवाद्यादिभिः सह—

पूर्वोक्तैः (१८८) "एह्येहि नारायण" इत्यादिभिः "वसेदाचन्द्रतारकम्" इत्यन्तैः पञ्चभिर्मन्त्रैर्गृहं प्रवेशयेत् ।

ततो ब्राह्मणं सपत्नीकं पूर्वस्थापितशय्योपरि उदङ्मुखमुपवेश्य स्वयं भूमौ प्राङ्मुख उपविश्य सकुशोपग्रहपाणिः आचम्य कुशयवतिलजलान्यादाय देशकालौ सङ्कीर्त्य अहं मम आत्मनः सकलपापक्षयपूर्वकं (पक्वेष्टकानिर्मितं गृहं चेत् तदा) सिद्धसंघपूजितत्वाप्सरस्संघकरकलितचामरवीज्यमानत्वसहितसम्भावितनरकनिमज्जनपित्रादिपुरुषशतपुत्रपौत्रादिबन्धुतारणपूर्वकं कल्पकोटिशतावधिककालब्रह्मलोकमहीयमानत्वकामः, (शैलजं दारुजं वा गृहं चेत् तदा) कल्पकोटिशतावधिककालनारायणसमीपक्षीरार्णवनिवासकामः, (मृन्मयं गृहं चेत् तदा) एकैकमन्वन्तरावच्छिन्नप्रतिलोकपालपुरनिवासकामः इति गृहानुसारेण फलमुल्लिख्य इदं गृहं पक्वेष्टकारचितं, शिलारचितं, दारुजं, मृत्तिकारचितं वा यथाशक्ति सम्पादितकांस्यताम्रादिभाजन—सर्वधान्य—लवण—घृत—गुड—शर्करा-समश्रतूलिका—वितानादिसर्वोपकरणसहितं (सति सम्भवे गो—बलीवर्ददासीदासादियुतम्) सदीपप्रभोद्द्योतं सर्वदैवतम् अमुकगोत्राय अमुकवेदाध्यायिने अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यं सम्प्रददे ॐतत्सत् न मम इति ब्राह्मणहस्ते जलादिकं दत्त्वा—

इदं गृहं गृहाण त्वं सर्वोपस्करसंयुतम् ।
तव विप्र प्रसादेन ममास्त्वभिनवं गृहम् ॥
गृहं मम विभूत्यर्थं गृहाण त्वं द्विजोत्तम ।
प्रीयतां मे जगद्योनिर्वास्तुरूपी जनार्दनः ॥

इति पठेत् ।

ततो ब्राह्मणः "देवस्य त्वा" इति पठित्वा ओं स्वस्ति सर्वदेवताभ्यः प्रतिगृह्णामीत्युक्त्वा प्रतिगृह्य "कोऽदात्" इति कामस्तुतिं पठेत् ।

ततो यजमानः कृतैतद्गृहदानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थमिदं सुवर्णम् अग्निदैवतं दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे इति सुवर्णसहस्रमारभ्यैक-सुवर्णावरां दक्षिणां यथाशक्ति दद्यात् । ततस्तस्मै पादुकोपानहच्छ-त्रचामरादिकं दत्त्वा—

सम्पन्नं वाऽप्यसंपन्नं गृहोपस्करभूषणम् ।
सर्वं सम्पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाद्द्विजोत्तम ॥

इति ब्राह्मणं संप्रार्थ्य न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं भूयसीं दक्षिणां सङ्कल्प्य यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं च सङ्कल्प्य मण्डपमु-पगम्योत्तराङ्गत्वेन सर्वान्देवान्संपूजयेत् ।

तत आचार्यः "यान्तु देवगणाः सर्वे" इति ग्रहादीन्विसृजेत् ।

ततो यजमानः "तनूपा ऽअग्नेऽसि" इत्यादिभिर्मन्त्रैस्सप्तकृत्वो मुखं मार्जयित्वा अङ्गान्याप्याय्य त्र्यायुषकरणं कुर्यात् । ततोऽग्निं विसृज्य घृते छायां दृष्ट्वा ब्राह्मणैस्तिलकरक्षाबन्धनादि कारयित्वा प्रतिमादिकम् आचार्याय दत्त्वा 'यस्य स्मृत्ये'त्यादि पठित्वा कर्मेश्व-रार्पणं कृत्वा स्वगृहं गच्छेत् ।

इति गृहदानप्रयोगः ।

अथ प्रसङ्गात्प्रतिश्रय(धर्मशाला)दानविधिः ।

स प्रोक्तः स्कन्दपुराणे—

कृत्वा मठं प्रयत्नेन शयनासनसंयुतम् ।
पुण्यकाले द्विजेभ्योऽर्थे यतिभ्यो वा निवेदयेत् ॥

सर्वान्कामानवाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ।

मार्कण्डेयपुराणे—

कुर्यात्प्रतिश्रयगृहं पथिकानां हितावहम् ।
निजगेहैकदेशं वा साधूनां यो निवेदयेत् ॥
अक्षयं पुण्यमुद्दिष्टं तस्य स्वर्गापवर्गदम् ।
सर्वकामसमृद्धोऽसौ देववद्दिवि मोदते ॥

प्रतिश्रयो धर्मशाला । भविष्यपुराणे—

प्रतिश्रये सुविस्तीर्णे कारिते सजलेन्धने ।
दीनानाथजनार्थाय वद किं न कृतं भवेत् ॥ इति ।

इति प्रतिश्रयदानविधिः ।

अथ गृहदानप्रसङ्गात् शय्यादानम् ।

तदुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये—

शय्यादानं प्रवक्ष्यामि तत्र पाण्डुकुलोद्वह ।
यां दत्त्वा शिवभागी स्यादिहलोके परत्र च ॥
तस्माच्छय्यां समासाद्य साल-[सखुवा] दारुमयीं दृढाम् ।
दन्तपत्रचितां रम्यां हैमपट्टैरलंकृताम् ॥
हंसतूली[गद्दी]प्रतिच्छन्नां शुभगण्डोपधानिकाम् [तकिया] ।
प्रच्छादनपटी [चादर] युक्तां धूपगन्धादिवासिताम् ॥
तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् ।
उच्छीर्षके [शिरःप्रदेशे] घृतभृतं कलशं परिकल्पयेत् ॥
विज्ञेयः पाण्डवश्रेष्ठ स निद्राकलशो बुधैः ।
ताम्बूलकुङ्कुमक्षोदकर्पूरागरुचन्दनम् ॥
दीपिकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम् ।
पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्तधान्यानि चैव हि ॥
शयनस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् ।
भृङ्गारकरकाद्यं तु पञ्चवर्णं वितानकम् [चान्दनी] ॥
शय्यामेवंविधां कृत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत् ।

सपत्नीकाय सम्पूज्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ॥
*यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया [लक्ष्म्या] ।
शय्या(१)ममाप्यशून्याऽस्तु तथा जन्मनिजन्मनि ॥ १ ॥
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च ।
शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु तथा जन्मनिजन्मनि* ॥ २ ॥
दत्त्वैवं तल्पममलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।
एवं शय्याप्रदाने तु विधिरेष प्रकीर्तितः ॥
स्वर्गे पुरन्दरगृहे सूर्यपुत्रालये तथा ।
सुखं वसत्यसौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः ॥
पीडयन्ति न तं याम्याः पुरुषा भीषणाननाः ।
न घर्मेण न शीतेन बाध्यते स नरः क्वचित् ॥
अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोकं स गच्छति ।
विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥
आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः ।
कल्पं विकल्परहितः स्वयं स्वर्गे विराजते ॥ इति ।

विष्णुसंहितायां पूर्ववत्सर्वमुक्त्वा—

चतुष्कोणेषु संस्थाप्य यथाशक्ति युधिष्ठिर ।
घृत—कुङ्कुम—गोधूम—पूर्णपात्रं जलस्य च ॥
शय्यां संपूजयित्वा तु मद्भक्तो मत्परायणः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा कुर्याच्छय्यां प्रदक्षिणम् ॥
नमः प्रमाण्यै देव्यै च प्रणम्य च चतुर्दिशम् ।
ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रुताध्ययनशालिने ॥
तथाऽऽत्मज्ञानविदुषे शय्यां दद्याद्विचक्षणः । इत्युक्तम् ।

अथ शय्यादानप्रयोगः ।

दाता पुण्यकाले सूपलिप्तायां भूमौ प्राङ्मुख उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य हंसतूल्यादिसमायुक्तां शय्यां पूर्वापरायतामास्तीर्य

(१) प्रेतोद्देशेन शय्यादाने ममेत्यस्य स्थाने प्रेतस्य प्रेताया इति वा ऊहं कृत्वा पाठ्यम् ।

शिरःप्रदेशे निद्राकलशाख्यं घृतपूर्णं ताम्रकलशं निधाय पादप्रदेशे ज्वलन्तं चतुर्वर्त्तियुतं दीपं संस्थाप्य अधःप्रदेशे कर्पूरादिवासितं जल-कलशं संस्थाप्य अन्यानि चोपकरणानि पार्श्वयोः संस्थाप्य शय्योपरि अग्न्युत्तारितां पञ्चामृतस्नापितां पञ्चगुञ्जाऽन्यूनसुवर्णनिर्मितां लक्ष्मी-नारायणप्रतिमां संस्थाप्य यथोक्तलक्षणं ब्राह्मणमुदङ्मुखमुपवेश्य गणेशादीन् गुर्वादींश्च प्रणम्य पुष्पाञ्जलिं च तेभ्यः समर्प्य अर्घस्था-पनादि भूतोत्सादनान्तं कृत्वा कुशादिकमादाय देशकालौ सङ्कीर्त्य दानकल्पोक्तफलकामः सकलपापक्षयपूर्वकविष्णुप्रीतिकामो वा शय्या-दानमहं करिष्ये इति प्रतिज्ञां कृत्वा शय्यादानप्रतिग्रहार्थं ब्राह्मणस्य पूजनपूर्वकं वरणं करिष्ये इति सङ्कल्प्य ब्राह्मणं संपूज्य वृत्वा लक्ष्मी-नारायणप्रतिमाम् "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य पुरुषसूक्तादिना षोडशो-पचारैः संपूज्य शय्यां च नाममन्त्रेण गन्धादिना संपूज्य "ॐनमः प्रमाण्यै देव्यै" इति चतुर्दिशं तां प्रदक्षिणीकुर्वन् प्रणम्य तदुपरि सप्तधान्यानि क्षिप्त्वा—

हस्ते कुशादिकमादाय देशकालौ संकीर्त्य अहं (१) ममा-त्मनः स्त्रीसहस्रावृतदशवर्षसहस्रस्वर्गलोकवास—सर्वसुखप्राप्तिपूर्वकेन्द्र-लोकयमलोकवास-याम्यपुरुषपीडाऽभाव-घर्मशीतादिपीडाऽभाव—अप्स-रोगणसेव्यमानविमानारोहणपूर्वकाभूतसंप्लवकालावधिस्वर्गवासकामः [सकलपापक्षयपूर्वकपरमेश्वरप्रीतिकामः] इमां सालदारुमयीं हंसतूली-गण्डोपधान-प्रच्छादनपटादिवस्त्र—घृतकुम्भजलकलशताम्बूलकुङ्कुमा-गरुकर्पूरचन्दनदीपिकापादुकोपानच्छत्रचामरासननानाविधभाजनसप्त-धान्यसुवर्णरजतभूषणविविधभक्ष्यभोज्यादर्शकङ्कणयथासंभवपट्टकौशे-यक्षौमौर्णकार्पासवस्त्र [वाहनायुध] हैमलक्ष्मीनारायणप्रतिमायुतां शय्यां प्रजापतिदैवतां यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे न मम इत्युक्त्वा "यथा न कृष्णशयनम्" इति पूर्वोक्तं [१९५] श्लोकद्व-

---

(१) प्रेतोद्देशेन शय्यादाने प्रेतस्य प्रेताया वा सकलनरकयातना-घर्मशीतादिबाधा—याम्यपुरुषप्रहारनिवृत्तिपूर्वकानेकपुरन्दरादिलोकप्राप्ति-काम इत्युल्लिखेत् ।

यात्मकं मन्त्रं पठित्वा ब्राह्मणहस्ते कुशादिकं दत्त्वा शय्यां स्पर्शयेत्। [“शय्यासनगृहक्षेत्रं संस्पृश्य” इति हेमाद्रौ परिशिष्टवचनात्]। द्विजश्च “देवस्यत्वा” इति यजुः पठित्वा ‘ॐस्वस्ति प्रजापतिदैवतायै प्रतिगृह्णामि’ इत्युक्त्वा प्रतिगृह्णीयात्। “कोऽदात्” इति कामस्तुतिं च पठेत्। ततो यजमानः शय्यादानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं कर्षत्रय–कर्षद्वय–केवलकर्षान्यतमप्रमितं सुवर्णं दक्षिणां यथाशक्ति दद्यात्। ततो यथाशक्ति भूयसीं ब्राह्मणभोजनं च संकल्प्य कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात्। इति शय्यादानप्रयोगः।

गृहदानानन्तरमुद्दिष्टं कन्यादानाख्यं महादानं संस्कारदीपकस्य द्वितीयभागे सप्रयोगं निरूपितमेव, तथापि—

कन्यादानफलादिकं तावदत्रोच्यते।

तत्र हेमाद्रौ वसिष्ठः—

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम्।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम्॥

वह्निपुराणे—कन्यां ये तु प्रयच्छन्ति यथाशक्त्या स्वलंकृताम्।
ब्रह्मदेयां द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मलोकं प्रजन्ति ते॥

लिङ्गपुराणे—कन्यां लक्षणसंपन्नां सर्वदोषविवर्जिताम्।
मातापित्रोस्तु संवादं कृत्वा दत्त्वा धनं महत्॥
आत्मीकृत्य तु संस्थाप्य वस्त्रं दत्त्वा नवं शुभम्।
भूषणैर्भूषयित्वा च गन्धमाल्यैरथार्चयेत्॥
दातव्या श्रोत्रियायैव ब्राह्मणाय तपस्विने।
साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे॥
यावन्ति सन्ति रोमाणि कन्यायाश्च तनौ पुनः।
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ इति।

स्कन्दपुराणे—वैवाहिकप्रदानं वा यो ददाति दयापरः।
विमानेन विचित्रेण किङ्किणीजालमालिना॥
महेन्द्रभवने याति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः।

इति कन्यादानफलादिकम्।

अथ द्विजस्थापनम् ।

हेमाद्रौ दक्षः—मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वहनादिभिः ।
यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते ॥ इति ।

विवाहं कारयित्वा गृहं सोपस्करं दत्त्वा वृत्त्यर्थं ग्रामादिकं च दत्त्वा अग्निहोत्रादिधर्मानुष्ठापनं, यज्ञ—दान—व्रतादि—तीर्थयात्रादिकारणं च सफलं प्रतिपादितं कालिकापुराणे—

कारयित्वा तथोद्वाहं श्रोत्रियाणां कुलेषु च ।
वेदवच्छीलवृत्तेषु द्विजेष्वेकादशस्वथ ॥
ततो गृहाणि रम्याणि कुर्यादेकादशैव तु ।
कारयित्वा तु धान्यैश्च विविधैश्च प्रपूरयेत् ॥
दासी—गो—महिषीश्चापि शयनासनपादुकाः ।
भोजनानि विचित्राणि, ताम्रमृन्मयकानि च ॥
पात्राणि भोजनार्थं च कृत्स्नं चोपस्करं च यत् ।
लोहं च कनकं चैव वस्त्राणि च विशेषतः ॥
संभृत्यैवं सुसंभारं तद्गृहेषु नियोजयेत् ।
योजयेच्चैव वृत्त्यर्थं शक्तितो वा शतं शतम् ॥
पृथक्पृथक् लाङ्गलानां निवर्तनशतार्धतः ।
विषयं खर्वटं खेटं ग्रामं ग्रामार्धमेव वा ॥
योजयेत् सोममूर्तिं च चिन्तितेषु द्विजेषु वै ।
एकादशैव तास्तत्र दांपत्योमाहरात्मिकाः ॥
विचिन्त्य परया भक्त्या तद्गृहेषु प्रवेशयेत् ।
ग्राहयेदग्निहोत्राणि प्रवेश्यैतान् द्विजोत्तमान् ॥
विधिपूर्वं यथान्यायमात्मनः श्रेयसे नरः ।
अदुष्टकुलजानां च विधिरेष सनातनः ॥
शिवभक्त्या विभक्तानां द्विजानां कारयेत्सदा ।
यश्च प्रेष्यान् द्विजान् मूढो योजयेद्धव्यकव्ययोः ॥
न भवेत् तत्फलं तस्य वैदिकीयं श्रुतिर्ध्रुवा ।
यज्ञो दानं व्रताद्यं च तीर्थयात्रादिकं च यत् ॥

यस्त्वेवं कारयेज्जन्तुं तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
स यात्यर्कसमानाभं विमानं रत्नमालिनम् ॥
आरुह्य तत्पदं पुण्यं सुरस्त्रीभिरलंकृतम् ।
विमानैश्चापरैर्दिव्यैः सहस्रैः परिवारितः ॥
सर्वलोकगतान् भोगान् भुक्त्वा तस्मिन् प्रपद्यते ।
ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्यमेकं वोद्वाहयेत् द्विजम् ॥
तेन प्राप्नोति तत्स्थानं शिवभक्तो नरो ध्रुवम् ।
स्थानेन स्थानसंप्राप्तिर्विधिदत्तेन जायते ॥

इति द्विजस्थापनम् ।

अथ दशमं कपिलादानम् ।

तद्दानवाक्यं मात्स्ये—

कपिले सर्ववर्णानां पूजनीयाऽसि रोहिणि ।
तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ इति ।

कपिलादानप्रयोगस्तु गोदानप्रयोगवद्बोध्यः ।

इति दश महादानानि सौरोक्तानि ।

अथोपयोगिनां केषांचिद्दानानां मन्त्राः देयद्रव्यदेवतासहिताः । तत्रादौ नवग्रहमूर्तिदानानि प्रदर्श्यन्ते । तत्र स्कन्दपुराणे—

आदित्यादिषु वारेषु सहिरण्याः सदैव तु ।
यः प्रयच्छति तन्मूर्तीस्तस्य तुष्यन्ति वै ग्रहाः ॥
दद्यादादित्यमादित्ये सोमे सोमं कुजे कुजम् ।
एवं बुधादीन्मन्दे तु राहुकेतुशनैश्चरान् ॥

ब्रह्मपुराणे—ग्रहान् स्वर्णमयान्कृत्वा यो विप्रेभ्यः प्रयच्छति ।
तद्दिनेषु यथाशक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥

इति । 'अथ वारदानानि' इत्युपक्रम्योक्तानि हेमाद्रौ नवग्रहमूर्तिदानानि । तेषां मन्त्राश्च "पद्मासनः पद्मकरो द्विबाहुः" इत्यादयः सं० दी० प्र० (पृ० २०२—२०३) ग्रहध्यानत्वेनोक्ता एव बोध्याः । मूर्तीनां लक्षणानि तु "पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भस-

मद्द्युतिः" इत्यादीनि होमरहितग्रहपूजाप्रयोगे (पृ० १५६) सं० दी० प्र० द्रष्टव्यानि ।

अथ नवग्रहाणां प्रीतये माणिक्यादीनां दानानि मिताक्षराटीकायां (४८५)

माणिक्य-गोधूम-सवत्सधेनुः कौसुम्भवासो गुड-हेम-ताम्रम् ।
आरक्तकं चन्दनमम्बुजं च वदन्ति दानं हि विरोचनाय ॥
सद्वंशपात्रस्थिततण्डुलाश्च कर्पूर-मुक्ताफल-शुभ्रवस्त्रम् ।
युगोपयुक्तं वृषभं च रौप्यं चन्द्राय दद्याद् घृतपूर्णकुम्भम् ॥
प्रवाल-गोधूम-मसूरिकाश्च वृषोऽरुणश्चापि गुडः सुवर्णम् ।
आरक्तवस्त्रं करवीरपुष्पं ताम्रं च भौमाय वदन्ति दानम् ॥
चैलं सुनीलं कलधौतकांस्यं मुद्गाश्च-गारुत्मतसर्वपुष्पम् ।
दासी च दन्तो द्विरदस्य नूनं वदन्ति दानं विधुनन्दनाय ॥
शर्करा च रजनी तुरङ्गमः पीतधान्यमपि पीतमम्बरम् ।
पुष्पराग—लवणं सकाञ्चनं प्रीतये सुरगुरोः प्रदीयते ॥
चित्राम्बरं शुभ्रतरस्तुरङ्गमो धेनुश्च वज्रं रजतं सुवर्णम् ।
सुतण्डुलाश्चोत्तमगन्धयुक्ता वदन्ति दानं भृगुनन्दनाय ॥
माषाश्च तैलं विमलेन्द्रनीलं तिलाः कुलित्था महिषी च लोहम् ।
कृष्णा च धेनुः प्रवदन्ति नूनं दुष्टाय दानं रविनन्दनाय ॥
गोमेदरत्नं च तुरङ्गमश्च सुनीलचैलामलकम्बलौ च ।
तिलाश्च तैलं खलु लोहमिश्रं स्वर्भानवे दानमिदं वदन्ति ॥
वैडूर्यरत्नं सतिलं च तैलं सुकम्बलश्चापि मदो मृगस्य ।
शस्त्रं च केतोः परितोषहेतोश्छागस्य दानं कथितं मुनीन्द्रैः॥इति ।

तत्र माणिक्य [चुन्नी] मुक्ताफल [मोती] विद्रुम [मूंगा] गारुत्मत [पन्ना] पुष्पराग [पोखराज] वज्र [हीरा] इन्द्रनील [नीलम] गोमेद [गौमेद] वैडूर्याणि [लहसुनिया] नवरत्नानि वरुणदैवतानि । गोधूमादिधान्यानि दासी च प्रजापतिदैवतानि । धेनू रौद्री वृषश्च । सुवर्णमाग्नेयमजश्च । रजतं चन्द्रदैवतम् । वस्त्राणि बृहस्पतिदैवतानि । अश्वो महिषी च यमदैवतौ । लोहं भैरवदैवतम् ।

ताम्रं सूर्यदैवतम् । कांस्यमशिवदैवतम् । रक्तचन्दनं कर्पूरं कमलादिपुष्पाणि च वनस्पतिदैवतानि । गुडशर्करादयो रसाः सोमदैवताः । वंशादिपात्राणि भूषणानि च विश्वकर्मदैवतानि । हस्तिदन्तः अङ्गिरोदैवतः । कस्तूर्यादयो गन्धा गन्धर्वदैवताः । घृतं मृत्युञ्जयदैवतम् । शस्त्रं विश्वदैवतम् ।

अथ एषां दानमन्त्राः ।

सुवर्णस्य—हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम बीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

रजतस्य—पितॄणां वल्लभं यस्माद्विष्णोर्वै शङ्करस्य च ।
रजतं पाहि तस्मात्त्वं शोकसंसारसागरात् ॥

ताम्रस्य—सूर्यप्रीतिकरं ताम्रं प्राणिनां बलवर्धनम् ।
तस्मादस्य प्रदानेन प्रीयतां मे दिवाकरः ॥

कांस्यस्य—कांस्यं ब्रह्म शिवं साक्षात् स्वयमेव विभावसुः ।
कांस्यं विष्णुमयं साक्षादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

लोहस्य—यस्मादायस कर्माणि त्वदधीनानि सर्वदा ।
लाङ्गलाद्यायुधादीनामतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

रत्नानां—यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवा व्यवस्थिताः ।
तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ॥

मुक्तानां—ताम्रवर्णार्णवोत्पन्नाः पाद्मादिकल्पवर्णिताः ।
मुक्ताः शुक्त्युद्भवाः सन्तु भुक्तिमुक्तिप्रदा मम ॥

अङ्गुलीयकस्य—हिरण्यगर्भसंभूतं सौवर्णं चाङ्गुलीयकम् ।
धर्मप्रदं प्रयच्छामि प्रीयतां कमलापतिः ॥

हस्तवलयस्य—काञ्चनं हस्तवलयं रूपकान्तिसुखप्रदम् ।
विभूषणं प्रदास्यामि विभूषयतु मां सदा ॥

कुण्डलयुग्मस्य—क्षीरोदमथने पूर्वमुद्धृतं कुण्डलद्वयम् ।
श्रिया सह समुद्भूतं ददे श्रीः प्रीयतां मम ॥

सुवर्णतुलस्याः—मणिकाञ्चनपुष्पाणि मणिमुक्तामयानि च ।
तुलसीपत्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

वस्त्रस्य—शरण्यं सर्वलोकानां लज्जाया रक्षणं परम् ।
सुवेषधारि वस्त्र त्वमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
और्णवस्त्रस्य—ऊर्णा मेषसमुत्पन्ना शीतवातभयापहा ।
यस्मात्तुषारहारी स्यादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
चन्दनस्य—नन्दनावास मन्दारसख वृन्दारकाश्रित ।
चन्दन त्वं प्रसादेन सान्द्रानन्दप्रदो भव ॥
कस्तूर्याः—समस्तेभ्योऽपि वस्तुभ्यः संस्तुताऽसि सुरासुरैः ।
विन्यस्ताऽङ्गेषु कस्तूरी सुखदाऽस्तु सदा मम ॥
कर्पूरस्य—कन्दर्पदर्पदं यस्मात्कर्पूरं प्राणतर्पणम् ।
अहर्पतिभवस्तापस्तद्दानादपसर्पतु ॥
धान्यानां—सर्वदेवमयं धान्यं सर्वप्रीतिकरं महत् ।
प्राणिनां जीवनं धान्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
यवानां—धान्यराजाश्च माङ्गल्या द्विजप्रीतिकरा यवाः ।
तस्मादेषां प्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः ॥
गोधूमानां—धान्यचूडामणिर्जम्बू-द्वीपे गोधूमसंज्ञकः ।
गन्धवर्धनसौख्याय अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
माषाणां—यस्मान्मधुवधे काले विष्णोर्देहसमुद्भवाः ।
पितृप्रीतिकरा माषा अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
मुद्गानां—मुद्गबीजानि वै यस्मात्प्रियाणि परमेष्ठिनः ।
तस्मान्मुद्गप्रदानेन प्रीतिः सिध्यतु मे सदा ॥
तण्डुलानां—प्राणिनां जीवनोपायाः सोमेनाधिष्ठिताः पुरा ।
तस्मादेषां प्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः ॥
चणकानां—गोवर्धनगिरेर्भीतिसमये हरिरक्षिताः ।
चणकाः सर्वपापघ्ना अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।
कुलत्थानां—अग्निगर्भोद्भवाः सौम्या बलामेययशःप्रदाः ।
कुलत्थाः सर्वपापघ्ना अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
गुडस्य—सर्वदेवस्तु देवानां महादेवस्तु योगिनाम् ।
प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा ॥

तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः ।
तस्मान्मां परमां लक्ष्मीं ददस्व गुड सर्वदा ॥
आज्यस्य—कामधेनोः समुद्भूतं देवानामुत्तमं हविः ।
आयुर्वृद्धिकरं दातुराज्यं पातु सदैव माम् ॥
शर्करायाः—मनोभवधनुर्मध्यादुत्पन्ना शर्करा यतः ।
तस्मादस्याः प्रदानेन शान्तिर्भवतु मे सदा ॥
क्षौद्रस्य मधुनः—यस्मात्पितॄणां श्राद्धे त्वं प्रीतं मध्वमृतोद्भवम् ।
तस्मात्तव प्रदानेन रक्ष मां दुःखसागरात् ॥
पुष्पाणां—ह्लादयन्ति मनो यस्मात्तस्मात्सुमनसः स्मृताः ।
दत्ता ददत मे नित्यमत्याह्लादं सदा श्रियम् ॥
ताम्बूलस्य—ताम्बूलं श्रीकरं भद्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
अस्य प्रदानाद् ब्रह्माद्याः श्रियं ददतु पुष्कलाम् ॥
ताम्बूलकरङ्कस्य—पूरितं पूगपूगेन (पुगवृन्देन)नागवल्लीदलान्वितम् ।
चूर्णपूर्णेन पात्रेण कर्पूरपिटकेन च ॥
युक्तं खदिरपात्रेण गन्धर्वाप्सरसां प्रियम् ।
करङ्क त्वं निरातङ्कं त्वत्प्रसादात्कुरुष्व माम् ॥

अथ अक्षयतृतीयायां धर्मघटादिदानम् ।

धर्मघटस्य—एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
वरुणदैवतस्य—अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः ॥
गन्धोदकतिलैर्युक्तं सान्नं कुम्भं जलान्वितम् ।
विष्णवे (पितृभ्यः) संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥
(पोसरा)प्रपायाः—प्रपेयं सर्वसामान्यभूतेभ्यः प्रतिपादिता ॥
(वरुणदै०)एतद्दानेन पितरः प्रीतिं यान्तु पितामहाः ॥
व्यजनस्य—व्यजनं वायुदेवत्यं धर्मकालसुखप्रदम् ।
(वायुदै०)अस्य दानेन मे शान्तिं सदा यच्छतु मारुतः ॥
छत्रस्य—छत्रं वर्षातपत्राणं भूषणं सर्वसंपदाम् ।
(अङ्गिरोदै०)वाङ्मनःप्रीतिदं यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

पादुकयोः—कण्टकोच्छिष्टपाषाणवृश्चिकादिनिवारणे ।
(अङ्गिरोदै०)पादुके संप्रदास्यामि विप्र प्रीत्या प्रगृह्यताम्॥

उपानहोः—उपानहौ प्रदास्यामि कण्टकोच्छिष्टवारणे ।
(अङ्गिरोदै०) पादत्राणाय ते विप्र गृहाण त्वं सुखायते ॥

सक्तूनां—प्राजापत्या यतः प्रोक्ताः सक्तवो यज्ञकर्मणि ।
(प्रजापतिदै०) तस्मात्सक्तून्प्रयच्छामि प्रीयतां मे प्रजापतिः ॥

फलानां—यतोऽफलेषु सर्वेषु वसन्ति नरकोद्याः ।
(वनस्पतिदै०)तस्मात्फलप्रदानेन फलावाप्तिर्भवेत्सदा ॥

श्रावणशुक्लद्वादश्यां वनस्पतिदैवतशाकदानमनेनैव ।

भाद्रशुक्लद्वादश्यां सर्पदैवतदधिदानम्—

दधि त्वं भजतः पुंसः सदा संतुष्टिकृन्मतम् ।
अतस्तव प्रदानेन इहामुत्रास्तु शर्म मे ॥

तत्रैव वामनप्रीतये प्रजापतिदैवतस्य [सर्वदैवतस्य] दध्योदनस्य पानीय-शर्करा-फल-दक्षिणासहितस्य दानम्—

पानीयसहितं चैव सदध्योदनपात्रकम् ।
सशर्करं च सफलं सदक्षिणं गृहाण मे ।

आश्विनशुक्लद्वादश्यां तारागणदैवत-दुग्धदानम्—

सत्त्वानामाद्यममृतं प्राणिनां बलतुष्टिकृत् ।
पयस्तव प्रदानेन सर्वदा शान्तिरस्तु मे ॥

कार्तिकशुक्लद्वादश्यां प्रजापतिदैवत-द्विदलमुद्गादिधान्यदानम् । तेषां दानमन्त्रा उक्ताः (२०२) ।

शिशिरे सर्वस्मिन् (मकरकुम्भयोः) तदसम्भवे संक्रान्तिदिने प्रजापतिदैवत-कृसरदानम्—

सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्वव्यापी जनार्दनः ।
नारायणः प्रसन्नः स्यात्कृसरान्नप्रदानतः ॥

यद्यपि "कृसरस्तु तिलौदनः" इत्यमराभिधानात् तिलमिश्रौदनस्यैव कृसरत्वं प्राप्तं तथापि मदनपालनिघण्ट्वाद्युक्त्या, प्रसिद्धि-

वशाच्च द्विदलमिश्रतण्डुलादिसिद्धौदनमात्रस्यापि कृसरत्वं निश्चीयते।

कार्तिकशुक्लनवम्यां वनस्पतिदैवत-कूष्माण्डदानम्—

कूष्माण्डं बहुबीजाढ्यं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
ब्रह्महत्याऽपनुत्त्यर्थमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

कार्तिक्यां विष्णुदैवत-दीपदानम्। तन्मन्त्राः—

दीपो ज्ञानप्रदो नित्यं देवतानां प्रियः सदा।
दानेनास्य भवेत्सौख्यं शान्तिर्मे वाञ्छितं फलम्॥
सज्योतिर्गुणपात्रं च दीपं घृतसमन्वितम्।
सुखं चास्य प्रदानेन शान्तिरस्तु सदा मम॥
त्वं दीपो ज्योतिषां पत्युरंशभूतोऽसि ते नमः।
ध्वान्तध्वंसन संतुष्य संकल्पं मम साधय॥
दीपः पापहरः प्रोक्तश्चान्धकारविनाशनः।
दीपेन लभ्यते तेजस्तस्माद्दीपं ददामि ते॥
दीपो ज्ञानप्रदो नित्यं दीपः सौभाग्यवर्धनः।
तस्मादस्य प्रदानेन संततिर्वर्धतां मम॥ इति।

दीपप्रतिग्रहमन्त्रः-यथाऽन्धकारे वसतां साहाय्यं वितनोत्यसौ।
दीपो नृणां तथा मेऽपि कृपीष्ट द्युतिमुत्तमाम्॥ इति।

माघे प्रजापतिदैवततिलपात्रस्य-तिलस्वर्णसमायुक्त दुरितक्षयकारक।
विश्वमूर्तेरधिष्ठान तिलपात्र नमोऽस्तु ते॥
देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थफलप्रद।
तिलपात्रं प्रदास्यामि तवाग्रे सुस्थितोऽस्म्यहम्॥

मेषसंक्रान्तौ मेषस्य-देवानां यो मुखं हव्यवाहनः सर्वदैवतः।
[वरुणदै०] तस्य त्वं वाहनं पूज्यं देवैः सेन्द्रैर्महर्षिभिः॥
अग्निमान्द्यं पूर्वकर्मविपाकोत्थं तु यन्मम।
तत्सर्वं नाशय क्षिप्रं जठराग्निं विशालय॥ इति।

छागस्य-यस्मात्त्वं छाग यज्ञानामाहुतित्वे व्यवस्थितः।
(अग्निदै०)यानं विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

अधिमासे प्रजापतिदैवतान् त्रयस्त्रिंशदपूपान् साज्यान् सहिर-

ण्यान् कांस्यपात्रे संस्थाप्य संपूज्य पापक्षयपूर्वकधनपुत्राद्यभिवृद्धि-द्वारा वसुरुद्रादित्यप्रजापतिवषट्कारात्मकश्रीपुरुषोत्तमदेवमीत्यर्थं—

चन्द्रांशुनिर्मलापूपाः शालितण्डुलनिर्मिताः ।
आहारः सर्वदेवानां ते मे कुर्वन्तु मङ्गलम् ॥
विष्णुरूपो सहस्रांशुः सर्वपापप्रणाशनः ।
अपूपान्नप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु ॥
यस्य हस्ते गदाचक्रे गरुडो यस्य वाहनः ।
शङ्खः करतले यस्य स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥
कलाकाष्ठादिरूपेण निमेषघटिकादिना ।
यो वञ्चयति भूतानि तस्मै कालात्मने नमः ॥
कुरुक्षेत्रमयं देशः कालः पर्व द्विजो हरिः ।
पृथ्वीसममिदं दानं गृहाण पुरुषोत्तम ॥
मलानां च विशुद्ध्यर्थं पापप्रशमनाय च ।
पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थं तव दास्यामि भास्कर ॥ इति–

मन्त्रैर्दत्त्वा– नारायण जगद्बीज भास्करप्रतिरूपक ।
दानेनानेन पुत्रांश्च सम्पदं चाभिवर्धय ॥

इति संप्रार्थ्य दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं दक्षिणां दद्यात् ।

इति दानानि ।

अथ शान्तयः ।

तत्र सर्वशान्तिप्रकृतिभूतायाः ग्रहशान्तेः संस्कारदीपकस्य प्रथ-मभागे निरूपितत्वात्, प्रथमरजोदर्शनशान्तेश्च गर्भाधानसंस्कारप्रस-ङ्गेन द्वितीयभागे निरूपितत्वात्, वास्तुशान्तेश्च गृहदानप्रसङ्गेन परि-शिष्टदीपकस्य दानप्रकरणे निरूपितत्वात् काश्चित् जननशान्तयोऽत्र प्रदर्श्यन्ते ।

तत्रादौ मूलादिबहुशान्तिभिः सह समुच्चयेनानुष्ठेयत्वाद्—

गोमुखप्रसवविधिर्लिख्यते ।

स च गोमुखप्रसवो 'मूलादिशान्तिषु प्रथमं कार्य्यः । तदुक्तं प्रयोगपारिजाते गर्गेण—

(१)पित्ररिष्टे मात्ररिष्टे सुतारिष्टे तथैव च।
प्रायश्चित्तं तदा कुर्यात्तत्तद्दोषस्य शान्तये ॥
पूषाऽश्विनौ गुरुः सार्प्पं मघा चित्रेन्द्रमूलभे।
ऋक्षेष्वेतेषु जातस्य कुर्याद्‌ गोजननं (२)तथा ॥
जन्मर्क्षे वा त्रिजन्मर्क्षे शुभवारे शुभे दिने।
कृत्वाऽभ्यङ्गादिकं सर्वं गृहालङ्कारपूर्वकम् ॥
गोमयेनोपलिप्याऽथ गृहस्येशानभागके।
पङ्कजं कर्णिकायुक्तं रजोभिः श्वेतवर्णकैः ॥
व्रीहींस्तत्र विनिक्षिप्य यथावित्तानुसारतः।
नवशूर्प्पं तु तन्मध्ये रक्तवस्त्रं प्रसारयेत् ॥
स्थापयित्वा शिशुं तत्र पुनः सूत्रेण वेष्टयेत्।
प्राङ्मुखं (प्राग्दिङ्मस्तकं) तमवाक्पादं तिलगर्भगतं शिशुम् ॥
गोमुखं दर्शयित्वा तु पुनर्जातं तु गोमुखात्।
विष्णुर्योनीति सूक्तेन गव्येन स्नापयेच्छिशुम् ॥
गवामङ्गेषुमन्त्रेण गवामङ्गेषु संस्पृशेत्।
विष्णोःश्रेष्ठेनमन्त्रेण गोमसूतं तु बालकम् ॥
आचार्यस्तु समादाय पश्चान्मात्रे ददेत्तदा।
माता जघनभागस्था शिशुमादाय तन्मुखात् ॥
ततः पित्रे तु सा दद्यात्ततो मात्रे स दापयेत् (दद्यात्)।
वस्त्रे स्थाप्य पिताऽस्याथ पुत्रस्य मुखमीक्षयेत् [ईक्षेत] ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्प्पिश्च संयुतम्।
आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैरभिषिंचेत्ततः शिशुम् ॥
मूर्ध्नि चाघ्राय तं पुत्रं तन्मन्त्रेण(अङ्गादङ्गादित्यनेन)तदा पिता।
मूर्धनि त्रिरवघ्राय तं शिशुं स्थापयेत्ततः ॥

---

(१) अत्र पित्ररिष्टादिशब्दाः तत्तदरिष्टसूचकनक्षत्राविजननबोधकाः।

(२)तथाशब्दः चार्थे। तच्चच्छान्तिरूपं प्रायश्चित्तं, गोजननं च कुर्यादित्यर्थः।

पुण्याहं वाचयेत्पश्चाद्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
दरिद्रायाथ विप्राय तां गामभ्यर्च्य दापयेत् [दद्यात्] ॥
गोवस्त्रस्वर्णधान्यानि दद्यादर्कादितः(सूर्यादिग्रहेभ्यः)क्रमात् ।
यथाशक्ति धनं दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तदा पिता ॥
ततो होमं[होमोपक्रमं]प्रकुर्वीत स्वस्वशाखोक्तमार्गतः ।
उल्लेखनादिकं कृत्वा आज्यभागान्तमाचरेत् ॥
[होमस्थलस्य]होमस्येशानदिग्भागे धान्योपरि घटं शुभम् ।
स्थापयित्वा, पञ्चगव्यं तिलांश्चात्र विनिक्षिपेत् ॥
क्षीरद्रुमकषायांश्च पञ्चरत्नानि च क्षिपेत् ।
वस्त्रयुग्मेण सञ्छाद्य गन्धादिभिरथार्चयेत् ॥
विष्णुं वरुणमभ्यर्च्य प्रतिमां च(१) विधानतः ।
यतइन्द्रादिभिर्मन्त्रैः कुम्भं स्पृष्ट्वाऽभिमन्त्रयेत् ॥
दधिमध्वाज्ययुक्तेन[योगेन]होमं कुर्याद्विधानतः ।
आपोहिष्ठेति तिसृभिरप्सुमेसोम इत्यथ ॥
तद्विष्णोःपरमंपदमक्षीभ्यामिति सूक्ततः ।
ऋग्भिराभिः प्रत्यृचं च अष्टाविंशतिसंख्यया ॥
अशक्तौ चाष्टसंख्यं वा, दधिमध्वाज्यसंयुतम् ।
आदित्यादिग्रहाणां च होमं कुर्य्यात्समन्त्रकम् ॥ इति ।

आदित्यादिग्रहाणां च होमं दधिमध्वाज्यसंयुतं कुर्यात् इत्यन्वयः । पुनर्दध्यादिपदोपादानसामर्थ्यात् ॥

अथ गोमुखप्रसवप्रयोगः ।

जातस्य बालस्य पिता जननक्षत्रदिवसे, अन्यस्मिन् शुभदिने, नामकर्मदिवसे एव वा शुद्धदेशे शुभासने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य शान्तिपाठं (स्वस्तिवाचनं) कृत्वा अर्घं संस्थाप्य गणेशं नमस्कृत्य सम्पूज्य च प्रधानसंकल्पं कुर्य्यात् ।

---

(१) अग्रे अक्षीभ्यामिति सूक्तेन होमविधानात् तत्सूक्तप्रतिपाद्ययक्ष्मघ्नदेवताप्रतिमापूजनं समुन्नीयते ।

अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहम् अमुकराशेरस्य शिशोरमुकनक्षत्रोत्पत्तिसूचितारिष्टनिरसनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीतये गोमुखप्रसवं करिष्ये। तत्पूर्वाङ्गत्वेन मातृपूजाभ्युदयिकपुण्याहवाचनानि, आचार्य्यस्य पूजनपूर्वकं वरणं च करिष्ये इति सङ्कल्प्य आचार्य्यवरणान्तं यथाविधि कुर्य्यात्।

तत आचार्य्यः उपलिप्तभूमौ श्वेताष्टदलपङ्कजं विलिख्य तन्मध्ये यथाशक्ति द्रोणादिप्रमाणव्रीहीन्निक्षिप्य तत्र नवीनं शूर्प्पं निधाय तस्मिन् रक्तवस्त्रं प्रसार्य्य तिलपूरितं कृत्वा तस्मिन् तिलगर्भगतं शिशुं प्राङ्मस्तकं प्रत्यक्पादं कृत्वा सशूर्प्पं शिशुं रक्तसूत्रेणावेष्ट्य शिशुसमीपे गोमुखमानीय गोमुखात्प्रसवं भावयित्वा शिशुं "विष्णुर्योनिम्" इति सूक्तेन मिलितेन पञ्चगव्येन (शतपथान्तोक्तेन) स्नापयेत् अभ्युक्षेद्वा।

ॐविष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिꣳशतु।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भन्दधातु ते॥ १॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके।
गर्भं ते ऽअश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ॥ २॥
हिरण्ययी ऽअरणी याभ्यां निर्म्मन्थतामश्विनौ देवौ।
तं ते गर्भं दधामहे दशमे मासि सूतवे॥ ३॥ इति—

पञ्चगव्येन शिशुं स्नापयित्वाऽभ्युक्ष्य वा—

ॐगवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्द्दश।
यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च।

इति मन्त्रेण गोः सर्वाङ्गेषु स्पृशेत्। तत आचार्य्यः प्रसूतं बालकं—

ॐविष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्य्यां गवीन्याम्।
पुमांसं पुत्रानाधेहि दशमे मासि सूतवे॥ [ऋ.अष्ट.८।८।परि.]

अनेन मन्त्रेण समादाय गोजघनभागस्थायै मात्रे दद्यात्। माता च बालकं गोमुखपर्य्यन्तमानीय पित्रे दद्यात्। ततः पिता मात्रे दद्यात्। माता च नववस्त्रे स्थापयेत्। ततः पिता नववस्त्रस्थितस्य

पुत्रस्य मुखं पश्येत् । तत आचार्यः आपोहिष्ठेति तिसृभिः पञ्चगव्येन शिशुमभिषिञ्चेत् । ततः पिता—

ॐ अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥

इति मन्त्रेण मूर्ध्नि शिशुं त्रिरवघ्राय मात्रे दद्यात् । ततः "पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु" इति ब्राह्मणान्पुण्याहं वाचयित्वा तां गां दरिद्राय कुटुम्बिने ब्राह्मणाय अद्येत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहम् अमुकराशेरस्य बालकस्य अमुककालोत्पत्तिसूचितारिष्टनिरसनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं कृतैतद्गोमुखप्रसवकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थमिमां सवत्सां गां रुद्रदैवतां ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे इति संकल्प्य दत्त्वा दानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं दक्षिणां दद्यात् । ततः प्रत्येकं ग्रहाणां प्रीतये गोवस्त्रसुवर्णादि यथाशक्ति दत्त्वा भूयसीं दद्यात् ।

तत आचार्यो वेद्यां (स्थण्डिले) पञ्चभूसँस्कारपूर्वकमग्निं संस्थाप्य तदीशाने—

महीद्यौरित्यादिना कलशद्वयम् उदक्संस्थं स्थापयेत् । तत्रैकस्मिन्कलशे यथाविधि ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहानावाह्य पूजयेत् । ततो द्वितीये पञ्चरत्नपञ्चपल्लवादीन्निक्षिप्य पञ्चगव्यं तिलान् क्षीरद्रुमत्वक्कषायांश्च निक्षिप्य वस्त्रयुग्मेण सञ्छाद्य गन्धादिभिरभ्यर्च्य पूर्णपात्रोपरि ताम्रपात्रे अग्न्युत्तारितासु पञ्चगुञ्जाऽन्यूनसुवर्णप्रतिमासु उदक्संस्थं देवतात्रयं स्थापयेत् ।

ॐ तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम्" ॥ इति विष्णुं,

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न ऽआयुः प्रमोषीः ॥ इति वरुणं,

ॐ अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया विवृहामि ते ॥

इति यक्ष्महणं चावाहनपूर्वकं संस्थाप्य "एतन्ते" इति पठित्वा ॐभूर्भुवः स्वः विष्णुवरुणयक्ष्महणः इहागच्छन्त्विह तिष्ठन्तु सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु इति प्रतिष्ठाप्य अर्घं संस्थाप्य पूजासंकल्पं कुर्यात्–अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहम् अमुकराशेरस्य बालकस्य अमुककालोत्पत्तिसूचितारिष्टनिरसनाय कलशे सुवर्णप्रतिमासु आवाहितानां विष्णुवरुणयक्ष्मघ्नां यथामिलितोपचारैः पूजनं करिष्ये। तत्रादौ विष्णुध्यानम्—

प्रदक्षिणं दक्षिणाधःकरादारभ्य नित्यशः।
विष्णुः कौमोदकी–पद्म–शङ्ख–चक्रधरः स्मृतः॥

वरुणध्यानम्–नागपाशधरो रक्तभूषणः पद्मिनीप्रियः।
वरुणोऽम्बुपतिः स्वर्णवर्णो मकरवाहनः॥

यक्ष्मघ्नो ध्यानम्–क्षुत्क्षामोऽधोमुखो नग्नचारी काकसमस्वरः।
यक्ष्मा चैवंविधः सृष्टो ब्रह्मणा तपसो निधिः॥ इति।

एवं सर्वान् ध्यात्वा पूर्वोक्तमन्त्रैरर्घ्यादिनीराजनान्तं संपूज्य–कुम्भं स्पृशन्निमान्मन्त्रान् पठेत्–(ऋक्सं. अष्ट. ६।४।३८–३९)

ॐयत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्विद्विषो विमृधो जहि॥
त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे॥

इन्द्रः स्पळुत वृत्रहा परस्पानो वरेण्यः।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात्पातु नः पुरः॥
त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र निपाहि विश्वतः।
आरे अस्मत् कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः॥
अद्याद्या श्वःश्व इन्द्रत्रा स्वपरे च नः।
विश्वा च नो जरितॄन् सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः॥
प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः संमिश्लो वीर्याय कम्।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो निया वज्रं मिमिक्षतुः॥ इति।

ततो द्रव्यत्यागं यजमानो द्रव्यदेवताभिध्यानपूर्वकं कुर्यात्–अद्येह अमुकोऽहं गोमुखप्रसवशान्तिकर्म्मणा यक्ष्ये । तत्र प्रजापत्यादीनाज्येन–विष्णुं "तद्विष्णोः" इति ऋचा अष्टाविंशति–अष्टान्यतरसंख्याहुतिभिः, वरुणम् "आपोहिष्ठा" इति तिसृभिः "अप्सु मे सोम" इत्यनया च प्रत्यृचमुक्तसंख्याहुतिभिः, यक्ष्महरणम् "अक्षीभ्याम्" इति सूक्तेन प्रत्यृचमुक्तसंख्याहुतिभिः, ग्रहांश्च तत्तन्मन्त्रैरुक्तसंख्याहुतिभिः मिश्रितदधिमध्वाज्यद्रव्यैः-शेषेण स्विष्टकृतम्–अग्न्यादिप्रजापत्यन्तांश्चाज्येनाहं यक्ष्ये । इदं सम्पादितं दधिमध्वाज्यद्रव्यं पूर्वाङ्गदेवताभ्यः प्रधानदेवताभ्य उत्तराङ्गदेवताभ्यश्च मया परित्यक्तं यथादैवतमस्तु न मम इति ।

तत आचार्यः ब्रह्मोपवेशनादिपर्युक्षणान्तं कर्म कृत्वा वरदनामानमग्निम् "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य अग्न्यादिपूजनं कृत्वा अग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं संस्थाप्य ब्रह्मणाऽन्वारब्धः आघारावाज्यभागौ च हुत्वा अनन्वारब्धः प्रधानं होमं कुर्यात् ।

तत्र प्रथमं [तद्विष्णोरिति मेधातिथिर्ऋषिर्गायत्री छन्दो विष्णुर्देवता मिलितदधिमध्वाज्यहोमे विनियोगः] ।

ॐ तद्विष्णोः परमं पद्ꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम्–स्वाहा–इत्यनया अष्टाविंशति–अष्टान्यतरसंख्यया विष्णवे हुत्वा-

[आपोहिष्ठेति तिसृणां सिन्धुद्वीपऋषिर्गायत्रीछन्द आपो देवता मिलितदधिमध्वाज्यहोमे विनियोगः] **ॐ आपोहिष्ठा०** पूर्वोक्तसंख्यया वरुणाय हुत्वा–

ॐ यो वः० पूर्वोक्तसंख्यया वरुणाय हुत्वा—

ॐ तस्माऽअरं० पूर्वोक्तसंख्यया वरुणाय हुत्वा—

(अप्सु मे सोम इति मेधातिथिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आपो देवता मिलितदधिमध्वाज्यहोमे विनियोगः) । [ऋक्सं. अष्ट. १।२।११]

ॐ अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।

अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः-स्वाहा इत्यनया च पूर्वोक्तसंख्यया वरुणाय हुत्वा—

[अक्षीभ्यामिति षण्णां काश्यपो विवृहा ऋषिरनुष्टुप्छन्दो यक्ष्महा देवता मिलितदधिमध्वाज्यहोमे विनियोगः]। ऋक्सं. अष्ट. ८।८। २१]

ॐअक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि। यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया विवृहामि ते-स्वाहा १ इत्यनया उक्तसंख्यया यक्ष्मघ्ने हुत्वा-ॐग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्। यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां विवृहामि ते-स्वाहा २ उक्तसंख्यया यक्ष्मघ्ने हुत्वा-ॐआन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि। यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो विवृहामि ते—स्वाहा ३ उक्तसंख्यया यक्ष्मघ्ने हुत्वा—ॐऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्। यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद् भंससो विवृहामि ते-स्वाहा ४ उक्तसंख्यया यक्ष्मघ्ने हुत्वा-ॐमेहनाद्वनं करणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः। यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं विवृहामि ते-स्वाहा ५ उक्तसंख्यया यक्ष्मघ्ने हुत्वा—ॐअङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि। यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं विवृहामि ते—स्वाहा ६ इत्यनया च अष्टाविंशत्यष्टान्यतरसंख्यया दधिमध्वाज्यं यक्ष्मघ्ने हुत्वा, नवग्रहमन्त्रैश्च उक्तसंख्यया दधिमध्वाज्यं नवग्रहेभ्यो हुत्वा, स्विष्टकृदादिकर्मशेषं कुशकण्डिकाप्रयोगोक्तरीत्या समापयेत् ॥

इति गोमुखप्रसवशान्तिः।

अथ सर्वसाधारणशान्तयः।

गर्गः—दिनक्षये व्यतीपाते व्याघाते विष्टिवैधृतौ।

शूले गण्डेऽतिगण्डे च परिघे यमघण्टके॥ १ ॥

कालदण्डे मृत्युयोगे दग्धयोगे सुदारुणे।

तस्मिन्गण्डदिने प्राप्ते प्रसूतिर्यदि जायते ॥ २ ॥
विचार्य्य तत्र दैवज्ञः शान्तिं कुर्य्याद्यथाविधि ।
यजनं देवतानां च ग्रहाणां चैव पूजनम् ॥ ३ ॥
दीपं शिवालये शक्त्या घृतेन परिदापयेत् ।
अभिषेकं शंकराय ह्यश्वत्थस्य प्रदक्षिणम् ॥ ४ ॥
आयुर्वृद्धिकरं जाप्यं सर्वारिष्टविनाशनम् ।
गुरुदैवतविप्राणां पूजनं गोत्रवर्द्धनम् ॥ ५ ॥
गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युञ्जयं शुभम् ।
शान्तिजाप्यं रुद्रजाप्यं कृत्वा मृत्युञ्जयो भवेत् ॥ ६ ॥
मूले वा सार्प्पगण्डेषु कुर्य्यादेतानि यत्नतः । इति ।

अथ मूलशान्तिविधिः ।

विधानपारिजाते शौनकः—

अथातः संप्रवक्ष्यामि मूलजातहिताय वै ।
मातापित्रोर्धनस्यापि कुलज्ञातिहिताय च ॥ १ ॥
त्यागो वा मूलजातानां स्यादष्टाब्दात्तु दर्शनम् ।
(१)अभुक्तमूलजातानां परित्यागो विधीयते ॥ २ ॥
अदर्शने वाऽपि पितुः सोऽपि तिष्ठेत्समाष्टकम् ।
एवं दुहितरि प्रोक्तं मूलजायां फलं बुधैः ॥ ३ ॥

ग्रन्थान्तरे कन्यायाः फलमन्यथा पठ्यते । यथा—

न बाला हन्ति पितरं मूलर्क्षे मातरं तथा ।
मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा श्वशुराङ्गनाम् ॥
माहेन्द्रजाऽग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदेवजा । इति ।
तत्र शान्तिः पुष्कला चेत्तर्हि दोषो न कश्चन ।
मुख्यं कालं प्रवक्ष्यामि शान्तिहोमस्य यत्नतः ॥ ४ ॥
जातस्य द्वादशाहे वा जन्मर्क्षे वा शुभे दिने ।

---

(१) अभुक्तमूलमाह वसिष्ठः—

ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् ।
अभुक्तमूलमित्याहुर्जातं तत्र विवर्जयेत् ॥ इति ।

समाष्टके द्वादशाब्दे कुर्य्याच्छान्तिकमादरात् ॥ ५ ॥
यदैव शान्तिकं कुर्य्यात्कर्म्म तत्र प्रचक्ष्महे ।
संस्कृते पुण्यदेशे तु मण्डपं कारयेद्बुधः ॥ ६ ॥
मन्त्राभिमन्त्रितैस्तोयैः प्रोक्षितायां क्षितौ ततः ।
तत्रोदकुम्भं सुश्लक्ष्णं रक्तं व्रणविवर्जितम् ॥ ७ ॥
सुवर्त्तुलं च निर्णिक्तं कारयेन्निर्म्मलाम्भसा ।
वस्त्रावगुण्ठितं कुर्य्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा ॥ ८ ॥
कूर्चहेमसमायुक्तं चूतपल्लवशोभितम् ।
स्वस्तिकोपरि विन्यस्य सक्षीरद्रुमपल्लवम् ॥ ९ ॥
द्रोणव्रीहींश्च निक्षिप्य चेशाने च निधापयेत् ।
पञ्चरत्नानि निक्षिप्य सर्वौषधिसमन्वितम् ॥ १० ॥
अर्चितं गन्धपुष्पाद्यैः श्रीरुद्रं च (कुम्भं)स्पृशन् जपेत् (१) ।
षडङ्गसहितं शान्त्यै जपेद्वै रुद्रसंख्यया ॥ ११ ॥
बह्वृचो रुद्रसूक्तैर्वा छन्दोगो रुद्रसामभिः ।
एकादशाष्टत्रिद्व्येकसंख्यया शक्तितो जपेत् ॥ १२ ॥
(२)तत्राप्रतिरथं सूक्तं शतरुद्रानुवाककम् ।
रक्षामन्त्रं तथा पुण्यं रक्षोघ्नं च स्पृशञ्जपेत् ॥ १३ ॥
त्र्यम्बकं जपेत्सम्यगष्टोत्तरसहस्रकम् ।
एकवारं तथा जाप्यो पावमानीः स्पृशन् जपेत् ॥ १४ ॥
(३)जपस्य पञ्च कुम्भाः स्युर्द्वयं वा तदलाभतः ।

---

(१) "तत्कुम्भपञ्चप्रतिमां तस्मै दद्यात्प्रयत्नतः" इत्यन्ते दर्शनात् पूर्णपात्रोपरि रुद्रप्रतिमां पूजयित्वा जपः कार्यः ।

(२) "आशुः शिशान"इति अप्रतिरथं, "नमस्ते"इति षोडशर्चं शतरुद्रानुवाकं, "त्वं यविष्ठ दाशुषः" इति वा "रक्षोहणं वलगहनम्"इति वा रक्षामन्त्रम्, "कृणुष्व पाज" इति पञ्चर्चं रक्षोघ्नं च एकादशवारं कुम्भं स्पृशन् जपेत् इत्यर्थः । पूर्वोपस्थितसंख्यान्वयस्यौचित्यात् ।

(३) अत्रायं सम्प्रदायः । आद्यपक्षे षट् कुम्भाः-एको रुद्रस्य-तस्मिन् शतरुद्रियं, चत्वारि रुद्रसूक्तानि, एकादश रुद्रसामानि च जप्यानि । अभिषेकार्थं पञ्चकुम्भाः-तत्र कुम्भचतुष्टये"तत्राप्रतिरथं सूक्तं शतरुद्रा-

श्रीरुद्रस्यैककुम्भश्च सर्व(रुद्र)सूक्तानि तत्र तु ॥ १५ ॥
तथाऽन्यं च शुभं कुम्भं पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम् ।
चतुष्प्रस्रवणं कुर्यात्पञ्चवक्त्रं तु तद्भवेत् ॥ १६ ॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकात्संगमाद्ध्रदगोकुलात् ।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय[तस्मिन्]निक्षिपेत् ॥ १७ ॥
कुम्भस्य नैरृते देशे होमस्थानं प्रकल्पयेत् ।
गोमयालेपिते देशे कुर्यात्स्थण्डिलमुत्तमम् ॥ १८ ॥

मण्डपपक्षेऽपि स्थण्डिलमेव । मण्डपमुपक्रम्यैव स्थण्डिलविधानात् ।

कृत्वाऽग्निमुखपर्यन्तमुल्लेखादि स्वशास्त्रतः [स्वशाखतः] ।
पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा पूजां (तत्सामग्रीं) समारभेत् ॥१९॥
नक्षत्रदेवतारूपं सुवर्णेन प्रयत्नतः ।
निष्कमात्रेण वाऽर्द्धेन पादेनाथ स्वशक्तितः ॥ २० ॥
प्रतिमां लक्षणोपेतां कारयित्वा विचक्षणः ।
यद्वा मूल्यं सुवर्णस्य स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ॥ २१ ॥

मूल्यमिति प्रतिमामूल्यमित्यर्थः ।

सुवर्णं सर्वदेवत्यं सर्वदेवात्मकोऽनलः ।
सर्वदेवात्मको विप्रः सर्वदेवमयो हरिः ॥ २२ ॥
संस्मरेन्निर्ऋतिं श्यामं सुमुखं नरवाहनम् ।
रक्षोऽधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम् ॥ २३ ॥
प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं प्रकल्पयेत् ।
पङ्कजं कारयेद्भूमौ रञ्जितैर्व्रीहितण्डुलैः ॥ २४ ॥
चतुर्विंशद्दलोपेतं शुक्लैर्वा कर्णिकान्वितम् ।

नुवाककम् । रक्षामन्त्रं तथा पुण्यं रक्षोघ्नं च स्पृशन् जपेत्" ॥ इत्युक्तविधा क्रमात् अप्रतिरथसूक्तादिचतुष्टयविधिः, मध्यकुम्भे त्र्यम्बकमन्त्रपावमानीजपविधिः ।

एवं पञ्चकुम्भाशक्तौ चतुष्प्रस्रवण एक एव । द्वयं वा तदलाभत इति द्वित्वं तु रुद्रकुम्भमादायेति ।

चतुष्प्रस्रवणमेव पञ्चकुम्भस्थाने कुर्यात् । एवं पञ्चवक्त्रं भवेत् ।

तस्योपरि न्यसेत्पात्रं(कलशं)सौवर्णं रौप्यमृन्मयम् ॥२५॥
शुद्धवस्त्रेण संछाद्य तत्र मूलानि निक्षिपेत् ।
मूलानि शतमूलानि स्वयमुत्पाटयेत्पिता ॥ २६ ॥
मङ्गल्याश्च पवित्राश्च [याः] ओषध्यः, [ताः] कथयाम्यहम् ।
आसां मूलानि गृह्णीयाच्छतालाभे विशेषतः ॥ २७ ॥
विष्णुक्रान्ता सहदेवी तुलसी च शतावरी ।
स्थापयेत्कर्णिकामध्ये वस्त्रगन्धाद्यलंकृतम् ॥ २८ ॥
कूर्चहेमजलोपेतं कुम्भमोषधिसंयुतम् । कूर्चो दर्भस्तम्बः ।
कुम्भोपरि न्यसेद्विद्वान्मूलनक्षत्रदैवतम् ॥ २९ ॥
अधिप्रत्यधिदेवौ च दक्षिणोत्तरदेशतः ।
अधिदेवं यजेदादौ ज्येष्ठानक्षत्रदैवतम् ॥ ३० ॥
पूर्वाषाढाप्रत्यधिदैवतं पूजयेत्ततः ।
उत्तराषाढमारभ्य अनुराधान्तमर्चयेत् ॥ ३१ ॥
ऐन्द्रादीशानपर्यन्तं पूजयेत्स्वस्वनामतः ।
स्वलिङ्गोक्तैश्च मन्त्रैश्च प्रधानादीन्प्रपूजयेत् ॥ ३२ ॥

लिङ्गोक्ता मन्त्रा "यं ते देवी" इत्यादयः । भूमिष्ठचतुर्विंशतिदलेषु पूर्वदलमारभ्य चतुर्विंशतिनक्षत्राणि स्थाप्यानीत्यर्थः । नक्षत्रदेवताः स्थाप्या इत्यन्ये ।

पञ्चामृतेन संस्नाप्य आवाह्याथ समर्चयेत् ।
उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ॥ ३३ ॥
रक्तचन्दनगन्धाद्यैः पुष्पैश्चैव सितासितैः ।
मेषशृङ्गादिधूपैश्च घृतदीपैस्तथैव च ॥ ३४ ॥
सुरापोलिकमांसाद्यैर्नैवेद्यैश्चौदनादिभिः ।
मत्स्यमांससुरादीनि ब्राह्मणश्च विवर्जयेत् ॥ ३५ ॥
सुरास्थाने प्रदातव्यं क्षीरं सैन्धवमिश्रितम् ।
पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रदापयेत् ॥ ३६ ॥
रक्तगन्धाद्यलाभे तु यथालाभं समर्चयेत् ।

पुष्पाञ्जल्यन्तमभ्यर्च्य होमं कुर्याद्यथोदितम् ॥ ३७ ॥
निर्वापप्रोक्षणादीनि चरोः कुर्याद्यथाविधि ।
हविर्गृहीत्वा विधिवन्नैर्ऋत्यैव ऋचा हुवेत् ॥ ३८ ॥
(१)"मोषु णः परापरेति" "यं ते देवीति" वा पुनः ।
पायसं घृतसम्मिश्रं हुवेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ३९ ॥
समिदाज्यचरून् पश्चाच्छक्तितः संख्यया हुवेत् ।
अधिदैवतयोश्चापि जुहुयात्स्वस्वमन्त्रतः ॥ ४० ॥
चतुर्थ्यन्तैर्नमोऽन्तैश्च स्वाहान्तैश्च स्वमन्त्रकैः । (नाममन्त्रैः)
नक्षत्रदेवताभ्यश्च पायसेन तु होमयेत् ॥ ४१ ॥
कृणुष्वेति पञ्चदशर्ग्भिः जुहुयात्कृसरं ततः ।
गायत्र्या, जातवेदसे, त्र्यम्बकमिति[कृसरं जुहुयात्]क्रमात् ॥४२
सीरा युञ्जन्ति, तामग्नि, वास्तोष्पत्यग्निमेव च ।
क्षेत्रस्य पतिना, गृणाना, अग्निं दूतं तथैव च[कृसरं जु०]॥४३
श्रीसूक्तेन तथा विद्वान् समिदाज्यचरून् क्रमात् ।
अष्टोत्तरशतैर्वापि अष्टाविंशतिभिः क्रमात् ॥ ४४ ॥
अष्टाष्टसंख्यया वाऽपि जुहुयाच्छक्तितो बुधः ।
त्वं नः सोमेन जुहुयात् पायसं तु त्रयोदश ॥ ४५ ॥
चतुर्गृहीतमाज्यं च यातेरुद्रेति मन्त्रतः ।
स्रुवेण जुहुयादाज्यं महाव्याहृतिभिः क्रमात् ॥ ४६ ॥
हुत्वा स्विष्टकृतं पश्चात् प्रायश्चित्ताहुतीर्हुवेत् ।
आचार्य्यो यजमानो वा वह्नौ पूर्णाहुतिं हुवेत् ॥ ४७ ॥
समुद्रादिति सूक्तेन, प्राजापत्यऋचा [प्रजापते नेति] तथा ।
पूर्णादर्वि, सप्तते अग्ने एतैः पूर्णाहुतिं हुवेत् ॥ ४८ ॥

---

(१) मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणाऽवधीत् ।
पदीष्ट तृष्णया सह ॥ (ऋक्सं० अ१० १।३।१६) ।
यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् ।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः ॥
(य० सं० अध्या० १२ । कं० ६५) अनयोः शाखाभेदेन व्यवस्था ।

होमशेषं समाप्याथ वह्निमारोपयेद् बुधः।

लौकिकाग्निपक्षे न समारोपः।

कुम्भाभिमन्त्रणं कुर्याद्दक्षिणेनाभिमर्शयेत् ॥ ४९ ॥

मृत्युप्रशमनायाथ जपेत्त्रैयम्बकं शतम्।

रुद्रकुम्भोक्तमार्गेण रुद्रमन्त्रं स्पृशन् जपेत् ॥ ५० ॥

रुद्रकुम्भं स्पृशन् पूर्वोक्तरुद्रादिमन्त्रं जपेदित्यर्थः।

धूपदीपौ च नैवेद्यं कुम्भयुग्मे निवेदयेत्।

कुम्भयुग्मे–रुद्रकुम्भे निर्ऋतिकुम्भे च।

प्रसादयेत्ततो देवमभिषेकार्थमादरात् ॥५१॥ निर्ऋतिं रुद्रं च।

तस्मिन्काले ग्रहातिथ्यं कर्तव्यं भूतिमिच्छता।

पृथक् प्रशस्तं, तेनैव नक्षत्रेष्ट्या सहैव वा ॥ ५२ ॥

ग्रहातिथ्यं ग्रहयागः। तेनैव मूलशान्त्यग्निनैव। नक्षत्रेष्ट्या मूलशान्त्या।

अभिषेकविधिं वक्ष्ये पूर्वाचार्य्यैरुदाहृतम्।

भद्रासनोपविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजः ॥ ५३ ॥

दारपुत्रसमेतस्य कुर्युः सर्वेऽभिषेचनम्।

अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च ॥ ५४ ॥

आपोहिष्ठेति नवभिर्यतइन्द्रद्वयेन च।

सहस्राक्षतृचेनापि देवस्यत्वेति मन्त्रकैः ॥ ५५ ॥

शिवसंकल्पमन्त्रेण वक्ष्यमाणैश्च मन्त्रकैः।

वक्ष्यमाणा मन्त्रा "योऽसौ वज्रधर" इत्यादयः प्रयोगे वक्ष्यन्ते।

तच्छंयोरभिषेकं तु सर्वदोषोपशान्तिदम् ॥ ५६ ॥

सर्वकामप्रदं दिव्यम् मङ्गलानां च मङ्गलम्।

वस्त्रान्तरितकुम्भाभ्यां पश्चात्तु स्नपयेद्बुधः ॥ ५७ ॥

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः।

यजमानो दक्षिणाभिस्तोषयेदृत्विगादिकान् ॥ ५८ ॥

धेनुं [कृष्णां] पयस्विनीं दद्यादाचार्य्याय सवत्सकाम्।

निर्ऋतिप्रतिमां वस्त्रं हेम कुम्भं च दापयेत् ॥ ५९ ॥
वस्त्रकुम्भौ निर्ऋतिसंवन्धिनौ, हेम स्वतन्त्रं यथाशक्ति।
ग्रहाणां प्रतिमा वस्त्रं तत्तज्जापेभ्य अर्पयेत् ।
श्रीरुद्रजापिने देयः कृष्णोऽनड्वान्प्रयत्नतः ॥ ६० ॥
इतरेभ्योऽपि विप्रेभ्यो यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ।
उक्तालाभे तथा दद्यादाचार्य्यब्रह्मऋत्विजाम् ॥ ६१ ॥
तत्तन्मूल्यं प्रदातव्यं शक्त्या वाऽथ प्रदापयेत् ।
आचार्य्याय च यद्दत्तं तदर्द्धं ब्रह्मणे [देयं] भवेत् ॥ ६२ ॥
सदस्याय ब्रह्मणोऽर्धमृत्विग्भ्यश्च तदर्धकम् ।
गृह्णीयादाशिषस्तेभ्यः प्रणम्याथ क्षमापयेत् ॥ ६३ ॥
दद्यादन्नं पायसादि ब्राह्मणान्भोजयेच्छतम् ।
अलाभे सति पञ्चाशद्, दशकं तदलाभतः ॥ ६४ ॥
सर्वशान्तेश्च पठनं ब्राह्मणैराशिषस्ततः ।
गृही क्षमापयेद्विद्वान्निर्ऋतिः प्रीयतामिति ॥ ६५ ॥
विधाने चरिते ह्यस्मिन् ततः शान्तिर्भवेद्ध्रुवम् ।
गण्डान्तेष्वेवमेव स्यात्सार्पाद्येष्वेवमेव हि ॥ ६६ ॥
"पुष्याद्यर्धे तथैव च" इति शान्तिरत्नादौ पाठः ।

इति शौनकोक्तो मूलशान्तिविधिक्रमः ।

अथ मूलशान्तिप्रयोगः ।

तत्र मूलजातस्य पिता द्वादशाहे वा जन्मनक्षत्रे वा शुभदिनेऽष्टमे मासे वाऽष्टमे वर्षे वा द्वादशाब्दे वा मूलशान्त्यर्थं मण्डपं शालां वा विधाय पूर्वं गणेशपूजनं कुर्य्यात् । तथाहि शुभासने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य शान्तिपाठं [स्वस्तिवाचनं] कृत्वा अर्घं संस्थाप्य संकल्पं कुर्य्यात् । अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकराशिरमुकशर्म्माऽहम् अमुकराशेः पुत्रस्य कन्याया वा मूलनक्षत्रस्यामुकपादजननशान्तिकर्म्मणि गोमुखप्रसवकर्म्मणि च निर्विघ्नतासिद्ध्ये श्रीमद्भगवतो गणेश्वरस्य पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य गणेशं यथो-

क्तप्रकारेणाभ्यर्च्य तिल–कुश–यव–जलान्यादाय पञ्चाङ्गस्मरणपूर्वकं प्रधानसंकल्पं कुर्य्यात् ।

अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकगोत्रोऽमुकराशिरमुकशर्माहम् अमुकराशेः पुत्रस्य मूलनक्षत्रामुकपादजननसूचितपित्राद्यरिष्टनिवृत्तिपूर्वकसर्वोपद्रवशान्तिद्वारा परमेश्वरप्रीत्यर्थं शुभफलप्राप्तये च शौनकोक्तप्रकारेण गोमुखप्रसवपूर्वकं ग्रहयागसहितां मूलशान्तिं करिष्ये । तत्पूर्वाङ्गत्वेन मातृपूजा–पुण्याहवाचन–नान्दीश्राद्धानि करिष्ये । तथा मूलशान्तिकर्म्मसम्पत्तये आचार्य्यब्रह्मणोः सदस्यस्याष्टानां चतुर्णां वा ऋत्विजां रुद्रैकादशिनी–अप्रतिरथसूक्तादिपाठकर्तॄणां च ब्राह्मणानां पूजनपूर्वकं वरणं करिष्ये इति सङ्कल्प्य मातृपूजा–नान्दीश्राद्ध–पुण्याहवाचनानि यथाविधि विधाय आचार्य्यादीनां पूजनपूर्वकं वरणं च 'मूलशान्तिकर्मणि' इति विशेषमुल्लिख्य तुलादानप्रयोगोक्तरीत्या कृत्वा यजमानः साञ्जलिपुटो भूत्वा "यथाविहितं कर्म्म कुरुध्वम्" इति ब्रूयात् । ते च "करवाम यथामति" इति ब्रूयुः ।

तत आचार्यः सयजमानः उक्तप्रकारेण [२०८] गोमुखप्रसवं पूर्वं विधाय आचम्य प्राणानायम्य मूलशान्तिकर्मणि आचार्यकर्म करिष्ये इति संकल्प्य अर्घस्थापनादिभूतोत्सादनान्तं कर्म कृत्वा यथावद्विहिते मण्डपे शालायां वा ऋत्विक्सदस्यान् यथास्थानं संनिवेश्य पुण्यतीर्थाभिमन्त्रितैस्तोयैः पञ्चगव्येन च आपोहिष्ठेत्यादिभिः भूमिं सम्प्रोक्ष्य मण्डपसत्त्वे मण्डपपूजां तुलादानप्रयोगोक्तरीत्या कृत्वा नैर्ऋत्यां दिशि स्थण्डिलेऽग्निमुपसमाधाय—

मण्डपस्य शालाया वा ऐशान्यां रुद्रकलशं स्थापयेत् । तद्यथा—पञ्चवर्णैः स्वस्तिकं विधाय तत्र द्रोणपरिमितान् व्रीहीन् निक्षिप्य तत्र श्लक्ष्णं रक्तमव्रणं सुवर्तुलं कलशं कलशविधिना संस्थाप्य वस्त्रेण कलशमावेष्ट्य तदुपरि तण्डुलपूर्णे ताम्रादिपात्रे वस्त्रोपरि सुवर्णघटितां श्रीरुद्रप्रतिमाम् अग्न्युत्तारणपूर्वकं पञ्चामृतेन संस्नापितां संस्थाप्य पूजयेत् । तत्र संकल्पः अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं मूलशान्ति-

कर्म्मणि रुद्रकलशे सुवर्णप्रतिमायां श्रीरुद्रस्य पूजनं करिष्ये। "ए-तन्ते" इत्यादि पठित्वा ॐ भूर्भुवः स्वः सुवर्णप्रतिमायां श्रीरुद्र सुप्रतिष्ठितो वरदो भव इति प्रतिष्ठाप्य ध्यायेत्—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

अनेनैव आवाहनासनपाद्यादिभिः श्रीरुद्रं पूजयेत्। उ० स्प० ततो रुद्रकलशादुत्तरत्र चतुर्दिक्षु पूर्वादिषु चतुरः कलशान् मध्ये च पञ्चमं यथाविधि संस्थाप्य तेषु वरुणमावाह्य पूजयेत्।

यद्वा रुद्रकुम्भादुत्तरत्र चतुष्प्रस्रवणमेकमेव कुम्भं स्थापयेत्। चतुष्प्रस्रवणे चास्मिन् कुम्भे पूर्णपात्रोपरि मयूरशिखादीनि शतमूलानि तदलाभे विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, तुलसी, शतावरी, कुशान् तदलाभे शतावरीं केवलां निधाय सामान्यप्राप्तं वरुणं पूजयेत्। चतुष्प्रस्रवणकुम्भयुक्तकुम्भद्वयपक्ष एव सति संभवे माध्यन्दिनैः स्वीकार्यः। "द्वितीयोदकुम्भं कृत्वा चतुष्प्रस्रवणसंयुक्तं तदुपरिष्टान्मूलानि धारयेत्" इति कात्यायनपरिशिष्टोक्तेः। शतमूलानि शान्तिसारादौ द्रष्टव्यानि।

चतुष्प्रस्रवणालाभेन स्वीकृतपञ्चकुम्भपक्षे मध्यकुम्भे पूर्वोक्तमूलानि निदध्यात्। कुम्भचतुष्टयसहितस्य मध्यकुम्भस्य चतुष्प्रस्रवणस्थानापन्नत्वेन तद्धर्मप्राप्तेः।

ततो रुद्रजापकत्वेन वृतो रुद्रकुम्भं स्पृशन् षडङ्गन्यासपूर्वकं साङ्गां रुद्रैकादशिनीं (१) जपेत्।

---

(१) रुद्राध्यायस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा ऋषिः "नमस्ते" इति गायत्री ततस्तिस्रोऽनुष्टुभः ततस्तिस्रः पङ्क्तयः ततः सप्तानुष्टुभः ततो द्वे जगत्यौ, "नमस्ते" इत्यादिषोडशर्चस्य एकरुद्रो देवता। "नमोहिरण्यबाहवे" इत्यादीनि ४५ पञ्चचत्वारिंशद्यजूंषि, तेषां बहुरुद्रा देवताः। "द्रापे अन्धसस्पते" इति उपरिष्टाद्बृहती "इमा रुद्राय" इति जगती "यातेरुद्र" इति अनुष्टुप् "परिणोरुद्रस्य" "मीढुष्टम" इत्येते त्रिष्टुभौ "विकिरुद्र" इत्यादिद्वे अनुष्टुभौ, सप्तानामेकरुद्रो देवता। "असंख्याता सहस्राणि" इत्यादयो दशानुष्टुभः, तासां बहुरुद्रा देवताः। "नमोऽस्तु" इत्यादीनि त्रीणि यजूंषि, तेषां बहुरुद्रा देवताः। कलशे जपे सर्वेषां विनियोगः।

बह्वृचश्चेद्यजमानो रुद्रैकादशिनीं वा रुद्रसूक्तानि वा ऋत्विग्जपेत्। सामगश्चेद्यजमानो रुद्रैकादशिनीं वा रुद्रसामानि वा ऋत्विग्जपेत्। उ०स्प०।

ततः अप्रतिरथादिसूक्तजापकत्वेन वृतः "आशुः शिशान" इति अप्रतिरथं सूक्तम् (पृ० ६२) ऋष्यादि स्मृत्वा एकादशवारं पूर्वकुम्भं चतुष्प्रस्रवणस्य पूर्वप्रस्रवणं वा स्पृशन् जपेत्। "नमस्तेरुद्रमन्यव" इति षोडशर्चं शतरुद्रानुवाकं [पृ० ६०] दक्षिणकुम्भं दक्षिणप्रस्रवणं वा स्पृशन् एकादशवारं जपेत्। रक्षोहणमिति वा (सं०दी०प्र०१६०)"त्वंयविष्ठ दाशुष"इति (१) वा (सं०दी०प्र० १६३) रक्षामन्त्रं पश्चिमकुम्भं पश्चिमप्रस्रवणं वा स्पृशन् एकादशवारं जपेत्। रक्षोघ्नं"कृणुष्वपाज" (२) इत्यादिपञ्चर्चम् [पृ० १६८] उत्तरकुम्भम् उत्तरप्रस्रवणं वा स्पृशन् एकादशवारं जपेत्। मध्यकुम्भं, चतुष्प्रस्रवणस्य मध्यमुखं वा स्पृशन् अष्टोत्तरसहस्रकृत्वः त्र्यम्बकमन्त्रम् (३)' "पुनन्तुमा पितरः" (४) इति पावमानीश्च [पृ० १६९] नव एकवारं जपेत्।

[कुम्भद्वयपक्षे चतुष्प्रस्रवणे द्वितीयकुम्भे पञ्चमुखे पञ्चकुम्भकार्याणि। तत्र मध्यमुखे मध्यकुम्भकार्यं, चतुर्दिग्वर्तिषु चतुर्षु प्रस्रवणेषु चतुष्कुम्भकार्याणीति विवेकः]।

---

(१)"त्वंयविष्ठ" इति उशना ऋषिः गायत्रीछन्दः अग्निर्देवता कलशे जपे विनियोगः।

(२)"कृणुष्वपाज" इति पञ्चर्चस्य वामदेव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः अग्निर्देवता कलशे जपे विनियोगः।

(३)"त्र्यम्बकं यजामहे" इति वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः रुद्रो देवता कलशे जपे विनियोगः।

(४)"पुनन्तु मा पितर" इति नवर्चस्य प्रजापतिर्ऋषिः आद्ये द्वे अनुष्टुभौ पितरो देवताः, तृतीया गायत्री अग्निर्देवता, चतुर्थी अनुष्टुप् देवजन-विश्वभूत-जातवेदसो देवताः, पञ्चम्याग्नेयी अग्निर्देवता, षष्ठी गायत्री अग्निर्ब्रह्मा च देवते, सप्तमी गायत्री सोमो वायुश्च देवते, अष्टमी गायत्री सविता देवता, नवमी त्रिष्टुप् विश्वेदेवा देवताः कलशे जपे विनियोगः।

निर्ऋतिस्थापनार्थं कुम्भस्तु एभ्योऽन्य एव। "तस्योपरि न्यसेत्पात्रम्" इत्यादिना तस्य पृथग्विधानात्। एतेषां च "जपस्य पञ्च कुम्भा" इत्यादिना जपसंबन्धित्वबोधनात्। स च एतेषामुत्तरतः स्थाप्यः। तद्यथा—

शुद्धभूमौ चतुर्विंशतिदलं कमलं कर्णिकाकेसरान्वितं रक्तशुक्लतण्डुलैर्लिखित्वा तन्मध्ये कर्णिकायां सुश्लक्ष्णं रक्तं व्रणवर्जितं सुवर्तुलं सुवर्ण—रजत—ताम्र—मृदन्यतमकुम्भं संस्थाप्य तत्र शतमूलानि मयूरशिखादीनि निक्षिप्य तदभावे विष्णुक्रान्ता—सहदेवी—तुलसी—शतावरी—कुशान् कुङ्कुमं च प्रक्षिप्य तदभावे केवलां शतावरीं प्रक्षिप्य पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा तदुपरि वस्त्रेऽष्टदलं सकर्णिकं विलिख्य कर्णिकायां निष्क-निष्कार्द्ध-तदर्धान्यतमघटितां यथोक्तलक्षणां मूलनक्षत्रस्वामिनिर्ऋतिप्रतिमां सौवर्णीम् अग्न्युत्तारणपूर्वकं पञ्चामृतस्नापितां—

यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम्।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः॥

इति (य० सं० अ० १२।६५) मन्त्रेण मध्ये संस्थाप्य—"एतन्ते" इत्यादि पठित्वा ॐभूर्भुवःस्वः मूलनक्षत्रस्वामिन्निर्ऋते इहागच्छेह तिष्ठ सुप्रतिष्ठितो वरदो भव १ इति निर्ऋतिं प्रतिमायां प्रतिष्ठाप्य तद्दक्षिणभागे अधिदैवतं ज्येष्ठानक्षत्रदेवम् ॐभू० इन्द्र इहागच्छेह तिष्ठेति इन्द्रं प्रतिमायां स्थापयेत् २ तद्वामभागे प्रत्यधिदैवतं पूर्वाषाढादेवं तोयम् ॐभू०तोय इहागच्छेह तिष्ठेति प्रतिमायां स्थापयेत् ३। तत "एतं त" इति प्रतिष्ठापयेत्।

ततो भूमिष्ठचतुर्विंशतिदलेषु अक्षतपुञ्जान् पूगफलानि वा संस्थाप्य तेषु पूर्वादीशानपर्यन्तं उत्तराषाढाद्यनुराधान्तनक्षत्रदेवता यथाक्रमं स्थापयेत्। तत्रायं क्रमः ॐभूर्भुवःस्वः उत्तराषाढादेवाः विश्वेदेवा इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु [सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु] ४ एवं ॐभूर्भुवःस्वः श्रवणदेव गोविन्द इहा० ५ ॐभूर्भुवःस्वः धनिष्ठादेवाः वसवः इ० ६ ॐभूर्भुवःस्वः शतभिषग्देव वरुण इ० ७

७ ॐभूर्भुवःस्वः पूर्वभाद्रपदादेव अजचरण० ८ ॐभूर्भुवःस्वः उत्तराभाद्रपदादेव अहिर्बुध्न्य० ९ ॐभूर्भुवःस्वः रेवतीदेव पूषन्० १० ॐभूर्भुवःस्वः अश्विनोदेवौ दस्रौ इहागच्छतम्० ११ ॐभूर्भुवःस्वः भरणीदेव यम० १२ ॐभूर्भुवःस्वः कृत्तिकादेव अग्ने० १३ ॐभूर्भुवःस्वः रोहिणीदेव ब्रह्मन्० १४ ॐभूर्भुवःस्वः मृगशिरोदेव चन्द्र० १५ ॐभूर्भुवःस्वः आर्द्रादेव रुद्र० १६ उ. स्प.। ॐभूर्भुवःस्वः पुनर्वसुदेवते अदिते० १७ ॐभूर्भुवःस्वः पुष्यदेव गुरो० १८ ॐभूर्भुवःस्वः आश्लेषादेवाः सर्पाः इहागच्छन्तु० १९ ॐभूर्भुवःस्वः मघादेवाः पितरः इहागच्छन्तु २० उ. स्प.। ॐभूर्भुवःस्वः पूर्वफल्गुनीदेव भग० २१ ॐभूर्भुवः स्वः उत्तरफल्गुनीदेव अर्य्यमन्० २२ ॐभूर्भुवःस्वः हस्तदेव रवे० २३ ॐभूर्भुवःस्वः चित्रादेव त्वष्टः० २४ ॐभूर्भुवःस्वः स्वातिदेव वायो० २५ ॐभूर्भुवःस्वः विशाखादेवौ इन्द्राग्नी इहागच्छतम्० २६ ॐभूर्भुवःस्वः अनुराधादेव मित्र इहा० २७ इति क्रमेण संस्थाप्य "एतन्ते" इत्यादि पठित्वा ॐभूर्भुवःस्वः विश्वान्देवान् आरभ्य मित्रपर्य्यन्ता देवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु इति प्रतिष्ठापयेत्।

ततो होमवेद्या ईशाने कलशविधिना कलशं संस्थाप्य तत्र ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहानधिदेवादिसहितानावाह्य(१) सर्वान् पूजयेत्। तत्र पूजासंकल्पः अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकराशिरमुकशर्म्माऽहम् अमुकराशेः पुत्रस्य मूलनक्षत्रामुकपादजननसूचितामुकारिष्टनिवृत्तये शुभफलप्राप्तये च क्रियमाणमूलशान्तिकर्म्मणि सुवर्णप्रतिमासु अधिदेवताप्रत्यधिदेवतासहितस्य मूलाधिष्ठातृदेवस्य निरृतेः, चतुर्विंशतिदलस्थाक्षतपुञ्जेषु उत्तराषाढादिनक्षत्रदेवतानां विश्वदेवादिमित्रान्तानां च पूजनं करिष्ये। तथा कलशे आवाहितानां ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहाणां साधिप्रत्यधिदेवानां, लोक-

(१) गोप्रसवहोमस्य तन्त्रेणाचरणे ग्रहकलशोत्तरतः अपरं कलशम् उक्तरीत्या[२४४]संस्थाप्य तत्र विष्ण्वादीनावाह्य पूर्वोक्तरीत्या पूजयेत्।

पालदिक्पालानां च यथामिलितोपचारैः पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य प्रथमं निर्ऋतिं ध्यायेत्—

संस्मरेन्निर्ऋतिं श्यामं सुमुखं नरवाहनम्।
रक्षोऽधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम्॥

तत इन्द्रं ध्यायेत्—

वराभयकरः साक्षाद्द्विभुजो रक्तवर्णकः।
पद्मासनोपविष्टश्च ध्यातव्यो मघवा नरैः॥

तोयध्यानम्—

पाशयुग्मधरो देवो द्विभुजः श्वेतवाहनः।
ध्यातव्यस्तोयदेवस्तु मीनस्योपरि संस्थितः॥

अन्येषां विश्वदेवादीनां नाममन्त्रैः ध्यानम्। अथ निर्ऋतिम्—

ॐ यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम्।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः॥

इति मन्त्रेण आवाहनासनादिभिः पूजयेत्। अधिदेवप्रत्यधिदेवयोस्तु ॐ अधिदेवाय इन्द्राय नमः ॐ प्रत्यधिदेवाय तोयाय नमः इति नाममन्त्राभ्यामावाहनादिकम्।

एवम् अन्येषां च नाममन्त्रैः पूजनम्। ते यथा ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ॐ गोविन्दाय नमः ॐ वसुभ्यो नमः ॐ वरुणाय नमः ॐ अजचरणाय नमः ॐ अहिर्बुध्न्याय नमः ॐ पूष्णे नमः ॐ दस्राभ्यां नमः ॐ यमाय नमः ॐ अग्नये नमः ॐ ब्रह्मणे नमः ॐ चन्द्राय नमः ॐ रुद्राय नमः (उ. स्प.) ॐ अदितये नमः ॐ गुरवे नमः ॐ सर्पेभ्यो नमः ॐ पितृभ्यो नमः (उ. स्प.) ॐ भगाय नमः ॐ अर्यम्णे नमः ॐ रवये नमः ॐ त्वष्ट्रे नमः ॐ वायवे नमः ॐ इन्द्राग्निभ्यां नमः ॐ मित्राय नमः इति सर्वेषां नाममन्त्रैः पूजनम्। एवं कलशे आदित्यादिनवग्रहाणाम् आकृष्णेनेत्यादिवेदमन्त्रैः ॐ आदित्याय नमः इत्यादिनाममन्त्रैश्च पूजनम्। एवं निर्ऋतिदेवं रक्तचन्दनगन्धाद्यैः कृष्णसितादिभिः पुष्पैश्च उक्तगन्धाद्यलाभे च यथा-

मार्गेन पूजयेत् । एवं पुष्पसमर्पणान्तं निर्ऋतिम् अन्याः देवताश्च पूजयेत् । [प्रधाननिर्ऋतिपूजायां धूपादिविशेषाः—

मेषशृङ्गादिधूपैश्च दीपैश्चैव विशेषतः ।
सुरापोलिकमांसाद्यैस्तथा गोरोचनादिभिः ॥
मत्स्यमांससुरादीनि ब्राह्मणः परिवर्जयेत् ।
सुरास्थाने प्रदातव्यं क्षीरं सैन्धवमिश्रितम् ॥
पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रदापयेत् ।]

एवं यथालाभं समर्प्य सर्वेषां देवानां नीराजनं विधाय पुष्पाञ्जलिं समर्प्य रक्षासूत्रमभिमन्त्र्य ग्रहकलशे प्रतिष्ठाप्य होमवेदीसमीपमागत्य स्वगृह्योक्तप्रकारेण ब्रह्मोपवेशनादि अर्थवत्प्रोक्षणान्तं कर्म कृत्वा सति संभवे कृष्णां गां, कृष्णतिलान् , कृष्णमनड्वाहं, वासः, सुवर्णं चोपकल्प्य पायसं (दुग्धसिद्धौदनं), चरुम् (अनवस्रावितौदनं) कृसरं (तिलौदनं) च श्रपयित्वा पर्युक्षणान्तं कृत्वा वरदनामानमग्निम् "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य पाद्यादिनीराजनान्तं सम्पूज्य रेखा जिह्वाश्च पूजयेत् । ततो यजमानो द्रव्यत्यागं कुर्यात्—

अद्येह अमुकोऽहं सग्रहयाग (१)मूलशान्तिकर्मणा यक्ष्ये । तत्र प्रजापतिम् , इन्द्रम् , अग्निं, सोमम् आज्येन—नवग्रहान् अष्टसंख्याभिः समिच्चर्वाज्यतिलाहुतिभिः—अधिदेवताः प्रत्यधिदेवताश्च चतुःसंख्याभिः समिच्चर्वाज्यतिलाहुतिभिः—विनायकादिपञ्चलोकपालान् इन्द्रादिदशदिक्पालांश्च द्विद्विसंख्याभिः समिदाद्याहुतिभिः(२) निर्ऋतिं प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिः घृतमिश्रपायस—समिद्—आज्य—चर्वाहुतिभिः—इन्द्रम् अपश्च प्रतिद्रव्यमष्टाविंशतिसंख्याभिर्घृत-

(१) गोमुखप्रसवहोमस्यापि तन्त्रेणाचरणे 'सगोमुखप्रसव' इत्यपि योज्यम् ।

(२) तन्त्रेण गोमुखप्रसवहोमाचरणे एतदनन्तरम् विष्णुं "तद्विष्णोः" इति ऋचा अष्टाविंशत्यष्टान्यतरसंख्याहुतिभिः, वरुणम् "आपोहिष्ठा" इति तिसृभिः "अस्तु मे साम" इत्यनया च प्रत्यृचमुक्तसंख्याहुतिभिः, यक्ष्महणम् "अक्षीभ्याम्" इति सूक्तेन प्रत्यृचमुक्तसंख्याहुतिभिः ग्रहांश्च तत्तन्मन्त्रैरुक्तसंख्याहुतिभिः मिलितदधिमध्वाज्यद्रव्यैः" इति योज्यम् ।

मिश्रपायस–समिद्–आज्य–चर्वाहुतिभिः–विश्वदेवाद्याश्चतुर्विंशतिदेवता अष्टसंख्याभिः पायसाहुतिभिः–रक्षोहणं "कृणुष्व" इति पञ्चदशभिर्ऋग्भिः ऋक्संहितोक्ताभिः प्रत्यृचमष्टसंख्याभिः कृसराहुतिभिः सवितारं दुर्गां त्र्यम्बकम् ऋत्विक्स्तुतिं दुर्गां वास्तोष्पतिम् अग्निं क्षेत्राधिपतिं मित्रावरुणौ अग्निं च अष्टसंख्याभिः कृसराहुतिभिः–श्रियम् "हिरण्यवर्णाम्" इति पञ्चदशभिर्ऋग्भिः प्रतिमन्त्रमष्टसंख्याभिः समिदाज्यचर्वाहुतिभिः सोमं त्रयोदशसंख्याभिः पायसाहुतिभिः–रुद्रं चतुर्गृहीतेनाज्येन–शेषेण स्विष्टकृतम्–अग्न्यादिप्रजापत्यन्तांश्चाज्येनाहं यक्ष्ये ।

इदं संपादितं पायसादिद्रव्यजातम् आघाराज्यभागदेवताभ्यः नवग्रहेभ्योऽधिदेवताभ्यः प्रत्यधिदेवताभ्यो विनायकादिलोकपालेभ्यः इन्द्रादिदिक्पालेभ्यः (१)निर्ऋतीन्द्र–तोय–विश्वदेव–गोविन्द–वसु–वरुणाजपादहिर्बुध्न्य–पूष–दस्र–यमाग्नि–प्रजापतीन्दु-रुद्रादिति–गुरु–सर्प–पितृ–भगार्य्यम–रवि–त्वष्टृ–वायु—इन्द्राग्नि–मित्र–रक्षोहाग्नि–सवितृ–दुर्गा–ऋत्विक्स्तुति–दुर्गा–वास्तोष्पत्यग्नि–क्षेत्राधिपति–मित्रावरुण–अग्नि–श्री–सोम–रुद्रेभ्यः स्विष्टकृदग्नये महाव्याहृतिदेवताभ्यः सर्वप्रायश्चित्तदेवताभ्यः प्रजापतये च मया परित्यक्तम् ॐतत्सत् यथादैवतमस्तु न मम इति द्रव्यदेवताभिध्यानपूर्वकं द्रव्यत्यागं दक्षिणतः स्थितो विदध्यात् ।

तत आचार्यः दक्षिणं जान्वाच्य ब्रह्मणाऽन्वारब्धो मनसा प्रजापतिं ध्यात्वा ॐप्रजापतये स्वाहा (इदं प्रजापतये०)(२) इति हुत्वा ॐइन्द्राय स्वाहा(इदमिन्द्राय) ॐअग्नये स्वाहा (इदमग्नये०)

---

(१)पूर्वोक्तहोमस्य तन्त्रेणाचरणे"विष्णवे वरुणाय यक्ष्मघ्ने" इति निर्ऋतेः पूर्वं योज्यम् ।

(२) पूर्वं यजमानेन त्यागस्य कृतत्वात् पुनस्त्यागोल्लेखो वाचस्पतिमिश्राद्यसंमत इति कोष्ठकेषु त्यागवाक्यानि केषांचित् पद्धतिकाराणां संमतत्वात् स्थापितानि । क्वचित्तु नैव स्थापितानि । पद्धतिकारेषु कृतनिर्भरैरुक्तानि ।

ॐसोमाय स्वाहा (इदꣳ सोमाय०) इति आघारावाज्यभागौ च जुहुयात्।

अथ प्रधानहोमः। त्यक्तान्वारम्भ आचार्यः ऋत्विग्भिः सह प्रथमम् आदित्यादिग्रहादिभ्यो ग्रहयागोक्तरीत्या हुत्वा (गोप्रसवस्य समानतन्त्रत्वे उक्तरीत्या विष्ण्वादिभ्योऽपि हुत्वा) अष्टोत्तरशतसंख्यया घृतमिश्रेण पायसेन, पालाशखादिरान्यतरसमिद्भिः, आज्येन, चरुणा च निर्ऋतिमन्त्रेण जुहुयात्। (यं ते देवीति प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो निर्ऋतिर्देवता घृतमिश्रपायसादिद्रव्यहोमे विनियोगः)।

ॐयं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम्। तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः-स्वाहा (इदं निर्ऋतये न मम)। (१०८)

ततः अधिदेवताप्रत्यधिदेवतयोरष्टाविंशतिसंख्यया घृतमिश्रपायसादिचतुष्टयेन होमः। (इन्द्र आसामिति प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता घृतमिश्रपायसादिद्रव्यहोमे विनियोगः)।

ॐइन्द्रऽआसान्नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरऽएतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्-स्वाहा (इदमिन्द्राय०)। (२८)।

(आपोहिष्ठेति सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्रीछन्द आपो देवताः घृतमिश्रपायसादिहोमे विनियोगः)।

ॐआपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे-स्वाहा (इदमद्भ्यो०) (२८)।

तत उत्तराषाढादिदेवानां नाममन्त्रैः प्रत्येकमष्टसंख्यया घृतमिश्रपायसेन जुहुयात्। यथा ॐविश्वेभ्योदेवेभ्यो नमः स्वाहा ८ (इदं विश्वेभ्योदेवेभ्यो०) ॐगोविन्दाय नमः स्वाहा८ (इदं गोविन्दाय०) ॐवसुभ्यो नमः स्वाहा८ (इदं वसुभ्यो०) ॐवरुणाय नमः स्वाहा८ (इदं वरुणाय०) ॐअजचरणाय नमः स्वाहा८ (इदमजचरणाय०) ॐअहिर्बुध्न्याय नमः स्वाहा८ (इदमहिर्बुध्न्याय०)

ॐपूष्णे नमः स्वाहा८ (इदं पूष्णे०) ॐदस्राभ्यां नमः स्वाहा८ (इदं दस्राभ्यां०)ॐयमाय नमः स्वाहा८ (इदं यमाय०) ॐअग्नये नमः स्वाहा८ (इदमग्नये०) ॐधात्रे नमः स्वाहा८ (इदं धात्रे०)ॐचन्द्रमसे नमः स्वाहा८ (इदं चन्द्रमसे०)ॐशर्वाय नमः स्वाहा८ (इद॑ शर्वाय०)उ०स्प०ॐअदितये नमः स्वाहा८ (इदमदितये०) ॐबृहस्पतये नमः स्वाहा८ (इदं बृहस्पतये०)ॐसर्पेभ्यो नमः स्वाहा८ (इद॑ सर्पेभ्यो०) ॐपितृभ्यो नमः स्वाहा८ (इदं पितृभ्यो०)ॐभगाय नमः स्वाहा८ (इदं भगाय०) ॐअर्यम्णे नमः स्वाहा८ (इदमर्य्यम्णे०) ॐसवित्रे नमः स्वाहा८ (इद॑ सवित्रे०) ॐत्वष्ट्रे नमः स्वाहा८ (इदं त्वष्ट्रे०) ॐवायवे नमः स्वाहा८ (इदं वायवे०) ॐइन्द्राग्निभ्यां नमः स्वाहा ८ (इदमिन्द्राग्निभ्यां०) ॐमित्राय नमः स्वाहा८ (इदं मित्राय०) इति नक्षत्रदेवताभ्यो जुहुयात् ।

अथ कृसरहोमः । (कृणुष्वेति पञ्चदशर्चस्य वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो रक्षोहाऽग्निर्देवता कृसरहोमे विनियोगः) ।

ॐकृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन । तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः-स्वाहा १ (ऋ. अष्ट.३।४।२३) इत्यनया रक्षोघ्नेऽग्नयेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐतव भ्रमास ऽआशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः । तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः-स्वाहा २ इत्यनयाऽष्टकृत्वो रक्षोघ्ने० हुत्वा—

ॐप्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो ऽअस्या अदब्धः । यो नो दूरे ऽअघशंसो यो ऽअन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत्-स्वाहा ३ इत्यनया रक्षोघ्नेऽग्नयेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐउदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते । यो नो ऽअरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कं-स्वाहा ४ इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा-

ॐ ऊर्द्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अवस्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्-स्वाहा ५ इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐ स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत्। विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो विदुरोऽअभिद्यौत्-स्वाहा ६।

इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐ सेदग्नेऽअस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः। पिप्रीषति स्वऽआयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिनासासदिष्टिः—स्वाहा ७।

इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐ अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्संते वा वाताजरतामियं गीः। स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमा स्मे क्षत्राणि धारयेरनुद्यून्—स्वाहा ८।

इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐ इह त्वा भूर्याचरेदुपत्मन् दोषावस्तर्दीदिवांसमनुद्यून्। क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभिद्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम्—स्वाहा ९।

इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐ यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन। तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्तआतिथ्यमानुषग्जुजोषत्—स्वाहा १०।

इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐ महो रुजामि बन्धुतावचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय। त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः—स्वाहा ११।

इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐ अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासो वृका अश्रमिष्ठाः। ते पायवः सध्र्यञ्चो निपद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर—स्वाहा १२।

इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐ ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्। ररक्ष तान् सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाहदेभुः—स्वाहा १३।

इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐ त्वया वयं स धन्यस्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान्। उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण—स्वाहा १४।

इत्यनया रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वो हुत्वा—

ॐ अयाते अग्ने समिधा विधेम प्रतिस्तोमं शस्यमानं गृभाय। दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान् द्रुहोनिदो मित्रमहो अवद्यात्—स्वाहा१५।
इत्यनया च रक्षोघ्नेऽष्टकृत्वः कृसरं जुहुयात्।

(गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता कृसरहोमे विनियोगः) ॐ भूर्भुवःस्वः तत्स० प्रचोदयात्—स्वाहा (इदं सवित्रे०) इत्यष्टकृत्वो जुहुयात्। (जातवेदस इति कश्यप ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो दुर्गा देवता कृसरहोमे विनियोगः)

(ऋ. अष्ट. १।७।७) ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरिताऽत्यग्निः—स्वाहा इत्यष्टकृत्वो दुर्गायै कृसरं जुहुयात्। (त्र्यम्बकमिति वसिष्ठऋषिः अनुष्टुप्छन्दः रुद्रो देवता कृसरहोमे विनियोगः)।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्—स्वाहा (इदं रुद्राय०) इत्यष्टकृत्वो रुद्राय जुहुयात्। उ० स्प० (सीरायुञ्जन्तीति सौम्यबुधऋषिर्गायत्रीछन्द ऋत्विक्स्तुतिर्देवता कृसरहोमे विनि०)।

ॐ सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा व्वितन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया—स्वाहा इत्यष्टकृत्वो ऋत्विक्स्तुतये कृसरं जुहुयात्। (तामग्निवर्णामिति सौभरिऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो दुर्गा देवता कृसरहोमे विनियोगः) (ऋ. अष्ट. ८।७। परि. व. ४)

ॐ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्म्मफलेषु जुष्टाम्। दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरासितरसे नमः सुतरासितरसे नमः—स्वाहा इत्यष्टकृत्वो दुर्गायै जुहुयात्। (वास्तोष्पते इति वसिष्ठऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वास्तोष्पतिर्देवता कृसरहोमे विनियोगः)।

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशोऽअनमीवो भवा नः। यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे–स्वाहा इत्यष्टकृत्वो वास्तोष्पतये जुहुयात् ।

(अग्निमीळ इति काण्वो मेधातिथिर्ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता कृसरहोमे विनियोगः) । (ऋ. अष्ट. १ । १ । १)

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम्–स्वाहा इत्यष्टकृत्वोऽग्नये जुहुयात् । (क्षेत्रस्येति वामदेव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः क्षेत्रपालो देवता कृसरहोमे विनियोगः) । (ऋ० अष्ट० ३।८।९)

ॐ क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेवजयामसि । गामश्वं पोषयित्न्वा सनो मृळातीदृशे–स्वाहा इत्यष्टकृत्वः क्षेत्रपालाय जुहुयात् । (गृणानेति जमदग्निर्ऋषिर्गायत्री छन्दो मित्रावरुणौ देवते कृसरहोमे विनियोगः) । (ऋ० अष्ट० ३ । ४ । ११)

ॐ गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा–स्वाहा इत्यष्टकृत्वो मित्रावरुणाभ्यां जुहुयात् । (अग्निंदूतमिति विरूप ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता कृसरहोमे विनियोगः) ।

ॐअग्निं दूतम्पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवाँ ॥२॥ आसादयादिह–स्वाहा इत्यष्टकृत्वोऽग्नये जुहुयात् ।

इति कृसरहोमः ॥

अथ प्रत्यृचं श्रीसूक्तेन अष्टसंख्यया समिदाज्यचरुद्रव्याणि जुहुयात् । तत्र ऋष्यादयः । (हिरण्यवर्णामिति पञ्चदशर्चस्य सूक्तस्य आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुता ऋषयः आद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभश्चतुर्थी प्रस्तारपङ्क्तिः पञ्चमीषष्ठ्यौ त्रिष्टुभौ सप्तम्यादिचतुर्दशीपर्यन्तं अनुष्टुभः पञ्चदशी प्रस्तारपङ्क्तिः सर्वमन्त्राणां श्रीर्देवता प्रत्यृचं समिदाज्यचरुहोमे विनियोगः) (ऋ० अष्ट० ४ । ४परि०)

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म ऽआवह–स्वाहा १ ।

अष्टकृत्वः श्रियै समिदाज्यचरून् जुहुयात् ।

ॐ ताम्म ऽआवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्—स्वाहा २। अष्टकृत्वः०
ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्—स्वाहा ३ । अष्टकृ०
ॐ कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तान्तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्—स्वाहा ४। अष्टकृ०
ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मनीमीं शरणं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्म्मे नश्यतां त्वां वृणोमि—स्वाहा ५ अ०
ॐ आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायाऽन्तरा याश्च बाह्याऽअलक्ष्मीः—स्वाहा ६ अ०
ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन्कीर्त्तिमृद्धिं ददातु मे—स्वाहा ७ । अष्ट०
ॐ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्व्वां निर्णुद मे गृहात्—स्वाहा ८ । अष्ट०
ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्व्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्—स्वाहा ९ । अष्ट०
ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः—स्वाहा १० । अष्ट०
ॐ कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्—स्वाहा ११। अष्ट०
ॐ आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले—स्वाहा १२ । अष्ट०
ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मऽआवह—स्वाहा १३। अष्ट०
ॐ आर्द्रां यःकरिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मऽआवह—स्वाहा १४। अष्ट०

ॐ ताम्म ऽआवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्-स्वाहा १५ इति चाष्टकृत्वः समिदाज्यचरून् श्रियै जुहुयात्।

इति पञ्चदशर्चहोमः॥

ततः पायसेन सोमं त्रयोदशसंख्यया जुहुयात्—(त्वन्नः सोम विश्वतो गोपा इति ऐन्द्रो विमद ऋषिः आस्तारपङ्क्तिश्छन्दः सोमो देवता पायसहोमे विनियोगः) (ऋ० अ० ७।७।१२)

ॐ त्वन्नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव। सेधराजन्नपस्रिधो विवोमदे मानो दुःशंस ईशताविवक्षसे—स्वाहा॥

(यातेरुद्रेति प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः एकरुद्रो देवता चतुर्गृहीताज्यहोमे विनियोगः) स्रुचि स्रुवेण चतुराज्यं गृहीत्वा—

ॐ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि—स्वाहा इति रुद्राय होमं विधाय अन्वारब्ध आचार्यः—

चरु–पायस–कृसराज्यसमिद्भिः ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा (इदमग्नये स्विष्टकृते०) इति स्विष्टकृद्धोमं कुर्यात्।

ततो भूरादिनवाहुतिहोमः। (व्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिः गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि अग्निवायुसूर्या देवताः प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः) ॐ भूः स्वाहा (इदमग्नये०) ॐ भुवः स्वाहा (इदं वायवे०) ॐ स्वः स्वाहा (इदं सूर्याय०) (त्वं नो ऽअग्ने स त्वं नो ऽअग्ने इत्यनयोर्वामदेव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः अग्नीवरुणौ देवते। अयाश्चाग्ने इत्यस्या वामदेव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः अग्निर्देवता। ये ते शतम् इति वामदेव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वरुणो देवता। उदुत्तमम् इति शुनःशेप ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः वरुणो देवता। सर्वेषां सर्वप्रायश्चित्तहोमे विनियोगः)

ॐ त्वन्नो ऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो ऽअवयासिसीष्ठाः।

यजिष्ठो व्वह्नितमः शोशुचानो व्विश्वा द्वेषाᳬंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा
(इदमग्नीवरुणाभ्यां०)

ॐ स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोऽती नेदिष्ठो ऽअस्या ऽउषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो व्वरुणꣳ रराणो व्वीहि मृडीकꣳ सुहवो न ऽएधि– स्वाहा (इदमग्नीवरुणाभ्यां०)

ॐअयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽअसि। अया नो यज्ञं व्वहास्यया नो धेहि भेषजᳬंस्वाहा (इदमग्नये०)

ॐये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा व्वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत व्विष्णुर्व्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा (इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्योदेवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च०)

ॐ उदुत्तमं व्वरुण पाशमस्मदवाधमं व्विमध्यमᳬं श्रथाय।
अथा व्वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम–स्वाहा
(इदं वरुणाय०)ॐ प्रजापतये स्वाहा (इदं प्रजापतये०)।

बर्हिर्होमः। संस्रवप्राशनम्। पवित्रप्रतिपत्तिः। प्रणीताविमोकः।

ततो यजमानो ब्रह्मणे पूर्णपात्रम् अद्येत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं मूलशान्तिकर्माङ्गहोमकर्मणः साङ्गफलप्राप्तये साद्गुण्यार्थम् अपूर्णपूरणार्थं च सद्रव्यं पूर्णपात्रं ब्रह्मणे तुभ्यं सम्प्रददे इति संकल्प्य दद्यात्। मन्त्रपाठः—

ॐ अक्रन्कर्म्म कर्म्मकृतः सह व्वाचा मयोभुवा।
देवेभ्यः कर्म्म कृत्वाऽस्तं प्रेत सचाभुवः॥

तत आदित्यादिनवग्रहेभ्यः अधिदेवताभ्यः प्रत्यधिदेवताभ्यः विनायकादिपञ्चलोकपालेभ्य इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यः वास्तोष्पतये च ग्रहयागप्रयोगोक्तरीत्या पायस–दध्यक्षतान्यतरबलीन् दत्वा—

ॐ निर्ऋतये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय एष सदीपः पायस(दध्यक्षत)बलिर्नमः।

इति बलिं समर्प्य हस्ते जलं गृहीत्वा भोभो निर्ऋते—

एतं सदीपं पायस(दध्यक्षत)बलिं गृहाण मम

सपरिवारस्य यजमानस्य आयुष्कर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता तुष्टिकर्ता पुष्टिकर्ता भव—

इति बल्युपरि विसृजेत्।

ॐ इन्द्राय०नमः। भोभो इन्द्र०। ॐ अद्भ्यः साङ्गाभ्यः सपरिवाराभ्यः सायुधाभ्यः सशक्तिकाभ्यः० नमः। भोभो आपः० गृह्णीत० आयुष्कर्त्र्यः० भवत। ॐ विश्वेभ्योदेवेभ्यः० नमः। भोभो विश्वेदेवाः० गृह्णीत० आयुष्कर्तारः०। ॐ विष्णवे० नमः भोभो विष्णो०। ॐवसुभ्यः० नमः। भोभो वसवः०। ॐवरुणाय० नमः। भोभो वरुण०। ॐ अजचरणाय० नमः। भोभो अजचरण०। ॐ अहिर्बुध्न्याय० नमः। भोभो अहिर्बुध्न्य०। ॐ पूष्णे० नमः। भोभोः पूषन्०। ॐ अश्विभ्यां० नमः। भोभो अश्विनौ०। ॐ यमाय० नमः। भोभो यम०। ॐ अग्नये० नमः। भोभो अग्ने०। ॐ धात्रे० नमः। भोभो धातः०। ॐचन्द्राय० नमः। भोभोः चन्द्र०। ॐरुद्राय० नमः। भोभो रुद्र०उ०स्प०। ॐअदितये साङ्गायै० नमः। भोभो अदिते० आयुष्कर्त्री०। ॐगुरवे० नमः। भोभो गुरो०। ॐसर्पेभ्यः० नमः। भोभोः सर्पाः०। ॐपितृभ्यः० नमः। भोभोः पितरः०। ॐभगायः० नमः। भोभो भग०। ॐ अर्यम्णे० नमः। भोभो अर्यमन्०। ॐ सवित्रे० नमः। भोभोः सवितः०। ॐ त्वष्ट्रे० नमः। भोभोस्त्वष्टः०। ॐ वायवे० नमः। भोभो वायो०। ॐ इन्द्राग्निभ्यां साङ्गाभ्यां० नमः। भोभो इन्द्राग्नी० गृह्णीतम्० आयुष्कर्तारौ०। ॐमित्राय० नमः। भोभो मित्र०। ॐरुद्राय० नमः। भोभो रुद्र०।

एवं निर्ऋत्यादिभ्यो बलीन् दत्त्वा उदकस्पर्शं कृत्वा क्षेत्रपालाय सदीपमाषभक्तबलिं यथाविधि उक्तरीत्या दद्यात्।

ततः पूर्णाहुतिं यजमानो वा आचार्य्यो वा समुद्रादूर्मिरित्यादिमन्त्रैः स्रुवेण द्वादशधा चतुर्धा वा स्रुचि गृहीतेनाज्येन जुहुयात्। तत्र संकल्पः—अद्येहामुकोऽहं पुत्रस्य मूलनक्षत्रजननशान्तिहोमकर्म्मणः न्यूनातिरिक्तपरिहारार्थं मृडनामाग्नौ पूर्णाहुतिहोमं करिष्ये। नारि॰

केलं पूगीफलं वा रक्तवस्त्रसहितं कृत्वा स्रुवं स्रुचं च सम्पूज्य जुहुयात्। होममन्त्राः—

समुद्रादूर्मिरिति एकादशर्चस्य सूक्तस्य वामदेवऋषिः आद्या दश त्रिष्टुभः अन्त्या जगती अग्निर्देवता। प्रजापते न त्वदिति हिरण्यगर्भऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः प्रजापतिर्देवता। पूर्णादर्वीति और्णनाभ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता। सप्तते ऽग्ने इति सप्तर्षय ऋषयस्त्रिष्टुप्छन्दः अग्निर्देवता। मूर्धानमिति भरद्वाज ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः वैश्वानरो देवता। सर्वेषां पूर्णाहुतिहोमे विनियोगः।

ॐ समुद्रादूर्म्मिर्म्मधुमाँ२॥ उदारदुपाᳬंशुना सममृतत्वमानट्।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः १
वयं नाम प्रब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौरऽएतत् २
चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽअस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्याँ२॥ आविवेश ३
त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्रऽएकᳬंसूर्य एकं जजान वेनादेकᳬंस्वधया निष्टतक्षुः ४
एता ऽअर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे।
घृतस्य धाराऽअभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्यऽआसाम् ५
सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
एतेऽअर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा ऽइव क्षिपणोरीषमाणाः ६
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धाराऽअरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ७
अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो ऽअग्निम्।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्य्यति जातवेदाः ८
कन्या ऽइव वहतु मेतवा ऽउ अञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धाराऽअभि तत् पवन्ते ९
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते १०

धामन्ते व्विश्वं भुवनमधिश्रितमन्तःसमुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य ऽआभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऽऊर्मिम् ११
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो व्विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽअस्तु वयᳬस्याम पतयो रयीणाम् १२
पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत ।
व्वस्नेव व्विक्रीणावहा ऽइषमूर्ज्जᳬ शतक्रतो १३
सप्त ते ऽअग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऽऋषयः सप्त धाम प्रियाणि।
सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन १४
मूर्द्धानं दिवो ऽअरतिं पृथिव्या व्वैश्वानरमृत ऽआजातमग्निम् ।
कविᳬ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः-स्वाहा १५

इति मन्त्रैः वैश्वानरायाग्नये पूर्णाहुतिं हुत्वाऽग्निं मेधां प्रार्थयेत्—

ॐ सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिम्मेधामयासिषᳬ स्वाहा १
याम्मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा २
मेधां मे व्वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च व्वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ३
श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञां विद्यां पुष्टिं बलं श्रियम् ।
आयुष्यं द्रव्यमारोग्यं देहि मे हव्यवाहन ४ इति ।

ॐ तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि । ॐ आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि । ॐ वर्चोदा अग्नेऽसि व्वर्चो मे देहि । ॐ अग्ने यन्मे तन्वा ऽऊनं तन्म ऽआपृण ।

ॐ मेधां मे देवः सविता आदधातु । ॐ मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु । ॐ मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ–

इति सप्तभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं ललाटाच्चिबुकपर्यन्तं मुखं पाणिप्रतपनपूर्वकं मार्जयेत् ।

ॐअङ्गानि च म ऽआप्यायन्ताम् इति सर्वाङ्गान्युपस्पृशेत् । ॐ वाक् च म ऽआप्यायतामिति मुखे । ॐ प्राणश्च म ऽआप्यायता-

मिति नासिकायाम् । ॐ चक्षुश्च म ऽआप्यायतामिति नेत्रयोः । ॐ श्रोत्रं च म ऽआप्यायतामिति श्रोत्रयोः । ॐ यशो बलं च म ऽआप्यायतामिति बाह्वोः ७०स्प० । ततस्त्र्यायुषकरणं भस्मना—

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः इति ललाटे । ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् इति ग्रीवायाम् । ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् इति दक्षिणांसे । ॐ तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् इति हृदि ।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्—

इति सर्वाङ्गमालमेत ।

ततः चतुष्कुम्भमध्यवर्तिनः कुम्भस्य, चतुष्प्रस्रवणकुम्भमध्यमुखस्य वा दक्षिणतः स्पृष्ट्वा रुद्रैकादशिनीं, शतवारं त्र्यम्बकमन्त्रं च जपेत् । ततो रुद्रं निर्ऋतिं ग्रहादींश्च पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

ततः प्राङ्गणे शान्तिमण्डपस्योत्तरतः कल्पिते स्नानमण्डपे गोमयोपलिप्तदेशे स्वस्तिकादिशोभितश्रीपर्ण्यादिपीठं संस्थाप्य तत्र नव्यवस्त्रं प्रसार्य्य तत्रोपविष्टः पुत्रपत्नीसहितो यजमानः शङ्खवाद्यादिरवे जायमाने मङ्गलगीतानि शृण्वन् स्नानसंकल्पं कुर्य्यात्—अद्येहेत्यादि संकीर्त्य सपुत्रः सपत्नीकोऽहं मम पुत्रस्य मूलनक्षत्रामुकपादजननसूचितारिष्टनिवृत्तये शुभफलप्राप्तये च अभिषेकमन्त्रैर्यथान्तस्नानं करिष्ये । ततो दारपुत्रसहितस्य सर्वौषधीभिरनुलिप्ताङ्गस्य धृतनूतनवस्त्रस्य प्राङ्मुखस्योदङ्मुखस्य वा यजमानस्य शिरसि आचार्य्यादयो ब्राह्मणाः "यं ते देवी" इति निर्ऋतिं त्र्यम्बकमिति रुद्रञ्चोपस्थाय सर्वकलशोदकं पात्रान्तरे कृत्वा उत्थाय वक्ष्यमाणमन्त्रैरभिषेकं कुर्य्युः ।

तत्र मन्त्राणां संग्रह उच्यते—

(अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च ।
आपोहिष्ठेति नवभिर्यत इन्द्रद्वयेन च १ ।
सहस्राक्षतृचेनापि देवस्यत्वेति मन्त्रकैः ।
शिवसंकल्पमन्त्रेण वक्ष्यमाणैश्च मन्त्रकैः २ ।

तच्छंयोरभिषेकं तु सर्वदोषोपशान्तिदम्। इति।)
ॐअक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया विवृहामि ते १।
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां विवृहामि ते २।
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो विवृहामि ते ३।
ऊरुभ्यान्ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो विवृहामि ते ४।
मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं विवृहामि ते ५।
अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्व्वणिपर्व्वणि।
यक्ष्मं सर्व्वस्मादात्मनस्तमिदं विवृहामि ते ६।
ॐ पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः।
पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा ॥ ७ ॥
पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः।
पवित्रेण शतायुषा व्विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ८ ॥
अग्न ऽआयूंषि पवसऽआसुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्वदुच्छुनाम् ९॥
पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु व्विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ १० ॥
पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२॥रनु ११
यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने व्विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु मा १२
पवमानः सोऽअद्य नः पवित्रेण व्विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा १३
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। मां पुनीहि व्विश्वतः १४
व्वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्वयस्तन्वो व्वीतपृष्ठाः।
तया मदन्तः सधमादेषु व्वयंस्याम पतयो रयीणाम् १५
(ऋ० अष्ट० ७। ६। ५)
ॐआपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽऊर्ज्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे १६

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः१७
तस्मा ऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः१८
शं नो देवीरभिष्टय ऽआपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः १९
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् २०
अप्सु मे सोमोऽअब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशंभुवम् २१
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम। ज्योक्च सूर्यं दृशे २२

इदमापः प्रवहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप ऽउतानृतम् ॥ २३ ॥
आपो ऽअद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न ऽआ गहि तं मा संसृज वर्चसा २४
(ऋ० अष्ट० ६ । ४ । ३८)
ॐ यत इन्द्र भयामहे ततो नो ऽअभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऽऊतिभिर्विद्विषो विमृधो जहि २५
त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे २६
(ऋ० अष्ट० ८ । ८ १९)
ॐ सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषा हार्षमेनम् ।
शतं यथेमं शरदो न यातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् २७
शतञ्जीव शरदो वर्द्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः २८
आहार्षं त्वा विदन्त्वा पुनरागाः पुनर्नव ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्व्वमायुश्च तेविदम् २९
ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येना-
भिषिञ्चामि ३०
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्य्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ३१
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।

अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि ३१
देवस्यत्वा० सरस्वत्यै भैषज्येन व्वीर्य्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामि ३३
देवस्यत्वा० इन्द्रस्येन्द्रियेण वलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि ३४
ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ३५
येन कर्म्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानान्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ३६
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऽऋते किंचन कर्म्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ३७
येनेदं भूतम्भुवनम्भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्व्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ३८
यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तꣳ सर्व्वमोतम्प्रजानान्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ३९
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्व्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरञ्जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ४०
(का० हौत्रपरि० अ० १ । कं०६)

ॐ तच्छँय्योरावृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये ।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः ।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजꣳ शन्नो ऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे(१) ४१
(ऋ० अष्ट० ५ । ४ । १६)

ॐ समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२

---

(१) यद्यपि शिवसंकल्पमन्त्रानन्तरं "वक्ष्यमाणैश्च मन्त्रकैः" इति वक्ष्यमाणत्वेन निर्दिष्टाः "योऽसौवज्रधरोदेवः" इत्यादयो वक्ष्यमाणा मन्त्रा निर्देष्टुमुचिताः तथापि वैदिकत्वेन प्राधान्यात् शंयुवाकमन्त्रं प्रकरणान्तरनिर्दिष्टान् समुद्रज्येष्ठा इत्यादींश्च निर्दिश्य तत उपस्थितान् "सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु" इत्यादींश्च निर्दिश्य "योऽसौ वज्रधरोदेवः" इत्यादयः 'मूलजातशिशुदोषनिवृत्तिप्रार्थनारूपा मन्त्रा अन्ते निर्देशार्हा' इति अन्ते निर्देक्ष्यन्ते।

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उतवा याःस्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४३
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४४
यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वेदेवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४५
स्वस्तिनऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा व्विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ४६
पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ४७
व्विष्णो रराटमसि व्विष्णोः श्नप्त्रे स्थो व्विष्णोः स्यूरसि
व्विष्णोर्ध्रुवोऽसि। व्वैष्णवमसि व्विष्णवे त्वा ४८

अग्निर्देवता व्वातो देवता सूर्य्यो देवता चन्द्रमा देवता व्वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता व्विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता व्वरुणो देवता ४९

मूर्द्धाऽसि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी।
आयुषे त्वा व्वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ५०

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष꣡ꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्व्वनस्पतयः शान्तिर्व्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ५१

व्विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न ऽआसुव ५२

अथ पौराणिकमन्त्राः। तत्रादौ मात्स्योक्ताः—

सर्व्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणो विभुः १
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान्यमो वै निर्ऋतिस्तथा २

वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।
ब्रह्मणा सहिताश्चैव दिक्पालाः पान्तु वः सदा ३
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्म्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ४
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्म्मपत्न्यः समागताः ।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ५
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च पूजिताः ।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ६
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ।
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ७
अस्त्राणि सर्व्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ८
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्व्वकार्य्यार्थसिद्धये ९

अथ शौनकोक्तैरष्टदिक्पालमन्त्रैरभिषेकः—

योऽसौ वज्रधरो देवो महेन्द्रो गजवाहनः ।
मूलजातशिशोर्दोषं मातापित्रोर्व्यपोहतु १
योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतभुग्मेषवाहनः ।
सप्तजिह्वः स देवोऽग्निर्मूलदोषं व्यपोहतु २
योऽसौ दण्डधरो देवो धर्म्मो महिषवाहनः ।
मूलजातशिशोर्दोषं मातापित्रोर्व्यपोहतु ३
योऽसौ खड्गधरो देवो निर्ऋती राक्षसाधिपः ।
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं गण्डान्तसम्भवम् ४
योऽसौ पाशधरो देवो वरुणश्च जलेश्वरः ।
नक्रवाहः प्रचेता नो मूलोत्थाघं व्यपोहतु ५
योऽसौ देवो जगत्प्राणो मारुतो मृगवाहनः ।
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं बालस्य शान्तिदः ६
योऽसौ निधिपतिर्देवो गदाभृन्नरवाहनः ।

मातापित्रोः शिशोश्चैव मूलदोषं व्यपोहतु ७
योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ।
आश्लेषामूलगण्डान्तदोषमाशु व्यपोहतु ८
विघ्नेशः चेत्रपो दुर्गा लोकपाला नवग्रहाः ।
सर्व्वदोषप्रशमनं सर्व्वे कुर्व्वन्तु शान्तिदाः ९ ॥

ॐ शांतिरस्तु पुष्टिरस्तु वृद्धिरस्तु यच्छ्रेयस्तदस्तु रोगः शोकः कष्टं दुःखं दारिद्र्यं तत् दूरे प्रतिहतमस्तु ॐ भूर्भुवः स्वः अमृताभिषेकोऽस्तु इत्यभिषेकं कृत्वा सपुत्रं सपत्नीकं यजमानं कलशजलेन सहस्रधारोद्धृतेन स्नापयेयुः । स्नातो यजमानश्च शुक्लाम्बरधरो भूत्वा ऋक्संहितोक्तेन रूपंरूपमिति मन्त्रेण घृते छायादर्शनं कुर्य्यात् । मन्त्रः—

ॐरूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥ इति ।

ततः स्नानवस्त्राणि आचार्य्याय समर्प्य सुमुहूर्त्ते गीतवाद्यशङ्खरवे जायमाने (शान्तिपाठं) स्वस्तिवाचनं पठत्सु विप्रेषु पुत्रमुखं पश्यन्—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतम् ॥

इति मन्त्रेण पुत्रं स्वाङ्के निधाय गोदानादिसंकल्पं कुर्य्यात्— अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकराशिरमुकशर्म्मा सपुत्रसपरिवारोऽहं मम पुत्रस्यास्य मूलनक्षत्रामुकपादजनिसूचितारिष्टनिवृत्तिपूर्व्वकशुभफलप्राप्तये सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं शौनकोक्तप्रकारेणानुष्ठितस्य मूलशान्तिकर्म्मणः साङ्गफलप्राप्तये साद्गुण्यार्थं च सवत्सामिमां कृष्णां धेनुं तन्निष्क्रयं (दशकार्षापणात्मकं) वा तथा अधिदेवताप्रत्यधिदेवताप्रतिमासहितां सवस्त्रकुम्भां मूलनक्षत्रदेवनिर्ऋतिप्रतिमां ग्रहपूजासामग्रीं च आचार्य्याय (संप्रददे) दास्ये । तथा श्रीरुद्रप्रतिमां कृष्णमनड्वाहं तन्निष्क्रयं वा (अष्टकार्षापणात्मकं) वस्त्रं कुम्भं च रुद्रजापिने दास्ये । तथा ब्रह्मसदस्यर्त्विग्भ्योऽप्रतिरथसूक्तादि–शान्तिकाध्यायादिपाठकारकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथांशं विभज्य दक्षिणां दास्ये । तथेमां

भूयसीं दक्षिणाम् ब्राह्मणेभ्योऽन्येभ्यश्च विभज्य दास्ये ॐतत्सत् न मम इति संकल्प्य यथाक्रमेण दद्यात् ।

तत्र पूर्वम् आचार्य्याय निष्कं (राजतचतुष्कर्षात्मकं) निष्कार्द्धं वा दक्षिणा । तदर्द्धं ब्रह्मणे । ब्रह्मणोऽर्द्धं सदस्याय । तदर्द्धमृत्विग्भ्यः । तदर्द्धं सूक्तादिपाठकेभ्य इति । ततः पायसादिना यथाशक्ति शतं, पञ्चाशत् , दश वा ब्राह्मणान् भोजयिष्ये इति संकल्पयेत् । तत आचार्य्यादयो यजमानस्य तिलकाक्षतारोपणं मन्त्रपाठादिकं रक्षाबन्धनं त्र्यायुषकरणं च कुर्य्युः । यजमानश्च तेभ्य आशिषो गृहीत्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् । ततः आवाहितदेवानामग्नेश्चोत्तराङ्गत्वेन पूजनं विधाय तान् "यान्तु देवगणा" इति, "गच्छगच्छ" इति च विसृज्य—

कांस्यपात्रोपरि स्थाप्य दीपान्प्रज्वलितान्पुनः ।
प्रकुर्यान्मङ्गलार्थं च महानीराजनं विधिम् ॥

इत्युक्तप्रकारेण नीराजनं कारयित्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान्भोजयित्वा आमं मिष्टं वा दत्त्वा तेभ्य आशिषो गृहीत्वा "कायेन वाचा" इत्यादि पठित्वा 'अनेन शान्तिकर्म्मणा ॐतत्सत् यज्ञपुरुषः प्रीयतां तत्प्रीत्या निर्ऋतिदेवः प्रीयतामिति वदेत् । ततो ब्राह्मणानुज्ञया स्वजनबन्धुभिः सहितो भुञ्जीत ।

इति शौनकोक्तो मूलशान्तिप्रयोगः ।

अथाश्लेषानक्षत्रजननशान्तिविधिः ॥

तत्र फलं मूलनक्षत्रवत् व्यत्ययेन ज्ञेयम् । यथा—

आद्ये पिता नाशमुपैति मूलपादे द्वितीये जननी तृतीये ।
धनं चतुर्थेऽस्य शुभोऽथ शान्त्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम् ।

इति । अहिभे आश्लेषानक्षत्रे विलोमं विपरीतं फलं स्यात् । यथा—चतुर्थपादे पितृनाशः, तृतीये जननीनाशः, द्वितीये धननाशः, प्रथमः शुभ इति । तत्र यस्य यस्मिन्पादे जनिस्तदरिष्टपरिहाराय मूलनक्षत्रवत् अत्रापि शान्तिः कर्त्तव्या ।

तत्र शान्तिसारे शौनकः—

आश्लेषायां तु जातानां शान्तिं वक्ष्याम्यतः परम् ।
जातस्य द्वादशाहे च शान्तिहोमं समाचरेत् ॥
असम्भवे तु जन्मर्क्षे अन्यस्मिन्वा शुभे दिने ।
स्नातोऽभ्यङ्गादिभिस्तस्मिन्वरयेत्तु द्विजोत्तमान् ॥
विभवे पञ्च कुम्भास्तु द्वयं वा तदलाभतः ।
देवतास्थापने चैकमेकं रुद्राभिमन्त्रणे ॥
मूलर्क्षोक्तप्रकारेण कुम्भे निक्षिप्य पूजयेत् ।
गोमयालेपिते देशे धात्वाद्यैरुपशोभिते ॥
पङ्कजं कारयेत्तत्र चतुर्विंशद्दलान्वितम् ।
तण्डुलैः कारयेद्वद्वा रक्तपीतसितासितैः ॥
कर्णिकायां न्यसेद्व्रीहीन् स्थापयेत्तेषु कुम्भकम् ।
आजिघ्रकलशेत्यनया कलशस्थापनं शुभम् ॥
इमं मे इति मन्त्रेण पूरयेत्तीर्थवारिणा ।
कुम्भं च वस्त्रगन्धाद्यैस्तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥
याः फलिनीरित्यनया क्षिपेद्वर्णौषधादिकान् ।
कुम्भोपरिस्थपात्रे तु आश्लेषाप्रतिमां यजेत् ॥ सर्पप्रतिमाम् ।
निष्क—निष्कार्ध—पादैर्वा कारयित्वा स्वशक्तितः ।
तत्पूर्वोत्तरनक्षत्रे (नक्षत्रदेवते) दक्षिणोत्तरयोर्यजेत् ॥
ऐन्द्रादीशानपर्यन्तमितरर्क्षाणि पूजयेत् । इतरर्क्षदेवताः ।
मूलोक्तेन विधानेन कुम्भयोरभिमन्त्रणम् ॥
रुद्रार्चा रुद्रकुम्भे तु पूर्ववच्छेषमाचरेत् ।
नमो अस्तु सर्पेभ्यः पूजामन्त्र इतीरितः ॥
सर्पा रक्तास्त्रिनेत्राश्च द्विभुजाः पीतवस्त्रकाः ।
फलकासिधरास्तीक्ष्णा दिव्याभरणभूषिताः ॥
एवं ध्यात्वा ततोऽभ्यर्च्य होमकर्म समाचरेत् ।
कर्तुः शास्त्रोक्तमार्गेण आचार्यस्याथवाऽऽचरेत् ॥
स्रुवान्तं कर्म निर्वर्त्य हविरादाय शास्त्रतः ।

इदं सर्पेभ्यो जुहुयात्साधिमत्यधिदैवतम् ॥ इदं हविः ।
अष्टोत्तरशतं वाऽथ अष्टाविंशतिमेव च ।
मूलनक्षत्रवच्छेषं होमकर्म समाचरेत् ॥
पूर्णाहुत्यन्तकर्माणि कृत्वा संपातकं तथा ।
कुम्भे जलं च प्रक्षिप्य अभिषेकमथाचरेत् ॥
दारपुत्रसमेतस्य यजमानस्य पूर्ववत् ।
अभिषिञ्चेत्तथाऽऽचार्य ऋत्विग्भिः सहितस्तथा ॥
अभिमन्त्रितकुम्भाद्भिरभिषेचनमाचरेत् ।
तथा पौराणमन्त्रैश्च पल्लवैरभिषेचयेत् ॥
आश्लेषाऋक्षजातस्य मातापित्रोर्धनस्य च ।
भ्रातृज्ञातिकुलस्थानां दोषं सर्वं व्यपोहतु ॥
योऽसौ वागीश्वरो नाम अधिदेवो बृहस्पतिः ।
मातापित्रोः शिशोश्चैव गण्डान्तं च व्यपोहतु ॥
पितरः सर्वभूतानां रक्षन्तु पितरः [पितॄन्] सदा ।
सर्पनक्षत्रजातस्य वित्तं च ज्ञातिवान्धवान् ॥
एवं कृतेऽभिषेके तु सार्पशान्तिर्भवेद्ध्रुवम् ।
ततः शुक्लाम्बरधरो यजमानः सुभूषितः ॥
दक्षिणाभिस्ततो विप्रान् मूलवच्च प्रतोषयेत् ।
भुक्तवद्भ्यश्च विप्रेभ्यः स्वीकुर्यादाशिषं गृही ॥
इत्युक्तेन विधानेन सर्वारिष्टं व्यपोहति ।
सर्पाधीश नमस्तुभ्यं नागानां च गणाधिप ॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वारिष्टप्रशान्तये ।

इत्युत्तरपूजायामर्घः ।

मूलनक्षत्रवत्कुर्यात् सार्पगण्डे स्वनामतः ॥ इति ।

अथाश्लेषाशान्तिप्रयोगः ।

तत्र आश्लेषाजातस्य पिता द्वादशाहादौ शान्त्यर्थं मूलनक्षत्रवन्मण्डपं शालां वा विधाय तदुत्तरतः स्नानमण्डपं च विधाय गोम-

योपलिप्तभूमौ शुभासने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य शान्तिपाठं (स्वस्तिवाचनं) कृत्वा प्रथमं गणेशपूजनं कुर्य्यात् । ततः अद्येहे-त्यादिसंकीर्त्य अमुकराशेः पुत्रस्य आश्लेषानक्षत्रामुकपादजननसू-चितपित्राद्यरिष्टनिरसनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गोमुखप्रसवपूर्वकं शौनकोक्तप्रकारेण ग्रहयागसहिताम् आश्लेषाशान्तिं करिष्ये। तत्पूर्वा-ङ्गत्वेन मातृपूजानान्दीश्राद्धपुण्याहवाचनानि करिष्ये इति संकल्प्य पुण्याहवाचनान्तमनुष्ठाय आचार्य्यादीनां वरणं कुर्यात्। तत्र संकल्पः-अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं करिष्यमाणाश्लेषाशान्तिकर्म्म कर्तुं कारयितुं च आचार्य्यादीनां पूजनपूर्वकं वरणं करिष्ये इति संकल्प्य आचार्य्यं ब्रह्माणं सदस्यम् ऋत्विजः एकादशिनी–अप्रतिरथसूक्ता-दि–सप्तशती–शान्तिकाध्याय–पाठकारकांश्च वृत्वा 'यथाविहितं कर्म्म कुरुध्वम्' इति यजमानो ब्रूयात् । ततः 'करवाम' इति ते वदेयुः । ततः गोमुखप्रसवं पूर्वोक्तविधिना (२०८) अनुष्ठाय आचार्यो मूलनक्षत्रशान्तिवत् मण्डपे गृहशालायां वा पञ्चगव्येन पुण्यतीर्थतो-येन च आपोहिष्ठेति तिसृभिः भूमिं प्रोक्ष्य मण्डपसत्त्वे तत्पूजां कृत्वा तत्र नैर्ऋत्यां स्थण्डिले पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निमुपसमादध्यात् ।

ततः होमवेद्या ईशाने पञ्चवर्णैः स्वस्तिकं विधाय तत्र द्रोणव्री-हीन्निक्षिप्य तत्र सुलक्षणं रक्तं व्रणविवर्जितं कुम्भं संस्थाप्य तस्य चतुर्दिक्षु कलशचतुष्टयं संस्थाप्य, चतुष्प्रस्रवणम् एकमेव वा पञ्चानां स्थाने संस्थाप्य मध्यकलशे मध्यमुखे वा मयूरशिखादीनि शतमू-लानि तदलाभे विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, तुलसी, शतावरीः तदलाभे केवलां शतावरीं निक्षिप्य तदुपरि ताम्रादिपूर्णपात्रे वस्त्रोपरि अग्न्यु-त्तारितां पञ्चामृतस्नापितां सुवर्णनिर्मितां रुद्रप्रतिमां "त्र्यम्बकम्" इति मन्त्रेणावाह्य उक्तरीत्या (२२२) पूजयेत् । तत्र रुद्रजापक-त्वेन वृतः कुम्भं स्पृष्ट्वा रुद्रैकादशिनीं जपेत् । ततस्त्र्यम्बकमन्त्रम् अ-ष्टोत्तरसहस्रवारं, पावमानीश्च नव सकृज्जपेत् । ततः (२२३) पूर्वो-क्तरीत्या अप्रतिरथसूक्तादीनि सूक्तजापकत्वेन वृतः पूर्वादिकुम्भान् प्रस्रवणानि वा स्पृशन् एकादशवारं जपेत् ।

("देवतास्थापने चैकमेकं रुद्राभिमन्त्रणे" इति कुम्भद्वयस्य मूलशान्तिव्यवस्थातो वैलक्षण्यस्य उक्तेः प्रधानसर्पदेवतास्थापनार्थमेकः कुम्भः, रुद्रादिजपार्थं च चतुष्प्रस्रवणो द्वितीय इति द्वावेव कुम्भौ। न तु मूलशान्तिवत् प्रधानस्थापनार्थं तृतीयः। पञ्चकुम्भपक्षे तु प्रधानकुम्भात् भिन्ना एव चतुष्प्रस्रवणस्थानीयाः पञ्च कुम्भाः। पञ्चानामेव पञ्चमुखचतुष्प्रस्रवणसाध्यरुद्रादिजपरूपकार्यपञ्चकसाधनक्षमत्वात्। रुद्रकुम्भस्तु पञ्चभ्यो नात्रातिरिक्तः। चतुष्प्रस्रवणपक्षे मध्यमुखेनैव मध्यकुम्भेनैव तत्कार्यसिद्धेः)।

रुद्रकुम्भोत्तरतश्चतुर्विंशतिदलं कर्णिकान्वितं पङ्कजं शुक्लादितण्डुलैः कृत्वा तन्मध्ये कर्णिकायां मूलशान्त्युक्तविधिना कलशं संस्थाप्य तत्र शतमूलानि, विष्णुक्रान्तादिचतुष्टयं, केवलशतावरीं वा निक्षिप्य तदुपरि ताम्रादिपूर्णपात्रे वस्त्रोपरि अष्टदलं विलिख्य तत्कर्णिकायां स्थापितासु अग्न्युत्तारितासु पञ्चामृतस्नापितासु सुवर्णप्रतिमासु सर्पाणां गुरोः पितॄणां च आवाहनं वक्ष्यमाणरीत्या कुर्यात्—ॐभूर्भुवः स्वः सुवर्णप्रतिमायाम् मध्ये आश्लेषानक्षत्रदेवाः सर्पाः इहागच्छन्त्विह तिष्ठन्तु पूजार्थं युष्मान् आवाहयामि स्थापयामि १। तद्दक्षिणे ॐ भूर्भुवः स्वः सर्पाधिदेव पुष्यनक्षत्रदेव गुरो इहागच्छेह तिष्ठ पूजार्थं त्वाम् आवाहयामि स्था० २। तद्वामे ॐभूर्भुवः स्वः सर्पप्रत्यधिदेवाः मघानक्षत्रदेवाः पितर इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु पूजार्थं युष्मानावाहयामि स्था० ३।

ततो भूमिष्ठचतुर्विंशतिदलेषु पूगफलानि अक्षतपुञ्जान् वा संस्थाप्य तेषु पूर्वतः ईशानपर्यन्तम् ॐ भू० पूर्वफल्गुनीदेव भग इहा० ४ ॐ भू० उत्तरफल्गुनीदेव अर्यमन् इहा० ५ ॐ भू० हस्तदेव रवे इहा० ६ ॐ भू० चित्रादेव त्वष्टः इहा० ७ ॐ भू० स्वातीदेव वायो इहा० ८ ॐ भू० विशाखादेवौ इन्द्राग्नी इहागच्छतम् इह तिष्ठतं पूजार्थं युवाम् आवाहयामि स्था०९ ॐ भू० अनुराधादेव मित्र इहा. १० ॐ भू० ज्येष्ठादेव इन्द्र इहा. ११ ॐ भू०

मूलदेव निर्ऋते इहा. १२ उ. स्थ.। ॐ भू. पूर्वाषाढादेव तोय इहा० १३ ॐ भू० उत्तराषाढादेवा विश्वेदेवाः इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु पूजार्थं युष्मानावाहयामि स्था० १४ ॐ भू० श्रवणदेव गोविन्द इहा. १५ ॐ भू० धनिष्ठादेवाः वसव इहागच्छन्त्विह तिष्ठन्तु पूजार्थं युष्मानावाहयामि स्था० १६ ॐ भू० शतभिषग्देव वरुण इहा. १७ ॐ भू० पूर्व्वभाद्रपदादेव अजचरण इहा. १८ ॐ भू. उत्तरभाद्रपदादेव अहिर्बुध्न्य इहा. १९ ॐ भू. रेवतीदेव पूषन् इहा. २० ॐ भू. अश्विनीदेवौ दस्रौ इहागच्छतम् इह तिष्ठतं पूजार्थं युवाम् आवाहयामि स्था. २१ ॐ भू. भरणीदेव यम इहा. २२ ॐ भू. कृत्तिकादेव अग्ने इहा. २३ ॐ भू. रोहिणीदेव ब्रह्मन् इहा. २४ ॐ भू. मृगशिरोदेव चन्द्र इहा. २५ ॐभू. आर्द्रादेव रुद्र इहा. २६ उ. स्थ.। ॐ भू. पुनर्व्वसुदेवते अदिते इहागच्छेह तिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि स्था. २७ एवं संस्थाप्य "एतन्ते" इत्यादि पठित्वा ॐ भूर्भुवः स्वः चतुर्विंशतिदलकमलकर्णिकामध्ये कलशोपरि सुवर्णप्रतिमासु पुष्यनक्षत्रदेवाधिदेवगुरुसहिता मघानक्षत्रदेवप्रत्यधिदेवपितृसहिता आश्लेषानक्षत्रदेवाः सर्पा इहागच्छन्त्विह तिष्ठन्तु तथा चतुर्विंशतिदलस्थेषु पूगफलेषु अक्षतपुञ्जेषु वा पूर्वफल्गुन्यादिचतुर्विंशतिनक्षत्रदेवाः भगाद्यदितिपर्यन्ताः इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु इति प्रतिष्ठाप्य तदुत्तरतः अपरं कलशं संस्थाप्य तत्र ब्रह्मवरुणसहितानधिदेवतादिसहितांश्चादित्यादिग्रहानावाह्य "एतं ते" इति पठित्वा ॐ भू० कलशे ब्रह्मवरुणसहिताः आदित्यादिनवग्रहाः साधिदेवप्रत्यधिदेव–पञ्चलोकपाल–वास्तोष्पतिक्षेत्रपालदशदिक्पालाः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु इति प्रतिष्ठाप्य पूजासंकल्पं कुर्य्यात्—

अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहम् अमुकराशेरस्य बालकस्य आश्लेषानक्षत्रामुकपादजननसूचितारिष्टनिरसनपूर्व्वकसर्वोपद्रवशान्त्यर्थं दीर्घायुरारोग्यप्राप्तये च चतुर्विंशतिदलकर्णिकायां स्थापितकलशो-

परि सुवर्णप्रतिमासु आवाहितानाम् अधिदेवताप्रत्यधिदेवतासहितानां सर्पाणां तथा चतुर्विंशतिदलस्थेषु दध्यक्षतपुञ्जेष्वावाहितानां भगाद्यदितिपर्यन्तानां देवानां तथा तदुत्तरकलशे आवाहितानां ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहाणां साधिदेवप्रत्यधिदेवानां वास्तोष्पतिक्षेत्रपालपञ्चलोकपालदशदिक्पालसहितानां च पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य प्रथमं सर्पान् ध्यायेत्—

सर्पा रक्तास्त्रिनेत्राश्च द्विभुजाः पीतवस्त्रकाः।
वरदाभयहस्ताश्च दिव्याभरणभूषिताः॥

अथ गुरुध्यानम्—

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी चतुर्भुजो देवगुरुः प्रशान्तः।
दधाति दण्डं च कमण्डलुं च तथाऽक्षसूत्रं वरदोऽस्तु मह्यम्॥

अथ पितृध्यानम्—

शुक्लाम्बराः शुक्लगन्धाः शुक्लयज्ञोपवीतिनः।
आत्मनोऽभिमुखासीना ज्ञानमुद्रा निरायुधाः॥

अन्येषां भगाद्यदितिपर्य्यन्तानां ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहाणां च वक्ष्यमाणनाममन्त्रैर्ध्यानं कुर्यात्। सर्पपूजने मन्त्रः—

ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।
ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥ॐसर्पेभ्यो नमः।

गुरुमन्त्रः—

ॐ बृहस्पते ऽअति यदर्य्यो ऽअर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥
ॐ गुरवे नमः।

अथ पितृमन्त्रः—

ॐ पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः।
पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा॥
पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः।
पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै॥

ॐ पितृभ्यो नमः। एतैर्मन्त्रैः प्रधानदेवताधिदेवताप्रत्यधिदेवतानां पूजनम् ३।

अन्येषां पूर्वफल्गुन्यादिदेवतानां नाममन्त्रैः पू०। यथा—पूर्वफल्गुनीदेवाय ॐ भगाय नमः ४ उत्तरफल्गुनीदेवाय ॐ अर्य्यम्णे नमः ५ हस्तनक्षत्रदेवाय ॐ रवये नमः ६ चित्रादेवाय ॐ त्वष्ट्रे नमः ७ स्वातीदेवाय ॐ वायवे नमः ८ विशाखादेवाभ्याम् ॐ इन्द्राग्निभ्यां नमः ९ अनुराधादेवाय ॐ मित्राय नमः १० ज्येष्ठादेवाय ॐ इन्द्राय नमः ११ मूलदेवाय ॐ निर्ऋतये नमः १२ उ. स्प.। पूर्वाषाढादेवाय ॐ तोयाय नमः १३ उत्तराषाढादेवेभ्यः ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः १४ श्रवणदेवाय ॐ गोविन्दाय नमः १५ धनिष्ठादेवेभ्यः ॐ वसुभ्यो नमः १६ शतभिषग्देवाय ॐ वरुणाय नमः १७ पूर्वभाद्रपदादेवाय ॐ अजचरणाय नमः १८ उत्तरभाद्रपदादेवाय ॐ अहिर्बुध्न्याय नमः १९ रेवतीदेवाय ॐ पूष्णे नमः २० अश्विनीदेवाभ्याम् ॐ अश्विभ्यां नमः २१ भरणीदेवाय ॐ यमाय नमः २२ कृत्तिकादेवाय ॐ अग्नये नमः २३ रोहिणीदेवाय ॐ ब्रह्मणे नमः २४ मृगशिरोदेवाय ॐ चन्द्रमसे नमः २५ आर्द्रादेवाय ॐ रुद्राय नमः २६ उ. स्प.। पुनर्वसुदेवतायै ॐ अदितये नमः २७ इति नाममन्त्रैः पाद्यादिभिः पूजनम्।

अन्यस्मिन्कलशे ॐ ब्रह्मणे नमः ॐ वरुणाय नमः ॐ आदित्याय नमः ॐ सोमाय नमः ॐ भौमाय नमः ॐ बुधाय नमः ॐ गुरवे नमः ॐ शुक्राय नमः ॐ शनैश्चराय नमः ॐ राहवे नमः ॐ केतुभ्यो नमः ॐ अधिदेवताभ्यो नमः ॐ प्रत्यधिदेवताभ्यो नमः ॐ विनायकादिपञ्चलोकपालेभ्यो नमः ॐ वास्तोष्पतये नमः ॐ क्षेत्राधिपतये नमः ॐ इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो नमः इति नाममन्त्रैः सर्वेषां पाद्यादिनीराजनान्तं पूजनं (१)विदध्यात्॥

ततो होमवेद्यां ब्रह्मोपवेशनादि अर्थवत्प्रोक्षणान्तं कर्म्म कृत्वा

---

(१) गोप्रसवहोमस्य तन्त्रेणाचरणे ग्रहकलशोत्तरतः अपरं कलशमुक्तरीत्या (२१०) संस्थाप्य तत्र विष्ण्वादीनावाह्य पूर्वोक्तरीत्या पूजयेत्।

होमद्रव्याणि पायसं, चरुं, कृसरं चेत्येतानि श्रपयित्वा समिदाज्यादि संपाद्य पर्युक्षणान्तं कुर्यात्। ततो वरदनामानमग्निम् "एतंते" इति प्रतिष्ठाप्य संपूज्य रेखा जिह्वाश्च पूजयित्वा अग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं स्थापयेत्।

ततो यजमानो द्रव्यदेवताभिध्यानपूर्वकं द्रव्यत्यागं कुर्य्यात्। अद्येह अमुकोऽहं सग्रहयागेन आश्लेषाशान्तिकर्मणा(१)यक्ष्ये। तत्र प्रजापतिम् इन्द्रम् अग्निं सोमम् आज्येन—नवग्रहान् अष्टसंख्याभिः समिच्चर्वाज्यतिलाहुतिभिः—अधिदेवताः प्रत्यधिदेवताश्च चतुःसंख्याभिः समिच्चर्वाज्यतिलाहुतिभिः—विनायकादिपञ्चलोकपालान् इन्द्रादिदशदिक्पालांश्च द्विद्विसंख्याभिः समिदाद्याहुतिभिः—(२) सर्पान् प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिर्घृतमिश्रपायस—समिद्—आज्य—चर्वाहुतिभिः—बृहस्पतिम् पितॄंश्च प्रतिद्रव्यमष्टाविंशतिसंख्याभिर्घृतमिश्रपायससमिदाज्यचर्वाहुतिभिः—भगाद्याश्चतुर्विंशतिदेवता अष्टसंख्याभिः पायसाहुतिभिः—रक्षोहणं "कृणुष्वपाज" इति पञ्चदशभिर्ऋग्भिः प्रत्यृचमष्टसंख्याभिः कृसराहुतिभिः—सवितारं दुर्गां त्र्यम्बकम् ऋत्विक्स्तुतिं दुर्गां वास्तोष्पतिम् अग्निं क्षेत्राधिपतिं मित्रावरुणौ अग्निं च अष्टसंख्याभिः कृसराहुतिभिः—श्रियं "हिरण्यवर्णाम्" इति पञ्चदशभिर्ऋग्भिः प्रत्यृचमष्टसंख्याभिः समिदाज्यचर्वाहुतिभिः—सोमं त्रयोदशसंख्याभिः पायसाहुतिभिः— रुद्रं चतुर्गृहीतेनाज्येन—शेषेण स्विष्टकृतम्—अग्न्यादिप्रजापत्यन्तांश्चाज्येनाहं यक्ष्ये।

इदं सम्पादितम् आज्य—पायस—समित्—तिल—कृसर—चरुद्रव्य-

---

(१) गोमुखप्रसवहोमस्य तन्त्रेणाचरणे 'सगोमुखप्रसवेन' इत्यपि योज्यम्।

(२) तन्त्रेण गोमुखप्रसवहोमाचरणे अतः पूर्वं 'विष्णुं "तद्विष्णोः" इति ऋचा अष्टाविंशत्यष्टान्यतरसंख्याहुतिभिः, वरुणम् "आपोहिष्ठा" इति तिसृभिः "अप्सुमेसोम" इत्यनया च प्रत्यृचमुक्तसंख्याहुतिभिः, यक्ष्महणम् "अक्षीभ्याम्" इति सूक्तेन प्रत्यृचमुक्तसंख्याहुतिभिः, ग्रहांश्च तत्तन्मन्त्रैरुक्तसंख्याहुतिभिः मिलितदधिमध्वाज्यद्रव्यैः' इति योज्यम्।

जातम् आघाराज्यभागदेवताभ्यः नवग्रहेभ्यः अधिदेवताभ्यः प्रत्यधिदेवताभ्यो विनायकादिलोकपालेभ्यः इन्द्रादिदिक्पालेभ्यः(१)सर्प्प–गुरु–पितृ–भगार्य्यम–रवि–त्वष्टृ–वायु–इन्द्राग्नि–मित्रेन्द्र–निर्ऋति–तोय–विश्वदेव–विष्णु–वसु–वरुणाजपादहिर्बुध्न्य–पूष–दस्र–यमाग्नि–ब्रह्म–चन्द्र–रुद्रादितिभ्यः रक्षोह–सवितृ–दुर्गा–रुद्र–ऋत्विक्स्तुति–दुर्गा–वास्तोष्पति–अग्नि–क्षेत्राधिपति-मित्रावरुण-अग्नि–श्री-सोमरुद्र–स्विष्टकृदग्निभ्यो महाव्याहृतिदेवताभ्यः सर्व्वप्रायश्चित्तदेवताभ्यः प्रजापतये च मया परित्यक्तम् ॐ तत्सत् यथादैवतमस्तु न मम इति दक्षिणतः स्थितो विदध्यात् ।

तत आचार्यः कृतरक्षासूत्राभिमन्त्रणः ब्रह्मणाऽन्वारब्धः दक्षिणं जानु निपात्य आघारावाज्यभागौ च हुत्वा त्यक्तान्वारम्भः प्रथमं ग्रहयागप्रयोगोक्तरीत्या ऋत्विग्भिः सह द्रव्यदेवताभिध्यानोक्तक्रमेण आदित्यादिग्रहादिदिक्पालान्तेभ्यः समिच्चर्वाज्यतिलैर्हुत्वा (गोप्रसवहोमस्य तन्त्रेणाचरणे उक्तरीत्या विष्ण्वादिभ्योऽपि हुत्वा) घृतमिश्रितेन पायसेन, पालाशखादिरान्यतरसमिद्भिः, आज्येन, चरुणा च प्रधानसर्पेभ्यः अष्टोत्तरशतधा होमं कुर्य्यात्—

नमोऽस्तुसर्पेभ्य इति प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सर्पा देवताः पायसादिहोमे विनियोगः ।

ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः–स्वाहा ॥
(इदꣳ सर्पेभ्यो.) १०८ ।

ततः अधिदेवबृहस्पतये अष्टाविंशतिसंख्यया पायसादिभिर्जुहुयात् ।

बृहस्पते इति गृत्समद ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः बृहस्पतिर्देवता पायसादिहोमे विनियोगः ।

ॐबृहस्पते ऽअति यदर्य्यो ऽअर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।

---

(१) गोमुखप्रसवहोमस्य तन्त्रेणाचरणे इतः पूर्वं "विष्णवे वरुणाय यक्ष्मघ्ने" इति योज्यम् ।

यदीदयच्छवस ऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्—स्वाहा (इदं बृहस्पतये.) २८।

ततः पुनन्तु मा पितर इति प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः पितरो देवताः पायसादिहोमे विनियोगः।

ॐ पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः।
पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा॥
पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः।
पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै—स्वाहा

(इदं पितृभ्यो.) इति पायसादिभिः प्रत्यधिदेवपितृभ्यः अष्टाविंशतिसंख्यया (२८) हुत्वा उ. स्प.। नाममन्त्रैर्भगादिचतुर्विंशतिदेवताभ्योऽष्टसंख्यया पायसेन जुहुयात्—

ॐ भगाय नमः स्वाहा ८ (इदं भगाय.) ॐ अर्यम्णे नमः स्वाहा ८ (इदमर्यम्णे.) ॐ रवये नमः स्वाहा ८ (इदᳬरवये.) ॐ त्वष्ट्रे नमः स्वाहा ८ (इदं त्वष्ट्रे.) ॐ वायवे नमः स्वाहा ८ (इदं वायवे.) ॐ इन्द्राग्निभ्यां नमः स्वाहा ८ (इदमिन्द्राग्निभ्यां.) ॐ मित्राय नमःस्वाहा ८ (इदं मित्राय) ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा ८ (इदमिन्द्राय.) ॐ निर्ऋतये नमः स्वाहा ८ (इदं निर्ऋतये.) उ. स्प.। ॐ तोयाय नमः स्वाहा ८ (इदं तोयाय.) ॐविश्वेभ्योदेवेभ्यो नमः स्वाहा ८ (इदं विश्वेभ्योदेवेभ्यो.) ॐ गोविन्दाय नमः स्वाहा ८ (इदं गोविन्दाय.) ॐ वसुभ्यो नमः स्वाहा ८ (इदं वसुभ्यो.) ॐवरुणाय नमः स्वाहा ८ (इदं वरुणाय.) ॐअजचरणाय नमः स्वाहा ८ (इदमजचरणाय.) ॐ अहिर्बुध्न्याय नमः स्वाहा ८ (इदमहिर्बुध्न्याय.) ॐपूष्णे नमः स्वाहा ८ (इदं पूष्णे.) ॐदस्राभ्यां नमः स्वाहा ८ (इदं दस्राभ्यां.) ॐयमाय नमः स्वाहा ८ (इदं यमाय) ॐअग्नये नमः स्वाहा ८ (इदमग्नये.) ॐब्रह्मणे नमः स्वाहा ८ (इदं ब्रह्मणे.) ॐ चन्द्रमसे नमः स्वाहा ८ (इदं चन्द्रमसे.) ॐरुद्राय नमः स्वाहा ८ (इदᳬ रुद्राय.) उ.स्प.।

ॐ अदित्यै नमः स्वाहा ८ (इदमदित्यै.) इति प्रत्येकमष्टसंख्यया हुत्वा "कृणुष्वपाज" इति पञ्चदशभिर्मन्त्रैः प्रत्येकमष्टधा मूलशान्तिवत् कृसरहोमं रक्षोहणे विधाय सवित्रादिभ्योऽन्यन्तेभ्यश्च कृसरं गायत्र्यादिमन्त्रैरष्टसंख्यया मूलशान्त्युक्तप्रकारेण हुत्वा समिदाज्यचरुभिः श्रीसूक्तेन प्रत्यृचमष्टसंख्यया हुत्वा "त्वन्न" इति मन्त्रेण सोमाय त्रयोदशसंख्यया पायसं हुत्वा यातेरुद्रेति मन्त्रेण चतुर्गृहीताज्यहोमं कुर्य्यात् । मन्त्राश्चैते मूलशान्तौ द्रष्टव्याः । उ. स्प. ।

ततोऽन्वारब्ध आचार्यः स्विष्टकृद्धोमं भूरादिनवाहुतिहोमं संस्रवप्राशनादि च कुर्यात् । ततो यजमानः पूर्णपात्रं ब्रह्मणे दद्यात् । तत आचार्यो ग्रहादिभ्यो ग्रहयागोक्तरीत्या बलीन् दत्त्वा सर्पेभ्यो गुरवे पितृभ्यः भगाद्यदित्यन्तेभ्यो रुद्राय च मूलशान्त्युक्तरीत्या (बलीन् दत्त्वा क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात्) उ. स्प. ।

ततः साचार्य्यो यजमानः पूर्णाहुतिं जुहुयात् । तत्र संकल्पः-अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहम् आश्लेषानक्षत्रजननशान्तिहोमकर्म्मणः न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं मृडनामाग्नौ पूर्णाहुतिहोमं करिष्ये। ततो नारिकेलं पूगीफलं वा रक्तवस्त्रसहितं कृत्वा स्रुचे निधाय स्रुवं स्रुचं च संपूज्य ब्रह्मणा स्रुवेण स्रुचि चतुर्वारं द्वादशवारं वा दत्तमाज्यं समुद्रादूर्मिरित्यादिमन्त्रैः यजमानेनान्वारब्ध आचार्य्यो मूलशान्तिवत् जुहुयात् । "तनूपा अग्नेऽसि" इत्यादिभिः मुखमार्जनम् "अङ्गानि च म आप्यायन्ताम्" इत्यादिभिरङ्गालम्भनं च कुर्यात् । उ. स्प. ।

ततः कुम्भद्वये पूर्ववद् धूपदीपादिभी रुद्रस्य सर्पाणां च (१)पूजनं विधाय यजमानाभिषेकार्थम् आचार्य्य आदरात् सर्पान् "नमोऽस्तु सर्पेभ्य" इति, रुद्रं "त्र्यम्बकम्" इति प्रसादयेत् । ततो यजमानः प्राङ्गणकल्पितस्नानमण्डपे श्रीपर्ण्याद्यासने नव्यवस्त्रं प्रसार्य्य सपुत्र-

(१) पूर्णाहुत्यन्तकर्माणि कृत्वा संपातकं तथा । कुम्भे जलं च प्रापय्य अभिषेकमथाचरेत् ॥ इति विशेषोक्त्या अत्र पुना रुद्रादिजपो नास्तीत्यवधेयम् ।

सपत्नीकः शङ्खादिरवे जायमाने मङ्गलगीतवाद्यानि शृण्वन् स्नानसंकल्पं कुर्य्यात्—अद्येत्यादि संकीर्त्य अमुकराशिरमुकशर्म्मा सपुत्रसपत्नीकोऽहं मम पुत्रस्य आश्लेषानक्षत्रामुकपादजननसूचितपित्राद्यरिष्टदोषपरिहारार्थं शुभफलप्राप्तये च अभिषेकमन्त्रैर्यज्ञान्तस्नानं करिष्ये इति। तत आचार्य्यादयो ब्राह्मणाः ॐ "अक्षीभ्याम्" इत्यादिभिः (२७६) "सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदाः" इत्यन्तैः (२८५) मूलशान्तिप्रकरणोक्तैरभिषेकमन्त्रैः—

आश्लेषाऋक्षजातस्य मातापित्रोर्धनस्य च।
भ्रातृज्ञातिकुलस्थानां दोषं सर्वं व्यपोहतु॥
योऽसौ वागीश्वरो नाम अधिदेवो बृहस्पतिः।
मातापित्रोः शिशोश्चैव गण्डान्तं च व्यपोहतु॥
पितरः सर्वभूतानां रक्षन्तु पितरः (पितॄन्) सदा।
सर्पनक्षत्रजातस्य वित्तं च ज्ञातिबान्धवान्॥

इत्येतैश्च अभिषेकं कुर्य्युः। अभिषेकान्ते यजमानः सहस्रधाराभिः स्नात्वा शुक्लाम्बरधरो भूत्वा रूपंरूपमिति मन्त्रेण (२८५) घृतच्छायादर्शनं कृत्वा स्नानवस्त्राण्याचार्याय दत्त्वा सुमुहूर्त्ते शङ्खादिरवे जायमाने स्वस्तिवाचनं पठत्सु विप्रेषु पुत्रमुखं पश्यन् अङ्गादङ्गादिति मन्त्रेण(२८५) पुत्रं स्वाङ्के निधाय मूर्ध्न्यवघ्राय गोदानप्रतिमादानहोमदक्षिणादिसंकल्पं कुर्य्यात्। तद्यथा—अद्येत्यादि संकीर्त्य अमुकराशिरमुकशर्म्मा सपुत्रसपत्नीकोऽहं मम पुत्रस्य आश्लेषानक्षत्रे जन्मसूचितारिष्टनिवृत्तिद्वारा शुभफलप्राप्तये सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं च शौनकोक्तप्रकारेण कृतस्याश्लेषाशान्तिहोमकर्म्मणः साङ्गफलप्राप्तये साद्गुण्यार्थं च इमां सवत्सां कृष्णां गां (तन्निष्क्रयं) तथा वस्त्रकुम्भसहिताधिदेवताप्रत्यधिदेवताप्रतिमासहिताश्लेषानक्षत्रदेवसर्प्पप्रतिमां तथेमां नवग्रहपूजासामग्रीं च आचार्य्याय दास्ये। तथा श्रीरुद्रजापिने सकुम्भवस्त्रां श्रीरुद्रप्रतिमां कृष्णमनड्वाहं (तन्निष्क्रयं) च दास्ये। तथा ब्रह्मसदस्यर्त्विक्सप्तशतीशान्तिकाध्यायाप्रतिरथसूक्तादिपाठकारकेभ्यो

ब्राह्मणेभ्यो यथांशं दक्षिणां विभज्य दास्ये। तथेमां भूयसीं दक्षिणां यथाविभवसिद्धमिष्टं च ब्राह्मणेभ्योऽन्येभ्यश्च विभज्य दास्ये ॐतत्सन्न मम इति संकल्प्य यथाक्रमम् आचार्य्याय सुवर्णं तदर्द्धं ब्रह्मणे तदर्द्धं सदस्याय तदर्द्धमृत्विग्भ्यः तदर्द्धं सूक्तादिपाठकेभ्यो दद्यात्। तत आचार्य्यादयो ब्राह्मणास्तिलकाक्षतारोपण–रक्षाबन्धन–त्र्यायुषकरण–मन्त्रपाठादिकं कुर्य्युः। यजमानश्च तेभ्य आशिषो गृहीत्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत्। ततः सर्पादीनां देवतानामग्नेश्चोत्तराङ्गपूजनं विधाय ताम्रपात्रे फलपुष्पादियुतमर्घ्यं गृहीत्वा—

सर्पाधीश नमस्तुभ्यं नागानां च गणाधिप।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वारिष्टप्रशान्तये॥

इत्यर्घ्यं दत्त्वा "यान्तु देवगणा" इति देवान्विसृज्य गच्छगच्छेत्यग्निं च विसृज्य—

कांस्यपात्रोपरि स्थाप्य दीपान्प्रज्वलितान्बुधः।
प्रकुर्य्यान्मङ्गलार्थं च महानीराजनं विधिम्॥

इत्युक्तप्रकारेण नीराजनं कारयित्वा ततः पायसादिना सिद्धान्नेन शतं, पञ्चाशतं, दश वा ब्राह्मणान्भोजयिष्ये इति संकल्प्य तान्भोजयित्वा आमं मिष्टं वा तेभ्यो दत्त्वा "ऋचंवाचम्"इति शान्त्यध्यायपाठं कारयित्वा तेभ्य आशिषो गृहीत्वा कर्मसंपूर्णतां वाचयित्वा "कायेन वाचा" इति पठित्वा 'अनेन शान्तिकर्म्मणा ॐ तत्सत् श्रीपरमेश्वरः प्रीयतां तत्प्रीत्या सर्पाः प्रीयन्तां न मम' इति ईश्वराय समर्प्य ब्राह्मणानुज्ञया सुहृद्बन्धुयुतः स्वयं भुञ्जीतेति। आश्लेषाशान्तिः प्रायो मूलशान्तिवत्॥

इति शौनकोक्ताश्लेषानक्षत्रजननशान्तिप्रयोगः॥

अथ प्रथमोर्ध्वदन्तजननशान्तिविधिः।

हेमाद्रौ पाद्मे विष्णुधर्म्मोत्तरे च परशुरामं प्रत्याह पुष्करः—

दन्तजन्मनि बालानां लक्षणं तन्निबोध मे।
उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते हि शिशोर्द्विजाः॥
दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम।

मातरं पितरं चैव खादत्यात्मानमेव च ॥
शान्तिं तत्र प्रवक्ष्यामि तां मे निगदतः शृणु ।
गजपृष्ठस्थितं बालं नौस्थं वा स्नापयेद्बुधः ॥
तदभावे तु धर्मज्ञ काञ्चने च वरासने ।
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैस्तथा ॥
पञ्चगव्यैः पञ्चरत्नैर्मृत्तिकाभिश्च भार्गव (स्नापयेत्) ।
स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम् ॥
सप्ताहं चात्र कर्त्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम् ।
अष्टमेऽहनि विप्राणां तथा देया च दक्षिणा ॥
काञ्चनं रजतं गां च भुवं वा धान्यमेव च । इति ।

प्रकारान्तरमुक्तं पद्मपुराणे—

दन्तजन्मनि सामान्ये (निषिद्धे) शृणु स्नानमतः परम् ।
भद्रासने निवेश्यैनं मूर्ध्नि मूलफलैस्तथा ॥
सर्वौषधैः सर्वबीजैः सर्वगन्धैस्तथैव च ।
स्नापयेत्पूजयेच्चाथ वह्निसोमसमीरणान् ॥
पर्वतांश्च तथा ख्यातान् देवदेवं च केशवम् ।
एतेषामेव जुहुयात् घृतमग्नौ यथाविधि ॥
ब्राह्मणानां तु दातव्या यथाशक्त्या च दक्षिणा ।
ततस्त्वलंकृतं बालमासने तूपवेशयेत् ॥
पूज्याश्चाविधवा नार्यो ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा । इति ।

अथ प्रथमोर्ध्वदन्तजननशान्तिप्रयोगः ।

चन्द्रतारानुकूले शुभदिने नित्यमनुष्ठाय शुभासने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य अर्घं संस्थाप्य प्राणानायम्य शा. पा. गणेशपूजनसंकल्पं कुर्यात् । अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहम् अमुकराशेरस्य बालकस्य प्रथमोर्ध्वदन्तजननशान्तिकर्मणि सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं श्रीभगवतो गणेश्वरस्य पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य यथोक्तविधानेन गणेशं संपूज्य प्रधानसंकल्पं कुर्यात् । अद्येह अमुकोऽहम् अमुकराशे-

रस्य बालकस्य प्रथमम् ऊर्ध्वदन्तजननेन सूचितारिष्टनिवृत्तिद्वारा श्री-परमेश्वरप्रीतये सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं च पाद्मोक्तां शान्तिं करिष्ये। तत्पूर्वाङ्गत्वेन मातृपूजानान्दीश्राद्धपुण्याहवाचनानि करिष्ये इति सं-कल्प्य यथोक्तविधिना तानि विधाय अद्येत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽ-हम् अमुकराशेः पुत्रस्य प्रथमोर्ध्वदन्तजननशान्तिकर्म्म कर्तुम् आ-चार्यब्रह्मणोः पूजनपूर्वकं वरणं करिष्ये इति संकल्प्य तौ वृणुया-त्। ततो वृत आचार्यः होमवेदीं निर्मायाग्निं पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं संस्थाप्य तदीशाने कलशं संस्थाप्य तत्र नवग्रहानावाह्य तदुत्तरतः द्वितीयं कलशं संस्थाप्य तस्मिन् सर्वौषधि—सर्व्वबीज—सर्व्वगन्ध—प-ञ्चगव्य—पञ्चरत्नानि निक्षिप्याभिमन्त्र्य तज्जलेन भद्रासनोपविष्टं बाल-कं देवस्यत्वेत्यादिमन्त्रैः (२८१) सुरास्त्वेत्यादिमन्त्रैश्च नवभिः (२८३) अभिषिच्य वह्न्यादिसुवर्णप्रतिमाः अग्न्युत्तारणपञ्चामृत-स्नापनपूर्व्वकं ताम्रपात्रे संस्थाप्य पूजादिसंकल्पं कुर्य्यात्। तद्यथा-सुवर्णप्रतिमासु वह्निसोमवायुपर्वतदेवदेवकेशवानां पूजनं कलशे नवग्र-हपूजनं च करिष्ये इति। "एतं ते" इति पठित्वा ॐ भूर्भुवः स्वः सुवर्णप्रतिमासु वह्नि—सोम—वायु—हिमवदादिपर्वत—देवदेवकेशवाः कलशे ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहाश्च सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु इति प्रतिष्ठाप्य नाममन्त्रैर्ध्यानावाहनादि कुर्यात्। तद्यथा—ॐ ब्रह्म-वरुणसहितादित्यादिनवग्रहेभ्यो नमः इत्यादिभिः ॐ वह्नये नमः ॐ सोमाय नमः ॐ वायवे नमः ॐ हिमवदादिपर्वतेभ्यो नमः ॐ देवदेवकेशवाय नमः इत्येतैश्च मन्त्रैः पाद्यादिनीराजनान्तं संपूज्य रक्षा-सूत्रमभिमन्त्र्य ग्रहकलशे प्रतिष्ठाप्य होमवेदीसमीपमागत्य ब्रह्मोपवेश-नादि पर्युक्षणान्तं कृत्वा वरदनामानमग्निम् "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य अग्निं रेखा जिह्वाश्च सम्पूजयेत्।

ततो यजमानो द्रव्यदेवताभिध्यानपूर्वकं द्रव्यत्यागं कुर्य्यात्। अद्येह अमुकोऽहं प्रथमोर्ध्वदन्तजननशान्तिकर्मणा यक्ष्ये। तत्र प्रजाप-तिम्, इन्द्रम्, अग्निं, सोमम् आज्येन—वह्निं सोमं वायुं हिमवदा-

दिपर्वतान् देवदेवं केशवम् अष्टाविंशतिधा आज्येन—अग्न्यादिप्रजापत्यन्तान् स्विष्टकृतं चाज्येनाहं यक्ष्ये।

इदमाज्यम् आघाराज्यभागदेवताभ्यः वह्नि–सोम–वायु–हिमवदादिपर्वत–देवदेवकेशवेभ्यः महाव्याहृतिसर्वप्रायश्चित्तदेवताभ्यः प्रजापतये स्विष्टकृते च मया परित्यक्तम् ॐ तत्सत् यथादैवतमस्तु न मम इति।

तत आचार्यः ब्रह्मणाऽन्वारब्धो मनसा प्रजापतिं ध्यात्वा ॐ प्रजापतये स्वाहा (इदं प्रजापतये.) इति हुत्वा ॐ इन्द्राय स्वाहा (इदमिन्द्राय.) ॐ अग्नये स्वाहा (इदमग्नये,) ॐ सोमाय स्वाहा (इदꣳसोमाय.) इति जुहुयात्। अथ अन्वारम्भं त्यक्त्वा प्रतिदैवतं नाममन्त्रैः अष्टाविंशतिधा प्रधानहोमः। ॐ वह्नये स्वाहा २८ (इदं वह्नये.) ॐ सोमाय स्वाहा २८ (इदꣳसोमाय.) ॐ वायवे स्वाहा २८ (इदं वायवे.) ॐ हिमवदादिपर्वतेभ्यः स्वाहा २८ (इदꣳ हिमवदादिपर्वतेभ्यो.) ॐ देवदेवकेशवाय स्वाहा २८ (इदं देवदेवकेशवाय) इति मन्त्रैः प्रत्येकमाज्यहोमम् अष्टाविंशतिधा कृत्वा अन्वारब्धो भूरादिनवाहुतिहोमं स्विष्टकृद्धोमं च कुशकण्डिकोक्तरीत्या विधाय बर्हिर्होमं संस्रवप्राशनम् पवित्रप्रतिपत्तिं प्रणीताविमोकं च कुर्यात्। ततो यजमानः ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानं विदध्यात्। तत आचार्यः पूर्णाहुतिं कृत्वा कलशजलेन पूर्वोक्तमन्त्रैर्बालकमभिषिच्य उत्तराङ्गत्वेन देवान् सम्पूज्य होमसाङ्गतासिद्ध्यर्थं दक्षिणादानसंकल्पं कुर्य्यात्—अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहम् अमुकराशेः पुत्रस्य प्रथमम् ऊर्ध्वदन्तजननेन सूचितपित्राद्यरिष्टनिवृत्तये शुभफलप्राप्त्यै सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं च कृतस्य शान्तिकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थम् इमां सुपूजितां सवत्सां गाम् (तन्निष्क्रयम्) आचार्य्याय दास्ये। तथेमां भूयसीं दक्षिणां न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं ब्राह्मणेभ्योऽन्येभ्यश्च विभज्य दास्ये। तथा यथाशक्ति यथासंख्याकान् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये। भोजनपर्याप्तमिष्टान्नादिकं वा दास्ये। ॐ तत्सत् न मम इति संकल्प्य प्रतिमाः गां (गोनिष्क्रयं) होमदक्षिणां चाचार्य्याय

दत्त्वा अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा अभिषेक–तिलक–रक्षा-बन्धन—ऽयायुषकरण—मन्त्रपाठादिकं कारयित्वा घृतच्छायां दृष्ट्वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा मिष्टादिकं वा तेभ्यो दत्त्वा कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा ब्राह्मणानुज्ञातः सुहृदादियुतो भुञ्जीतेति ॥

इति प्रथमोर्ध्वदन्तजननशान्तिप्रयोगः ॥

सदन्तबालजननेऽपि अयमेव प्रकारोऽनुष्ठेयः ।

अथ वृद्धगर्गोक्तः पित्राद्येकनक्षत्रजननशान्तिविधिः ।

एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः ।

भ्रात्रोः—भ्रातृभगिन्योर्नक्षत्रे भ्रातृभगिन्योरित्यर्थः ।

प्रसूतिश्चेत्तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चयात् ॥

पितृपुत्रयोः—मातापितृनक्षत्रे पुत्रकन्ययोरित्यर्थः ।

तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वाचार्य्यमतेन तु ।

शुभर्क्षे शुभवारे च चन्द्रताराबलान्विते ॥

रिष्टविष्टिविवर्ज्जे च प्रारभेद्दिवसे सुधीः ।

आचार्य्यं वरयेत्पूर्वं चतुरोऽथ द्विजोत्तमान् ॥

कृताकृतावेक्षणाय ब्रह्माणं, होमार्थं त्रीनिति चतुर इत्यर्थः ।

पुण्याहं वाचयित्वा तु शान्तिकर्म समाचरेत् ।

अग्नेरीशानदिग्भागे नक्षत्रप्रतिमां ततः ॥

तत्तदृक्षोक्तमन्त्रेण पूजयेत्कलशोपरि ।

नक्षत्रदेवतामन्त्राश्च वसिष्ठप्रोक्तसंहितायाम् ४६ अध्याये उक्ताः ।

रक्तवस्त्रेण सञ्छाद्य वस्त्रयुग्मेण वेष्टयेत् ॥

स्वशाखोक्तेन तन्त्रेण कुर्य्याद्ग्निमुखं ततः ।

अनेनैव तु (ऋक्षोक्तेनैव) मन्त्रेण हुवेदष्टोत्तरं शतम् ॥

प्रत्येकं समिदन्नाज्यैः प्रायश्चित्तान्तमेव च ।

अभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यः पितृपुत्रयोः ॥

पितृपदमुपलक्षणम् । यन्नक्षत्रे जन्म तेन सह बालस्याभिषेकः ।

वस्त्रालंकारगोदानैराचार्य्यं पूजयेत्ततः ।

ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यान्माषत्रयसुवर्णकम् ॥

देवताप्रतिमादानं धान्यवस्त्रादिभिः सह।
यानशय्यासनादीनि दद्यात्तद्दोषशान्तये॥
भोजयेद्ब्राह्मणान्शक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः।
एवं कृत्वा विधानं तु शान्तिर्भवति निश्चितम्॥ इति।

अथ पित्राद्येकनक्षत्रजननशान्तिप्रयोगः।

मातापितृनक्षत्रे पुत्रकन्याजन्मनि जाते प्रथमं गोमुखप्रसवविधानं कार्य्यम्। "पित्ररिष्टे मात्ररिष्टे" इति पूर्वोक्तवचनात्। भ्रातृभगिनीनक्षत्रे भ्रातृभगिन्युत्पत्तौ तु एतदक्रमेव कर्त्तव्यम्।

चन्द्रतारानुकूले शुभदिने प्रातर्नित्यं कर्म्म समाप्य शुभासने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य शान्तिपाठं (स्वस्तिवाचनं) कृत्वा पित्राद्येकनक्षत्रजननशान्तिकर्मणो निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशं यथाविधि संपूज्य प्रधानसंकल्पं कुर्यात्।

अद्येत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहम् अमुकराशेरस्य पुत्रस्य पित्राद्येकनक्षत्रजननसूचितारिष्टनिवृत्तये शुभफलप्राप्तये सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीतये च एकनक्षत्रजननशान्तिं करिष्ये। तत्पूर्वाङ्गत्वेन मातृपूजा–नान्दीश्राद्ध–पुण्याहवाचनानि करिष्ये। तथा होमार्थम् आचार्य्यब्रह्मर्त्विजां सप्तशतीशान्तिकाध्यायादिपाठकारकाणां च पूजनपूर्वकं वरणं करिष्ये-इति संकल्प्य मातृपूजनादि पुण्याहवाचनान्तं विधाय आचार्य्यब्रह्मादीनां वरणं कुर्य्यात्।

तत आचार्य्यः सर्षपान्विकीर्य्य भूमिं सम्प्रोक्ष्य तत्र होमवेदीं कृत्वा तत्र पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं संस्थाप्य वेद्या ईशाने कलशविधिना कलशं संस्थाप्य तत्र नवग्रहानावाह्य कलशोपरि ताम्रादिपूर्णपात्रे पद्माङ्कितवस्त्राच्छन्ने जन्मनक्षत्रदेवताप्रतिमाम् अग्न्युत्तारणपूर्वकं पञ्चामृतेन संस्नाप्य स्थापयेत्। "एतन्ते" इत्यादि पठित्वा ॐ भूर्भुवः स्वः सुवर्णप्रतिमायाम् अमुकजन्मनक्षत्रदेव सुप्रतिष्ठितो वरदो भव इति प्रतिष्ठाप्य तन्नक्षत्रदेवमन्त्रेण पाद्यादिभिः पूजयेत्। ततः कलशं रक्तवस्त्रेण संछाद्य श्वेतवस्त्रयुग्मेण वेष्टयेत्। कलशे

ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहाँश्च सम्पूज्य रक्षासूत्रमभिमन्त्र्य कलशे संस्थाप्य होमवेद्यां ब्रह्मोपवेशनादिपर्य्युक्षणान्तं चरुश्रपणसहितं कर्म्म कुर्यात् ।

ततो यजमानो द्रव्यदेवताभिध्यानपूर्वकं द्रव्यत्यागं कुर्यात् । अद्येह एकनक्षत्रजननशान्तिकर्मणाऽहं यक्ष्ये । तत्र प्रजापतिमिन्द्रमग्निं सोमम् आज्येन—अमुकनक्षत्रामुकदेवतां समिच्चर्वाज्यद्रव्यैः प्रत्येकमष्टोत्तरशतसंख्याहुतिभिः शेषेण स्विष्टकृतम्—अग्न्यादिप्रजापत्यन्तांश्चाज्येन यक्ष्ये ।

तदेतद्धोमद्रव्यजातम् आघाराज्यभागदेवताभ्यः अमुकनक्षत्रदेवतायै स्विष्टकृते अग्न्यादिप्रजापत्यन्तेभ्यश्च मया परित्यक्तम् ॐ तत्सत् यथादैवतमस्तु न मम इति ।

तत आचार्यः "एतन्ते" इत्यादिना वरदनामानमग्निं प्रतिष्ठाप्य पाद्यादिभिः सम्पूज्य रेखा जिह्वाश्च संपूज्य प्रोक्षणीपात्रं प्रणीताग्न्योर्मध्ये निधाय अन्वारभ्य आघारावाज्यभागौ च जुहुयात् ।

(१)ततः नक्षत्रदेवतामन्त्रेण त्रय ऋत्विजो वा, आचार्यब्रह्माणौ ऋत्विक् चेति त्रयो वा वरणानुसारेण अष्टोत्तरशतसंख्यया समिच्चर्वाज्यद्रव्यैः प्रत्येकं प्रधानहोमं कुर्युः ।

---

(१) मातुः पितुः भ्रातुः भगिन्या वा जन्मनक्षत्रे अपत्यस्योत्पादे एकनक्षत्रजननशान्तावनुष्ठीयमानायामुपयोगिनो याजुर्वैदिकाः अश्विन्यादिनक्षत्रदेवतामन्त्राः क्रमेण प्रदर्श्यन्ते—

यावांकशेतिमेधातिथिर्ऋषिः गायत्री छन्दः अश्विनौ देवते नक्षत्रदेवताहोमे विनियोगः ।

यावांकशामधुमत्यश्विनासूनृतावती । तयायज्ञंमिमिक्षतम् ॥१॥

(वसिष्ठसंहितायां "देवस्यत्वा" इति अश्विनोर्मन्त्र उक्तः)

यमायत्वेति दध्यङ्ङाथर्वणऋषिः यजूंषि यमोदेवता न.

यमायत्वामखायत्वासूर्य्यस्यत्वातपसे । देवस्त्वासविताम-ध्वानक्तुपृथिव्याःसᳪंस्पृशस्पाहि । अर्चिरसिशोचिरसितपोऽसि२

(व. सं. "त्र्यम्बकम्" इति यममन्त्र उक्तः)

तत आचार्यः अन्वारब्धः स्विष्टकृद्धोमं, भूरादिनवाहुतिहोमं, पूर्णाहुतिहोमं, बलिदानं च विधाय बर्हिर्होमं संस्रवप्राशनादिकं च कुर्यात् ।

अग्निंदूतमितिविरूपऋषिः गायत्री. अग्निर्देवता न.

अग्निंदूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवाँ २।। आसादयादिह३

(व. सं. "पुनन्तु माम्" इति अग्निमन्त्र उक्तः)

ब्रह्मजज्ञानमितिप्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः ब्रह्मादेवता न.

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचोव्वेन ऽआवः ।

सबुध्न्याऽउपमाऽअस्यव्विष्ठाः सतश्चयोनिमसतश्चव्विवः ४

(व. सं. "नमो ब्रह्मणे" इत्युक्तः)

आप्यायस्वेतिगौतमऋषिर्गायत्री. सोमोदेवता न.

आप्यायस्वसमेतुते व्विश्वतः सोमव्वृष्ण्यम्।भवाव्वाजस्यसंगथे५

(व. सं. "नवोनवोभवति" इत्युक्तः)

नमस्ते इति प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्री. एकरुद्रो देवता न.

नमस्तेरुद्रमन्यवऽउतोतऽइषवेनमः । बाहुभ्यामुततेनमः ६

(व. सं. "नमः शङ्कराय" इत्युक्तः)

अदितिर्द्यौरिति गौतमऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः अदितिर्देवता न.

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वेदेवाऽअदितिः पञ्चजनाऽअदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ७

बृहस्पते इति गृत्समदऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः बृहस्पतिर्देवता न.

बृहस्पतेऽअतियदर्योऽअर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।

यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजाततदस्मासुद्रविणं धेहि चित्रम् ८

नमोऽस्तुसर्पेभ्य इति प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दःसर्पादेवताः न.

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये केच पृथिवीमनु ।

येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः (एते एव व. सं.)

पुनन्तुमापितर इतिद्वयोः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः पितरोदेवताः न.

ततो यजमानः ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानं कृत्वा गां (तन्निष्क्रयं) होमदक्षिणां प्रतिमावस्त्रालङ्कारयुतामाचार्य्याय दत्त्वा ऋत्विग्भ्यो माषत्रयमितसुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा सप्तशतीशान्तिकाध्यायादिपाठ-कर्तृभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि दक्षिणां दद्यात् । धान्यवस्त्रशय्यासनादीनि

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः ।
पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा ॥
पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः ।
पवित्रेण शतायुषा व्विश्वमायुर्व्यश्नवै १०
("आयन्तुन" इति व. सं.)

भगप्रणेतरितिवसिष्ठऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दःभगोदेवता न.
भगप्रणेतर्भगसत्यराधो भगेमांधियमुदवाददन्नः ।
भगप्रनोजनयगोभिरश्वैर्भगप्रनृभिर्नृवन्तःस्याम ११
("भग एव भगवाँ २॥" इति व. सं.)

अर्य्यमणंबृहस्पतिमिति तापसऋषिरनुष्टुप्छन्दः अर्यमादेवता न-
अर्य्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
व्वाचं विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च व्वाजिनꣳस्वाहा १२
("अर्यमायाति" इति व. सं.)

आकृष्णेनेतिहिरण्यस्तूपऋषिस्त्रिष्टुप्. सवितादे. न.
आकृष्णेनरजसाव्वर्तमानोनिवेशयन्नमृतंमर्त्यंच ।
हिरण्ययेनसवितारथेना देवोयातिभुवनानि पश्यन् १३
("उदुत्यम्" इति व. सं.)

त्वष्टादधदिति आङ्गिरसऋषिस्त्रिष्टुप्. त्वष्टादेवता न.
त्वष्टादधच्छुष्ममिन्द्रायव्वृष्णे ऽपाकोऽचिष्टुर्य्यशसेपुरूणि ।
व्वृषायजन्वृषणंभूरिरेता मूर्धन्यजस्यसमनक्तुदेवान् १४
("चित्रंदेवानाम्" इति व. सं.)

वातोवेति बृहस्पतिऋषिरुष्णिक्छन्दः वायुर्देवता न.
वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः ।

च यथाशक्ति दद्यात् । आचार्यादिभ्यः अन्येभ्यश्च भूयसीं दत्त्वा अभिषेकतिलकरक्षाबन्धनत्र्यायुषलापनमन्त्रपाठादिकं कारयित्वा घृतच्छायादर्शनं कृत्वा यथाशक्ति पायसान्नादिना ब्राह्मणान्भोजयित्वा

तेऽअग्रेऽश्वमयुञ्जँस्तेऽअस्मिञ्जवमादधुः १५

("स नः पिता" इति व. सं.)

इन्द्राग्नीआगतमिति विश्वामित्रऋषिर्गायत्री. इन्द्राग्नीदे.न.

इन्द्राग्नी ऽआगतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो व्वरेण्यम् ।

अस्य पातं धियेषिता १६ (अयमेव व. सं.)

नमोमित्रस्येतिसूर्यऋषिर्जगती. मित्रोदेवता न.

नमोमित्रस्यव्वरुणस्यचक्षसे महोदेवायतदृतꣳ सपर्य्यत ।

दूरेदृशेदेवजातायकेतवे दिवस्पुत्रायसूर्यायशꣳसत १७

("मित्रस्य चर्षणी" इति व. सं.)

इन्द्र आसामिति प्रजापतिऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रोदेवता न.

इन्द्रऽआसांनेताबृहस्पतिर्दक्षिणायज्ञः पुरऽएतुसोमः ।

देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनांमरुतोयन्त्वग्रम् १८

("इन्द्रंव") इति व. सं.)

यंतेदेवीति प्रजापतिऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोनिर्ऋतिर्दे.न.

यंतेदेवीनिर्ऋतिराबबन्ध पाशंग्रीवास्वविचृत्यम् ।

तंतेविष्याम्यायुषोनमध्यादथैतंपितुमद्धिप्रसूतः १९

("मोषुण" इति व. सं.)

आपोहिष्ठेति सिन्धुद्वीपऋषिर्गायत्रीछ. आपोदेवताः न.

आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऽऊर्जेदधातन । महेरणायचक्षसे २०

("आप्यायस्वे"ति व. सं.)

विश्वेदेवासइतिगृत्समदऋषिर्गायत्री. विश्वेदेवादेवताः न.

विश्वेदेवासऽआगत शृणुतामऽइमꣳ हवम् । एदंबर्हिर्निषीदत२१

(अयमेष व. सं.)

इदंविष्णुरिति मेधातिथिऋषिर्गायत्री. विष्णुर्देवता न.

मिष्टान्नं वा तेभ्यो दत्त्वा क्षमापयित्वा कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात् । अनेन सुखं शान्तिर्भवति ।

इति पित्राद्येकनक्षत्रजननशान्तिप्रयोगः ॥

अथ त्रिकप्रसवशान्तिविधिः ॥

स च शान्तिसर्वस्वे—

सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्त्रये वा सुतो यदि ।
मातापित्रोः कुलस्यापि तदाऽनिष्टं महद्भवेत् ॥
ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं च सुमहद्भवेत् ।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदम् । समूढमस्यपाᳬसुरे २२
("अतो देवा" इति व. सं.)

सुगावोदेवा इति प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप् . वसवोदेवादेवताः न.
सुगावोदेवाः सदनाऽअकर्म यऽआजग्मेद᳘सवनंजुषाणाः ।
भरमाणाव्वहमाना हवीᳬष्यस्मे धत्तव्वसवो वसूनिस्वाहा २३
("त्रायन्ता"मिति व. सं.)

इमंमेइतिशुनःशेपऋषिर्गायत्री. वरुणोदेवता न.
इमंमेव्वरुणश्रुधीहवमद्याचमृडय । त्वामवस्युराचके २४
(अयमेव व. सं.)

उतनोऽहिर्बुध्न्य इति ऋत्विजऋषयस्त्रिष्टुप् . अजैकपाद्देवता न.
उतनोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वजएकपात्पृथिवीसमुद्रः ।
विश्वेदेवाऽऋतावृधोहुवानाः स्तुतामन्त्राः कविशस्ताभवन्तु २५
("शमग्नि"रिति व. सं.)

अहिर्बुध्न्यदेवताकोऽप्ययमेवेति केचित् । वस्तुतस्तु "नमस्ते" इतिमन्त्रः अहिर्बुध्न्यदेवताकः । वसिष्ठसंहितोक्तेः । तस्य ऋष्यादिकं स्वरूपं च पूर्वनिर्दिष्टम् २६

पूषन् तवेति सुहोत्रऋषिर्गायत्रीछन्दः पूषादेवता न.
पूषन्तवव्रतेव्वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्तइहस्मसि २७ ("ह᳘स" इति व. सं.)

जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने ॥
आचार्य्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरस्सरम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः ॥
पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि संस्थिताः ।
पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया ॥
रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्व्वशः ।
द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिसमाहितः ॥

रुद्रकलशे रुद्रसंख्यया एकादशवारं चत्वारि रुद्रसूक्तानि, शान्तिसूक्तानि सर्वशः कात्स्न्र्येन (सर्वाणि) जपेदित्यर्थः ।

आचार्य्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा त्रिशतं तु वा ॥
देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरस्सरम् ।
ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यतइन्द्रभयामहे ॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा वलिं पूर्णाहुतिं ततः ।
अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाऽऽचार्यं प्रतोषयेत् ॥
हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विजां दक्षिणा तथा ।
प्रतिमा गुरवे देया उपस्करसमन्विताः ॥
आज्यस्य वीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं च कारयेत् । इति ।

अथ त्रिकप्रसवशान्तिप्रयोगः ।

बालकस्य पिता एकादशाहे, द्वादशाहे, अन्यस्मिन्वा शुभदिने शान्तिसामग्रीं सम्पाद्य शुभासने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य शान्तिपाठं कृत्वा गणेशपूजनं कुर्यात् । अर्घं संस्थाप्य पूजासंकल्पः—ॐ विष्णुः३ अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं त्रिकप्रसवशान्तिकर्मणि निर्विघ्नतासिद्ध्ये श्रीमद्भगवतो गणेश्वरस्य पूजनं करिष्ये । ततो यथाविधि गणेशपूजनं विधाय—

प्रधानसंकल्पं कुर्यात्—अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं मम सुतात्रयजननानन्तरं सुतजननेन सुतत्रयजननानन्तरं सुताजननेन वा सूचितारिष्टनिवृत्तिद्वारा सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीतये सग्रहमखां

शान्तिं करिष्ये । तत्पूर्वाङ्गत्वेन मातृपूजानान्दीश्राद्धपुण्याहवाचनानि करिष्ये । तथा शान्तिकर्मार्थम् आचार्यब्रह्मर्त्विजां रुद्रसूक्तादिपाठकर्तॄणां वरणं च करिष्ये इति संकल्प्य मातृपूजानान्दीश्राद्धपुण्याहवाचनानि विधाय आचार्यादीनां वरणं च विदध्यात् । तत आचार्यः होमवेदीं कृत्वा शान्तिभूमिं सम्प्रोक्ष्य होमवेद्यां पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं संस्थाप्य तत्पूर्वभागे नवग्रहवेदीं कृत्वा तत्र नवग्रहानावाहयेत् । तदसम्भवे कलशोपरि तानावाहयेत् । ग्रहवेद्या ग्रहकलशस्य वा उत्तरतः पञ्चसु धान्यराशिषु पञ्च कलशान् कलशविधानेन संस्थाप्य माषान्यूनसुवर्णनिर्मिताः ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्ररुद्रेति पञ्चानां देवानां प्रतिमाः अग्न्युत्तारणपूर्वकं पञ्चामृतेन संस्नाप्य पञ्चसु कलशेषु पञ्च प्रतिमाः संस्थाप्य पूजयेत् । पूजासंकल्पः ॐ विष्णुः ३ अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं त्रिकप्रसवशान्तिकर्मणि सुवर्णप्रतिमासु ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्ररुद्राणां, वेद्यां कलशे वा नवग्रहाणां च पूजनं करिष्ये । "ॐ एतन्तेदेव" इत्यादि पठित्वा ॐ भूर्भुवः स्वः वेद्यां पङ्कजस्थकर्णिकाऽष्टदलस्थितेषु अक्षतपुञ्जेषु, कलशे वा ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहाः तथा सुवर्णप्रतिमासु ब्रह्मादिपञ्चदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु इति प्रतिष्ठाप्य रक्षासूत्रं चाभिमन्त्र्य नाममन्त्रैर्वेदमन्त्रैश्च ध्यानादि नीराजनान्तं ब्रह्मवरुणादिसहितान् ग्रहान् संपूज्य ब्रह्मादीन् वक्ष्यमाणमन्त्रैः पूजयेत् । मन्त्राश्च—

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेन ऽआवः ।
स बुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ॥
ॐ ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाꣳसुरे ॥ ॐ विष्णवे नमः ॥ २ ॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ॐ महेशाय नमः ॥ ३ ॥

ॐ यत ऽइन्द्र भयामहे ततो नो ऽअभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्व्विद्विषो विमृधो जहि ॥
ॐ इन्द्राय नमः ॥ ४ ॥

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतोत ऽइषवे नमः।
बाहुभ्यामुत ते नमः। ॐ रुद्राय नमः॥ ५॥ इति।

ततः सूक्तजापकत्वेन वृत एकादशवारं वक्ष्यमाणानां चतुर्णां रुद्रसूक्तानां रुद्रकलशं स्पृशन् पश्यन् वा जपं कुर्यात्।

ऋ० सं० अष्ट० १।३।२६।

कद्रुद्रायेति नवर्चस्य रुद्रसूक्तस्य कण्व ऋषिः आद्या अष्टौ गायत्र्यः अन्त्याऽनुष्टुप् रुद्रो देवता कलशे जपे विनियोगः।

ॐ कद्रुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शन्तमं हृदे १।
यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे।
यथा तोकाय रुद्रियम् २।
यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति। यथा विश्वे सजोषसः३।
गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्। तच्छंयोः सुम्नमीमहे४।
यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते। श्रेष्ठो देवानां वसुः५।
शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये। नृभ्यो नारिभ्यो गवे६।
अस्मे सोम श्रियमधि निधेहि शतस्य नृणाम्। महिश्रवस्तुविनृम्णम्७।
मा नः सोम परिबाधो माऽरातयो जुहुरन्त। आ न इन्दो वाजे भज८।
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य।
मूर्धा नाभा सोमवेन आभूषन्ती सोमवेदः ९।

ऋ० सं० अ० १।८।५।

"इमा रुद्राय" इत्येकादशर्चस्य सूक्तस्य कुत्स ऋषिः आद्या नव जगत्यः अन्त्ये द्वे त्रिष्टुभौ रुद्रो देवता कलशे जपे विनियोगः।

ॐ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्१
मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु २
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमाचरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ३
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे निह्वयामहे।

आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्याहणीमहे ४
दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा निह्वयामहे।
हस्ते बिभ्रद्भेषजावार्याणि शर्मवर्मच्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ५।
इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम्।
रास्वा च नो अमृतमर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ६
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ७
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नोअश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ८
उपते स्तोमान् पशुपा इवाकरं रास्वापितर्मरुतां सुम्नमस्मे।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयन्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ९।
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु।
मृळा च नो अधिच ब्रूहि देवाधाचनः शर्म यच्छद्विबर्हाः १०
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान्।
तं नो मित्रो वरुणो मामहंतामदितिः सिन्धुः पृथिवो उत द्यौः ११
ऋ० सं. अष्ट० २। अ. ७। व. १६-१७-१८।

"आतेपितः" इति पञ्चदशर्चस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः आद्याश्चतुर्दश जगत्यः अन्त्या त्रिष्टुप् रुद्रो देवता कलशे जपे विनियोगः।

ॐ आते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः १।
त्वाऽदत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।
व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातय स्वा विषूचीः २।
श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियाऽसि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो।
पर्षिणः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीतीरपसो युयोधि ३
मा त्वा रुद्र चुक्रुधा मा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ४
हवीमभिर्हवसे यो हविर्भिरवस्तोमेभीरुद्रं दिषीय।

ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ५
उन्मामन्द वृषभो मरुत्वान् त्वक्षीयसावयसा नाधमानम्।
घृणीवच्छायामरपा अशीयाविवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ६
क१स्यते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्तिभेषजो जलाषः।
अपभर्तारपसो दैव्यस्याभीनुमा वृषभ चक्षमीथाः ७
प्रबभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महोमहीं सुष्टुतिमीरयामि।
नमस्याकल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमहि त्वेषं रुद्रस्य नाम ८
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्नवाउ योषद्रुद्रादसुर्यम् ९
अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति १०
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः ११
कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रतिनानाम रुद्रोपयन्तम्।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजारास्यस्मे १२
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शञ्च योश्च रुद्रस्य वश्मि १३
परिणो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्महीगात्।
अवस्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ १४
एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः १५
ऋ० सं० अष्ट० ५।४।१३

"इमा रुद्राय स्थिरधन्वने" इति चतुर्ऋचस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः आद्यास्तिस्रो जगत्यः अन्त्याऽनुष्टुप् रुद्रो देवता। कलशे जपे विनियोगः।

ॐइमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाम्ने।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः १
सहि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति।

अवन्नवन्तीरुपनो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव २
या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परिसा वृणक्तु नः।
सहस्रं ते स्वपि वातभेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ३
मा नो वधी रुद्र मा परादा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४

एवं रुद्रसूक्तानि जपित्वा "शंन इन्द्राग्नी" इत्यादीनि ऋग्वेद-पठितानि शान्तिसूक्तानि "ऋचं वाचम्" इति याजुर्वेदिकं शान्त्य-ध्यायं वा जपेत्।

जप्यमानेषु सूक्तेषु आचार्यो होमवेद्यां ब्रह्मोपवेशनादि पर्युक्ष-णान्तं कर्म्म कृत्वा प्रोक्षणीं प्रणीताग्न्योर्मध्ये निधाय "एतंते" इति वरदनामानमग्निं प्रतिष्ठाप्य सम्पूजयेत्। ततो यजमानो द्रव्यदेवताभि-ध्यानपूर्वकं द्रव्यत्यागं कुर्यात्। अद्येह त्रिकप्रसवशान्तिकर्म्मणाऽहं यक्ष्ये। तत्र प्रजापतिमिन्द्रमग्निं सोममाज्येन—आदित्यादिग्रहान् समि-दाज्यतिलचरुद्रव्यैः प्रत्येकमष्टसंख्यया—अधिदेवताः प्रत्यधिदेवताश्च तैरेव चतुःसंख्यया—विनायकादिलोकपालान् इन्द्रादिदिक्पालांश्च तैरेव द्विसंख्यया—ब्रह्माणं विष्णुं महेशम् इन्द्रं रुद्रं च समित्तिलाज्य-चरुभिः प्रत्येकमष्टोत्तरशतसंख्यया—शेषेण स्विष्टकृतम्—अग्न्यादिप्र-जापत्यन्तांश्चाज्येन यक्ष्ये।

इदं समित्तिलाज्यचरुद्रव्यजातं तत्तद्देवताभ्यो मया परित्यक्तं यथादैवतमस्तु ॐ तत्सत् न मम इति।

तत आचार्यः ब्रह्मणाऽन्वारब्धः दक्षिणं जान्वाच्य ॐ प्रजाप-तये स्वाहा इत्यादिना आघारावाज्यभागौ च हुत्वा त्यक्तान्वारम्भ ऋ-त्विक्सहितो ग्रहयागप्रयोगोक्तरीत्या ग्रहादिहोमं कृत्वा ॐ ब्रह्म जज्ञा-नमित्यादिभिः पूर्वोक्तैः पञ्चभिर्मन्त्रैः प्रत्येकं प्रधानब्रह्मादिदेवेभ्यः समित्तिलाज्यचरुद्रव्यैरष्टोत्तरशतसंख्यं होमं विधाय अन्वारब्धः शे-षेण स्विष्टकृते हुत्वा आज्येन भूरादिनवाहुतिहोमं कृत्वा बर्हिर्होमं कृत्वा संस्रवप्राशनादिकं विदध्यात्। ततो यजमानः ब्रह्मणे पूर्ण-पात्रं दद्यात्।

तत आचार्यः पायसेन दध्यक्षतैर्वा नवग्रहेभ्यो दिक्पालेभ्यो ब्रह्मादिदेवताभ्यश्च बलिदानं विधाय क्षेत्रपालाय बलिं दत्त्वा पूर्णाहुतिहोमम् उत्तराङ्गपूजनं च कुर्यात् ।

ततो यजमानः होमदक्षिणाप्रतिमादानसंकल्पं कुर्यात् । ॐविष्णुः३ अद्येहेत्यादि संकीर्त्य सपत्नीकोऽहं मम सुतात्रयानन्तरं सुतजननेन सूचितारिष्टनिरसनद्वारा सुतत्रयानन्तरं सुताजननेन सूचितारिष्टनिरसनद्वारा वा सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं नवग्रहयज्ञपुरस्सरं कलशोपरि सुवर्णप्रतिमासु ब्रह्मादिपञ्चदेवानां पूजापूर्वकं समित्तिलाज्यचरुद्रव्यैर्ब्रह्मादिपञ्चमन्त्रैरष्टोत्तरशतसंख्यया कृतस्य होमकर्मणः साङ्गफलप्राप्त्यै इमां गां गोप्रत्याम्नायीभूतं सुवर्णादिद्रव्यं वा दक्षिणां तथेमाः सुपूजिताः सौवर्णीः पञ्च प्रतिमाश्च आचार्याय दास्ये । तथेमां सुवर्णादिदक्षिणामृत्विग्भ्यः रुद्रादिसूक्तसप्तशतीपाठादिकर्तृभ्यो ब्राह्मणेभ्यो, भूयसीं दक्षिणां चान्येभ्यश्च विभज्य दास्ये । सिद्धान्नेन यथासंख्याकान्ब्राह्मणांश्च भोजयिष्ये मिष्टादिकं वा तेभ्यो दास्ये ॐ तत्सत् न मम इति सङ्कल्प्य आचार्याय प्रतिमादि, अन्येभ्यश्च सुवर्णादिदक्षिणां भूयसीं च सर्वेभ्यो दत्त्वा अग्निं देवांश्च विसृज्य षट्कलशोदकेन "स्वस्तिन" इत्यादिमन्त्रैः सपत्नीकस्य सपुत्रस्य स्वस्य अभिषेकम् आचार्यादिभिः कारयेत् । ततः कांस्यपात्रं घृतपूरितं "ध्रुवासि" इत्यादिमन्त्रेणावेक्ष्य शान्तिपाठं कारयित्वा तिलकरक्षाबन्धनत्र्यायुषलापनमन्त्रपाठादि कारयित्वा कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा इष्टबन्धुसहितः स्वयं भुञ्जीत । एवं कृत्वा शान्तिर्भवति ।

इति त्रिकप्रसवशान्तिः ।

अथ यमलजननशान्तिविधिः ।

शान्तिरत्ने कात्यायनः—

अथातो यमलजनने प्रायश्चित्तिर्यस्य भार्या गौर्दासी महिषी वडवा वा विकृतिं प्रसवेत् पूर्णे दशाहे चतुर्णां क्षीरवृक्षाणां कषायम् (निर्यासम्) उपसंहरेत् प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थशमीदेवदार्गौरसर्षपास्तेषां मिश्रमापो हिरण्यं दूर्वाङ्कुरैः सपल्लवैरष्टौ कलशान्प्रपूर्य सर्वौ-

षधीनां दम्पती स्नापयित्वा "आपोहिष्ठा" इति तिसृभिः, "कयानश्चित्र" इति द्वाभ्यां, पञ्चैन्द्रेण, पञ्चवारुणेन, "इदमापः प्रवहता" इति "अपाघम्" इति स्नापयित्वाऽलंकृत्य तौ दर्भेषूपवेश्य तत्र मारुतं स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति पूर्वोक्तैः स्नपनमन्त्रैः। स्थालीपाकस्य जुहोति—अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, पवमानाय स्वाहा, पावकाय स्वाहा, मरुताय स्वाहा, मारुताय स्वाहा, मरुद्भ्यः स्वाहा, यमाय स्वाहा, ऽन्तकाय स्वाहा, मृत्यवे स्वाहा-ब्रह्मणे स्वाहा, ऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति। एतदेव गृहोत्पातेषु—उलूकः कङ्कः कपोतो गृध्रः श्येनो वा प्रविशेत्, स्तम्बो वा प्ररोहेत्, वल्मीकं मधुजालं वा भवेत्, उदकुम्भप्रज्वलने, आसनशयनयानभङ्गेषु, गृहगोधिकाकृकलासशरीरसर्पणे, छत्रध्वजविनाशे, ऽन्येष्वप्युत्पातेषु भूकम्पोल्कापात—काकसर्पसङ्गमप्रेक्षणादिष्वेतदेव प्रायश्चित्तं ग्रहशान्तिचोक्तविधिना कृत्वाऽऽचार्याय वरं दत्त्वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वस्ति वाच्याशिषः प्रतिगृह्णीयात् शान्तिर्भवति इति।

अथ प्रयोगः। आपोहिष्ठेति तिस्रः प्रसिद्धाः।

कयानश्चित्र ऽआभुवदूतीसदावृधः सखा। कयाशचिष्ठयावृता ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढाचिदारुजेवसु ॥ इति द्वे।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामिशक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳस्वस्तिनोमघवाधात्विन्द्रः ॥ इति पञ्चैन्द्रः।

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्यस्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्यऽऋतसदन्यसि वरुणस्यऽऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ॥ इति पञ्चवारुणः।

इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत्।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम्।
आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥ इति,
अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःस्वप्न्यꣳ सुव ॥ इति च।

एतैर्मन्त्रैर्दम्पत्योः स्नापनम्। एतैरेवाज्येन होमश्च।

तत्र द्रव्यदेवताभिध्याने त्यागे च विशेषः प्रजापतिम् इन्द्रम् अग्निं सोमम् आज्येन इत्यनन्तरम् अपः इन्द्रं वरुणम् अपः अपामार्गम् आज्येन-अग्न्यादीन् स्विष्टकृदन्तान् स्थालीपाकेन-महाव्याहृतिदेवताः सर्वप्रायश्चित्तदेवताः प्रजापतिंवाज्येनाहं यक्ष्ये। एतदाज्यादिद्रव्यमाघाराज्यभागदेवताभ्यः प्रधानदेवताभ्य उत्तराङ्गदेवताभ्यश्च मया परित्यक्तम् ॐ तत्सन्न मम।

अथैषामृषयच्छन्दांसि देवता विनियोगाश्चोच्यन्ते। आपोहिष्ठेति तिसृणां सिन्धुद्वीपऋषिर्गायत्रीछन्दः आपो देवताः होमे विनियोगः। कयान इति द्वयोर्वामदेवऋषिः गायत्रीछन्दः रुद्रो देवता होमे वि०। त्रातारमिन्द्रमितिगर्गऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता होमे वि०। वरुणस्येति प्रजापतिर्ऋषिः पञ्चयजूंषि वरुणो देवता होमे वि०। इदमाप इति प्रजापतिर्ऋषिःमहापङ्क्तिश्छन्दः आपो देवताः होमे वि०। अपाघमिति शुनःशेपऋषिर्गायत्रीछन्दः अपामार्गो देवता होमे वि०। अग्नये स्वाहेत्यादिभिः स्थालीपाकहोमः। स्विष्टकृद्धोमानन्तरं भूरादिनवाहुतिहोमः। ततः संस्रवप्राशनादिकर्मशेषं पूर्ववत्।

इति यमलजननशान्तिः।

इयमेव शान्तिर्भार्यायाः, गोः, दास्याः, महिष्या वडवाया वा द्विशीर्षत्वादिविकारविशिष्टप्रसवे—

उलूकस्य, कङ्कस्य, कपोतस्य, गृध्रस्य, श्येनस्य (बाजस्य) वा गृहे प्रवेशेगृहे तृणादिगुच्छप्ररोहे—

गृहे वल्मीकस्य (देउका वाळवी इति वा प्रसिद्धस्य) मधुजालस्य वा उद्भवे—

उदकुम्भस्य जलोष्णीकरणार्थं स्थापितस्य प्रज्वलने—

आसनस्य, शय्यायाः, यानस्य वा भङ्गे—

गृहगोधिकायाः, कृकलासस्य वा शरीरे सर्पणे—

छत्रस्य ध्वजस्य वा विनाशे —

काकमैथुनस्य सर्पमैथुनस्य वा प्रेक्षणे च कर्तव्या॥

॥ अथ गण्डान्तशान्तिः ॥

गण्डान्तस्त्रिविधः—नक्षत्रगण्डान्तस्तिथिगण्डान्तो लग्नगण्डान्तश्च। तत्र रेवत्यश्विन्योः, सार्पपैत्रर्क्षयोः, ज्येष्ठामूलयोश्चान्तरालवर्तिघटीचतुष्टयं नक्षत्रगण्डान्तः। पञ्चदशीप्रतिपदोः, पञ्चमीषष्ठ्योः, दशम्येकादश्योश्च मध्यवर्तिघटीद्वयं तिथिगण्डान्तः। कर्कसिंहयोः, वृश्चिकधनुषोर्मीनमेषयोश्च लग्नयोर्मध्यवर्तिघटिकार्धं लग्नगण्डान्तः। तत्र नक्षत्रगण्डान्तशान्तिमाह—शान्तिरत्ने गर्गः,

अश्विनीमघमूलादौ नाडिकाद्वितयं तथा। इत्युपक्रम्य—
तस्य शान्तिं प्रवक्ष्यामि सोममन्त्रेण भक्तिमान्।
कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्नवम्॥
अष्टाभिर्वा चतुर्भिर्वा द्वाभ्यां वा शोभनं तथा।
तन्मध्ये पायसे शङ्खे नवनीतेन पूरिते॥
राजतं चन्द्रमर्चेत सितपुष्पसहस्रकैः।
दैवज्ञः क्षौमवासास्तु शुक्लमाल्याम्बरार्चितः॥
सोमोऽहमिति संचिन्त्य पूजां कुर्यादतन्द्रितः।
जपेत्साहस्रकं मन्त्रं श्रद्दधानः समाहितः॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण पूजां कुर्यात् समाहितः।
दद्याद्द दक्षिणामिष्टां गण्डदोषप्रशान्तये॥
शुक्लं वागीश्वरं चैव ताम्रपात्रसमन्वितम्।
गण्डदोषोपशान्त्यर्थं दद्याद्वेदविदे शुचिः॥ इति।

तिथिगण्डादौ शान्तिमाह शान्तिसारे गर्गः—

तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते।
काञ्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति॥
आद्यभागे पितुर्गण्डे त्रयाणामभिषेचनम्।
इतरत्र शिशोर्मातुरभिषेकं तु कारयेत्॥ इति।
त्रयाणां-मातापितृशिशूनामित्यर्थः।

अथ नक्षत्रगण्डान्तशान्तिप्रयोगः।

तत्र गोमुखप्रसवं गणेशपूजादिपूर्वाङ्गं च विधाय द्रव्यवस्त्रा-

नैर्ऋत आचार्य्यः षोडशाद्यन्यतमपलात्मकं नवं कांस्यपात्रं पायसेन पूरयित्वा तत्र शङ्खं नवनीतपूरितं पूर्वाग्रं संस्थाप्य तत्र राजतीं चन्द्रप्रतिमां प्रतिष्ठाप्य आप्यायस्वेति मन्त्रेण संपूज्य श्वेतपुष्पसहस्रत्रयेण पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा तदुत्तरतः ताम्रपात्रे बृहस्पतिप्रतिमां तन्मन्त्रेण पूजयेत् । ततो यजमान आचार्य्याय प्रतिमां दक्षिणां च दत्त्वा अन्येभ्यो विप्रेभ्यश्च दक्षिणां दद्यात् । ब्राह्मणांश्च भोजयेत् । ज्योतिर्निबन्धे तु कुङ्कुमचन्दनकुष्ठगोरोचनानि चत्वारि घृतकुम्भचतुष्टये प्रक्षिप्य सहस्राक्षेण मन्त्रेण बालकं स्नापयित्वा घृतपूर्णकांस्यपात्रेण सह क्षीरमौक्तिकशङ्खश्वेतवस्त्रयुग्मं यजुर्वेदविदे दद्यात् इति विशेष उक्तः ।

इति नक्षत्रगण्डान्तशान्तिप्रयोगः ।

अथोत्तरापुष्यचित्रापूर्वाषाढाशान्तिविधिः ।

उत्तरातिष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च ।
कुर्य्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्राकारजां बुधः ॥
सुवर्णेन तदर्धेन यथावित्तानुसारतः ।
नक्षत्राधिपते रूपं कृत्वा वस्त्रद्वयान्वितम् ॥
वरुणस्यार्चनं कार्यं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।

कुम्भे वरुणमभ्यर्च्य पूर्णपात्रोपरि नक्षत्राधिपतिं पूजयेदित्यर्थः ।

कुम्भे प्रक्षेपणीयान्याह—

शतौषधानि रत्नानि मृत् त्वक्पल्लवसंयुता ॥
पूजान्ते समिदन्नाज्यैर्होमं तिलयवैस्तथा ।
ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा वेदाध्यायिकुटुम्बिने ॥
उत्तराप्रथमे पादे तिलपात्रं तथैव च ।
तिष्ये तु गां सवत्सां च सुशीलां च पयस्विनीम् ॥
अजां चित्रासु वै दद्यात्पूर्वाषाढे तु काञ्चनम् ।
यवांश्च व्रीहिमाषांश्च तिलमुद्गान् प्रदापयेत् ॥
यथावित्तानुसारेण कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
पितुरायुष्यवृद्ध्यर्थं शान्तिरत्र विधीयते ॥ इति ।

अथ कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिविधिः ।

शान्तिरत्ने गर्गः—

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम् ।
चतुर्दश्यास्तु षड् भागान्कुर्य्यादाद्ये शुभं भवेत् ॥
द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरन्तथा ।
चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् (मातुलस्य) ॥
षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्य्यात्प्रयत्नतः ॥
आचार्य्यं वरयेद्धीमान् पुत्रदारसमन्वितम् ।
स्वकर्म्मनिरतं शान्तं श्रोत्रियं वेदपारगम् ॥
सर्वालंकारसंयुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
ब्रह्माणमृत्विजश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥
रुद्राऽधिदेवतां तस्याः कर्षमात्रसुवर्णतः ।
तदर्धेन तदर्धेन कुर्याद्वा शाठ्यवर्जितः ॥
प्रतिमां कारयेच्छक्त्या सर्वलक्षणसंयुताम् ।
वृषभे च समासीनं वरदाभयपाणिनम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं श्वेतमाल्याम्बरान्वितम् ।
त्रैयम्बकेन मन्त्रेण पूजां कुर्य्याद्विधानतः ॥
स्थापयेच्चतुरः कुम्भान् चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् । आग्नेयादिषु ।
पुण्यतीर्थजलोपेतान्धान्यस्योपरि विन्यसेत् ॥
तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम् ।
पञ्चमृत्पञ्चरत्नानि पञ्चत्वक्पञ्चपल्लवान् ॥
पञ्चधान्यं सुवर्णं च तत्तन्मन्त्रैर्विनिक्षिपेत् ।
सर्वौषधीनि निक्षिप्य श्वेतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥
सुरभीणि च पुष्पाणि श्वेतानि परिकल्पयेत् ।
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ॥
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।
आवाह्य वारुणैर्मन्त्रैरनेन च विधानतः ॥

इमम्मेवरुणेत्यनया तत्त्वायामीत्यृचा तथा ।
त्वन्नोऽअग्नइत्यनया सत्वन्नइति मन्त्रतः ॥
आग्नेयकुम्भमारभ्य पूजां कुर्याद्यथाविधि ।
आनोभद्रा इति सूक्तं भद्रा आनेश्च(ऋ.अष्ट.(८।२।१९)सूक्तकम्॥
जाप्यं तु पौरुषं सूक्तं कद्रुद्रं च यथाक्रमम् ।
ईश्वरस्याभिषेकं च ग्रहपूजां च कारयेत् ॥
पूजाकर्म्म सुनिर्वर्त्य होमं कुर्य्याद्विधानतः ।
गृहादीशानदिग्भागे कुण्डं कुर्याद्यथाविधि ॥
विस्तारायामखातं च अरत्निद्वयसंमितम् ।
कुण्डकण्ठं परित्यज्य समन्तादङ्गुलं क्रमात् ॥
मेखलोच्छ्रायविस्तारौ चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः क्रमात् ।
पश्चिमे मध्यभागे तु योनिं कुर्याद्विधानतः ॥
योनिं षडङ्गुलां तिर्यग् द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यकाम् ।
अश्वत्थदलसंकाशां किंचिन्निम्नायतां शुभाम् ॥
कुर्यादाघारपर्यन्तं स्वगृह्योक्तविधानतः ।
समिदाज्यचरूंश्चैव तिलमाषांश्च सर्षपैः (सहितान्) ॥
अश्वत्थप्लक्षपालाशसमिद्भिः खदिरैः क्रमात् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ॥
अष्टाविंशतिमेतैश्च होमं कुर्य्यात् पृथक् पृथक् ।
त्रैयम्बकेन मन्त्रेण तिलान् व्याहृतिभिः क्रमात् ॥
ग्रहहोमश्च कर्त्तव्यः अस्मदुक्तविधानतः ।
एवं क्रमेण होतव्यं होमशेषं समापयेत् ॥
सर्वालङ्कारयुक्तानां त्रयाणामभिषेचनम् ।
त्रयाणां मातापितृशिशूनाम् ।
चतुर्भिः कलशैरद्भिर्बृहत्कुम्भ(शतच्छिद्र)समन्वितैः ॥
धौताम्बराणि धृत्वाऽथ कुर्य्यादाज्यावलोकनम् ।
पूर्णाहुतिं च जुहुयाद्यजमानः समाहितः ॥
तत्सर्वं परया भक्त्या ईश्वराय निवेदयेत् ।

सर्वालंकारसंयुक्तां सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥
प्रतिमां वस्त्रयुग्मं च आचार्य्याय निवेदयेत् ।
भूयसीं चैव दत्त्वाऽथ ब्राह्मणान् भोजयेत्तथा ॥
एवं यः कुरुते शान्तिं स च पापविवर्जितः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति स्थिरजीवी सुखी भवेत् ॥ इति ।

इति कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिविधिः ।

अथ अमावस्याजननशान्तिविधिः ।

शान्तिसारे नारदः—

अथातो दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता ।
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं वक्ष्यामि ते सदा ॥
पुण्याहं वाचयित्वाऽऽदौ क्रतुसंकल्पपूर्वकम् ।
कुण्डं वा स्थण्डिलं कुर्यात्तद्देशे स्थापयेद्धटम् ॥

तद्देशे तत्समीपे ।

तत्कुम्भे निक्षिपेद्द्रव्यं दधिक्षीरघृतादिकम् ।

आदिशब्दाद्गोमूत्रगोमये ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थाः सचूता निम्बकस्तथा ॥
एतेषां वृक्षमूलानां त्वगादीन्पल्लवांस्तथा ।
पञ्चरत्नानि निक्षिप्य वस्त्रयुग्मेण वेष्टयेत् ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥
आपोहिष्ठात्र्यृचेनाथ कयानश्चित्रइत्यृचा ।
यत्किञ्चेदमृचा चैव समुद्रज्येष्ठइत्यृचा ॥
अभिमन्त्र्योदकं पश्चादग्नेः पूर्वप्रदेशके ।
हारिद्रं रक्तकं चैव कृष्णं श्वेतं च नीलकम् ॥
एतेषां तण्डुलैश्चैव सर्वतोभद्रमुद्धरेत् ।

कुम्भतः पश्चादग्नेश्च पूर्वतो हारिद्रादिरक्तरक्तैस्तण्डुलैः सर्वतोभद्रमुद्धरेदित्यर्थः ।

दर्शस्य देवतायाश्च सोमसूर्यस्वरूपकम् ॥

प्रतिमां स्वर्णजां नित्यं राजतीं ताम्रजां तथा ।

पितृरूपाया दर्शदेवतायाः सोमसूर्ययोश्च स्वरूपं प्रतिमारूपं स्थापयेदित्यर्थ इति प्रयोगपारिजातः ।

सर्वतोभद्रमध्ये च स्थापयेद्दर्शदेवताम् ॥
ग्रहवर्णं वस्त्रयुग्मं तद्वर्णं गन्धपुष्पकम् ।
आप्यायस्वेति मन्त्रेण सवितापश्चात्तथैव च ।
उपचारैः समाराध्य ततो होमं चरेत्सुधीः ।
कृत्वा वह्निं प्रतिष्ठाप्य क्रतुसंकल्पमीदृशम् ॥
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं सर्वारिष्टप्रशान्तये ।
पुत्रस्य दर्शजननं तस्य दोषनिवर्हणम् ॥
मातापित्रोः कुमारस्य सर्वारिष्टप्रशान्तये ।
तेषामायुःश्रिये चैव शान्तिहोमं करोम्यहम् ॥

आयुरारोग्येति श्लोकद्वयेन क्रतुसंकल्पं कृत्वेत्यर्थः ।

समिधश्च चरुद्रव्यं क्रमेण जुहुयाद् गृही ।
हुवेत्सवितृमन्त्रेण सोमोधेनुं च मन्त्रतः ॥
एतैर्मन्त्रैश्च प्रत्येकं हुवेदष्टोत्तरं शतम् ।

एतैरिति वहुवचनात्पितृहोमोऽप्यष्टोत्तरशतमिति प्रयोगपारिजातः ।

दर्शस्य देवताहोमः अष्टाविंशतिसंख्यया ॥
होममेवं तु कृत्वाऽथ विदध्याच्चाभिषेचनम् ।
श्रीसूक्तमायुष्यसूक्तं समुद्रज्येष्ठइत्यृचा ॥
एतैर्मन्त्रैरभिषेकं मातापित्रोः शिशोस्तथा ।
ततः स्विष्टकृदादि स्याद्धोमशेषं समापयेत् ॥
हिरण्यं रजतं चैव कृष्णां धेनुं सदक्षिणाम् ।
अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति दातव्या दक्षिणा तथा ॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र कारयेत्स्वस्तिवाचनम् ।

इति नारदोक्तदर्शशान्तिविधिः ॥

वैधृतिव्यतीपातादिजननशान्तयः सर्वसाधारणशान्तित्वेन पूर्वमुक्ताः (२४८) ।

अथ कार्तिकदंष्ट्राशान्तिः ।

स्मृत्यन्तरे—

दिनषट्कं कन्यकायाः सप्ताहानि च कार्तिके ।
वराहदंष्ट्रा विज्ञेया वर्जयेत्सर्व्वकर्म्मसु ॥

इति केषांचिन्मतम् । अथ सर्वसम्मतम्

दंष्ट्राग्रभागे भगवान्धरित्रीं त्रयोदशाहेऽधृत कार्त्तिकस्य ।
तस्मिन्न कुर्य्याद्व्रतगेहवास्तुविवाहयात्राशुभमङ्गलानि ॥
तत्र शान्तिः प्रकर्त्तव्या दंष्ट्रादोषनिवारिका ।
धेनुं पयस्विनीं दद्यात्सर्वदोषोपशान्तये ॥

गर्ग उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दंष्ट्राया जनने फलम् ।
सिंहः सर्प्पस्तथाश्वानस्त्रयोदश व्यवस्थिताः ॥
प्रथमे ह्यात्मनाशाय पितृनाशो द्वितीयके ।
तृतीये मातृनाशाय चतुर्थे वंशनाशनम् ॥
पञ्चमे भ्रातरं हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत् ।
सप्तमे मातुलं हन्ति सर्वस्वं चाष्टमे तथा ॥
नवमे द्रविणं हन्ति दशमे स्वामिनं तथा ।
श्वश्रूमेकादशे हन्ति द्वादशे श्वशुरं तथा ॥
त्रयोदशे शुभं विद्यात् दंष्ट्रायाः फलमीदृशम् ।
पाताले स्वर्गमर्त्ये च चत्वारि दिनसंख्यया ॥
फलं वक्ष्यामि लोकेषु दंष्ट्राद्वादशके तथा ।
स्वर्गलोके भवेत्सौख्यं मर्त्यलोके महद्भयम् ॥
पाताले च भवेल्लाभो दंष्ट्रायास्तु व्यवस्थितिः ।
तत्र शान्ति प्रवक्ष्यामि सर्वाचार्यमतेन तु ॥
ब्राह्मणान् वृणुयात्पूर्वं कुलीनान्वेदपारगान् ।
प्रतिमां कारयेद्विष्णोर्निष्कनिष्कार्धपादतः ॥
मण्डलं कारयेत्तत्र रक्ताब्जव्रीहितण्डुलैः ।
तत्रैकं कलशं स्थाप्य पञ्चपल्लवसंयुतम् ॥

शतौषधानि निक्षिप्य सर्वौषधियुतानि च।
वेदोक्तेन विधानेन कलशं स्थापयेत् बुधः॥
तत्रोपरि न्यसेत्पात्रं स्वर्णं वा रौप्यताम्रकम्।
तन्मध्ये प्रतिमां स्थाप्य पीताम्बरधरां शुभाम्॥
विष्णोरराटमन्त्रेण प्रतिमां पूजयेत्सुधीः।
उपचारैः षोडशभिः किंवा पञ्चोपचारकैः॥
तस्मात्तु नैर्ऋते देशे स्थण्डिलेऽग्निं प्रकल्पयेत्।
स्वस्वशाखोक्तविधिना कुर्यादग्निमुखं ततः॥
त्रिमध्वक्तैस्तिलैर्विद्वान् होमं कुर्य्यात्स्वशक्तितः।
निर्वर्त्य चाज्यहोमान्तमभिषेकं समाचरेत्॥
दारपुत्रसमेतस्य यजमानस्य सर्त्विजः।
अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च॥
विष्णोरराटमन्त्रेण शिवसंकल्पमन्त्रकैः।
ततः शुक्लाम्बरधरः सुभगो धातुलेपनः॥
यजमानो दक्षिणाभिस्तोषयेदृत्विगादिकान्।
धेनुं पयस्विनीं तद्वत्प्रतिमां वस्त्रसंयुताम्॥
सुप्रसन्नमना भूत्वा आचार्य्याय प्रदापयेत्।
अन्येभ्यो दक्षिणां दद्यात्तथा वित्तानुसारतः॥
भूयसी दक्षिणा देया ब्राह्मणान् भोजयेद्दश।
एवं कार्तिकदंष्ट्रायाः शान्तिकं कुरुते नरः॥
सर्वान् कामानवाप्नोति जीवेद्वर्षशतं सुधीः।
व्रतबन्धे भवेत्कुष्ठी दीक्षा चापि सुनिष्फला॥
विवाहे चैव वैधव्यं दंष्ट्रायाः फलमीदृशम्।

इति कार्तिकदंष्ट्राजननशान्तिः॥

अथ सर्प्पयुग्मदर्शनशान्तिः॥

ईश्वर उवाच—

सर्प्पयुग्मं यदा पश्येत्तदा हानिः प्रजायते।
अर्थहानिर्भवेत्तस्य शरीरे व्याधिपीडनम्॥

तत्र चाष्टोत्तरशतं जुहुयादाज्यसंयुताम् ।
नमोऽस्तुसर्प्पेभ्य इति गुडूचीं तु यथाविधि ॥
मृत्युञ्जयस्य प्रतिमां त्र्यम्बकेति प्रपूजयेत् ।
इति सर्प्पद्वन्द्वदर्शनशान्तिः ॥

अथ सारमेयशान्तिः ॥

ईश्वर उवाच—

सारमेयो यस्य गृहे चास्थि चादाय मानुषम् ।
प्रविशेच्चोपरि रुदन् तस्य शान्तिं वदाम्यहम् ॥
स्वामिनस्तस्य नाशाय पुत्रार्थस्त्रीक्षयाय च ।
नरकागमनायाथ सप्ताहात्कथयत्यसौ ॥
शान्तिं तत्र प्रवक्ष्यामो यथा कृत्वा भवेत् सुखम् ।
मृत्युञ्जयस्य प्रतिमां कारयेद्वित्तसम्भवाम् ॥
ॐजूँस इति मन्त्रेण ऋचा वा त्र्यम्बकेति च ।
पुनरात्रेति(पुनरासद्य)मन्त्रेण जुहुयाच्च शतत्रयम् ॥
मधुपायसयोर्होमः शिवसंकल्पमन्त्रकैः ।
वेदमन्त्रैश्च शान्त्युक्तैरभिषेकं प्रकल्पयेत् ॥
प्रतिमां वस्त्रसंयुक्तां वृषभेण समन्विताम् ।
श्रीरुद्रजापिने दद्यात्ततः शान्तिर्भविष्यति ॥
इति सारमेयशान्तिः ॥

अथ काकविष्ठापतनशान्तिः ॥

आश्रयस्थो यदा काको विष्ठां सम्पद्यते यदि ।
क्षीरवृक्षं समारूढस्तस्य सिद्धिरनेकधा ॥
शुष्कवृक्षसमारूढो विष्ठां सम्पद्यते यदि ।
तस्य लक्ष्मीः क्षयं याति त्रिभिर्मासैर्न संशयः ॥
निरालम्बो यदा काको विष्ठां सम्पद्यते यदि ।
शिरसि पतति यस्य षण्मासात्तस्य मृत्युदः ॥
स्कन्धे वा ह्यथवा पृष्ठे विष्ठा पतति यस्य चेत् ।
भ्रातृकष्टं भवेत्तस्य अथवा देहनाशनम् ॥

बाह्वोः पतति विष्ठा तु मित्रनाशो भवेत्तदा ।
कुक्षौ पुत्रान्निहन्त्याशु उदरे रोगमादिशेत् ॥
गुह्ये पतति यस्यैव पुत्रनाशो भवेत्तदा ।
ऊर्वोर्वा जान्वोर्यस्य काकविष्ठा प्रपद्यते ॥
तद्वाहनस्य नाशः स्याद्भयं राज्ञः सकाशतः ।
चरणे प्रपतेद्यस्य देशत्यागो भवेत्तदा ॥
निरालम्बो यदा काको विष्ठां श्वेतां करोति चेत् ।
उत्तरतः पूर्वमायाति शत्रुनाशो भवेत्तदा ॥
याम्याः परां दिशं याति कृष्णां विष्ठां प्रपद्यते ।
अब्दाभ्यन्तरतो मृत्युः सर्वनाशो भवेत्तदा ॥
यस्याङ्गे प्रपतेद्विष्ठा सचैलं स्नानमाचरेत् ।
वस्त्रत्यागो भवेत्तस्य सद्यः शान्तिकरो हि सः ॥
धेनुरेका च दातव्या सर्वालङ्कारशोभिता ।
पञ्चरत्नं च दातव्यं दक्षिणा चैव शक्तितः ॥
सतिलैर्मधुभिर्होममष्टोत्तरशतं चरेत् ।

इति काकविष्ठापतनशान्तिः ॥

अथ श्वेतकाकदर्शनशान्तिः ॥

श्वेतपक्षो यदा काको दृश्यते यस्य मण्डले ।
स्वामिमण्डलयोर्नाशो याम्याशायां तु निश्चितम् ॥
तत्र शान्तिः प्रकर्त्तव्या सर्वदोषोपशान्तये ।
यमाय त्वेति मन्त्रेण तिलमाषादि होमयेत् ॥
विप्राय महिषं दद्याद्यथाऽलंकारभूषितम् ।

इति श्वेतकाकदर्शनशान्तिः ॥

अथ पल्लीपतनसरटप्ररोहणशान्तिः ॥

पल्ल्याः प्रपतने पूर्वं फलमुक्तं शुभाशुभम् ।
शीर्षे राज्यश्रियोऽवाप्तिर्मौलौ त्वैश्वर्यवर्धनम् ॥ १ ॥
पल्ल्याः प्रपतने चैव सरटस्य प्ररोहणे ।
शुभाशुभं विजानीयात्तत्तत्स्थाने विशेषतः ॥ २ ॥

सव्ये भुजे जयः प्रोक्तो ह्यपसव्ये महद्भयम् ।
कुक्षौ दक्षिणभागस्य धनलाभस्तथैव च ॥ ३ ॥
वामकुक्षौ तु निधनं गदितं पूर्वसूरिभिः ।
सव्यहस्ते मित्रलाभो वामहस्ते तु निःस्वता ॥ ४ ॥
उदरे सव्यभागे तु सुपुत्रावाप्तिरुच्यते ।
वामभागे महारोगः कट्यां सव्ये महद्यशः ॥ ५ ॥
वामकट्यां तु निधनं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
जान्वोरेवं विजानीयात्सव्यपादे शुभावहम् ॥ ६ ॥
वामपादे तु गमनम् इति प्राहुर्महर्षयः ।
स्त्रीणां तु सरटस्यैवं व्यस्तमेतत्फलं वदेत् ॥ ७ ॥
फलं प्ररोहणे चैव सरटस्य प्रचारतः ।
सर्वाङ्गेषु शुभं विद्यात् शान्तिं कुर्यात्स्वशक्तितः ॥ ८ ॥
शुभस्थाने शुभावाप्तिरशुभे दोषशान्तये ।
तत्स्वरूपं सुवर्णेन रुद्ररूपं तथैव च ॥ ९ ॥
मृत्युंजयेन मन्त्रेण वस्त्रादिभिरथार्चयेत् ।
अग्निं तत्र प्रतिष्ठाप्य जुहुयात्तिलपायसैः ॥ १० ॥
आचार्यो वारुणैः सूक्तैः कुर्यात्तत्राभिषेचनम् ।
आज्यावलोकनं कृत्वा शक्त्या ब्राह्मणभोजनम् ॥ ११ ॥
गणेशक्षेत्रपालार्कदुर्गाक्षोण्यङ्गदेवताः ।
तासां प्रीत्यै जपः कार्यः शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥ १२ ॥
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात्षोडशभ्यः स्वशक्तितः । इति ।

इति शान्तयः ॥

अथ जलाशयोत्सर्गः ।

बहूपकारकत्वेन सप्रयोगाः शान्तीः पूर्वं प्रदर्श्य भोगमात्रफलकभूतमात्रस्वत्वोत्पादकव्यापाररूपस्योत्सर्गस्य दानपदार्थघटकत्वात् तत्प्रयोगदर्शनावसरे स्मृतो जलाशयोत्सर्ग इदानीं सप्रयोगः प्रदर्श्यते।

तत्र जलाशयप्रशंसा विष्णुधर्मोत्तरे—

उदकेन विना तृप्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा ।

तस्माज्जलाशयाः कार्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥
अग्निष्टोमसमः कूपः सोऽश्वमेधसमो मरौ ।
कूपः प्रवृत्तपानीयः सर्वं हरति दुष्कृतम् ॥
कूपकृत्स्वर्गमासाद्य सर्वान्भोगानुपाश्नुते ।
तत्रापि भोगनैपुण्यं स्थानाभ्यासात्प्रकीर्तितम् ॥

नन्दिपुराणे—

यो वापीमथवा कूपं देशे तोयविवर्जिते ।
खानयेत्स नरो याति स्वर्गं प्रेत्य शतं समाः ॥

आदित्यपुराणे—

सेतुबन्धरता ये च तीर्थशौचरताश्च ये ।
तडागकूपकर्तारो मुच्यन्ते ते तृषाभयात् ॥

विष्णुः—

कूपारामतडागेषु देवतायतनेषु च ।
पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मौलिकं फलम् ॥

कूपपरिमाणमाह गर्गः—

कुर्यात्पञ्चकरादूर्ध्वं पञ्चविंशत्करावधि ।
कूपं वृत्तायतं प्राज्ञः सर्वभूतसुखावहम् ॥

देवीपुराणे—

कूपः पञ्चकरादूर्ध्वं यावद्वर्गस्तदुद्भवः ।
वापी दण्डमयादूर्ध्वं दशवर्गा नृपोत्तमैः ॥

कूपस्थानफलान्याह वसिष्ठसंहितायाम्—

ऐश्वर्यं पुत्रहानिश्च स्त्रीनाशो निधनं भवेत् ।
संपत् शत्रुभयं सौख्यं पुष्टिः प्रागादितः क्रमात् ॥

पूर्वस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यामैशान्यां च कूपकरणं शुभमन्यत्राशुभमित्यर्थः ।

अथ तडागादिप्रतिष्ठा ।

मत्स्यपुराणे—

प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते (प्राप्ते) चोत्तरायणे ।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥

प्रागुदक्प्रवणे देशे तडागस्य समीपतः ।
चतुर्हस्तां शुभां वेदीं चतुरस्रां चतुर्मुखीम् ॥
तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ।
वेद्याश्च परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखलाः ॥
नव सप्ताथवा पञ्च नातिरिक्ता नृपात्मज ।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता ॥
गर्ताश्च तत्र शस्ताः स्युस्त्रिपर्वोच्छ्रितमेखलाः ।
सर्वतस्तु सवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः ॥
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि तु ।
मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् ॥
शुभास्तत्राष्ट होतारो द्वारपालास्तथाऽष्ट वै ।
अष्टौ तु जापकाः कार्या ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥
कुलशीलसमायुक्तः स्थापकः स्याद्द्विजोत्तमः ।
प्रतिगर्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च ॥
व्यजनं चासने शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तृते ।
ततस्त्वनेकवर्णाः स्युः बलयः प्रतिदैवतम् ॥
आचार्य्यः प्रक्षिपेद् भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः ।
अरत्निमात्रो यूपः स्यात्क्षीरवृक्षविनिर्मितः ॥
यजमानप्रमाणो वा संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ।
हेमालंकारिणः कार्याः पञ्चविंशतिऋत्विजः ॥
दक्षयेच्च समं सर्वानाचार्ये द्विगुणं पुनः ।
दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत्प्रियम् ॥
सौवर्णौ कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यडुण्डुभौ ।
ताम्रौ कुलीरमण्डूकावायसः शिशुमारकः ॥
एवमासाद्य तान्सर्वानादावेव विशांपते ।
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥
सर्वौषधियुताम्भोभिः स्नापितो वेदपुङ्गवैः ।
यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥

पश्चिमं द्वारमाश्रित्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ।
ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निस्वनेन च ॥
रजसा मण्डलं कुर्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित् ।
षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम् ॥
चतुरस्रं च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम् ।
वेद्याश्चोपरि तत्कृत्वा ग्रहान् लोकपतींस्तथा ॥
विन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान्प्रतिदिक्षु विचक्षणः ।
झषादीन्स्थापयेन्मध्ये वारुणं मन्त्रमाश्रितः ॥
ब्रह्माणं च शिवं विष्णुं तथैव स्थापयेद् बुधः ।
विनायकं च विन्यस्य कमलामम्बिकां तथा ॥
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत्ततः ।
पुष्पभक्षफलैर्युक्तमेवं कृत्वाऽधिवासयेत् ॥
कुम्भांश्च रत्नगर्भांस्तान्वासोभिरभिवेष्ट्य च ।
गन्धपुष्पैरलंकृत्य द्वारपालान्समन्ततः ॥
पठध्वमिति तान्ब्रूयादाचार्यस्त्वभिपूजयन् ।
बह्वृचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ ॥
सामगौ पश्चिमे स्थाप्यावुत्तरेण त्वथर्वणौ ।
उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत् ॥
यजध्वमिति तान्ब्रूयाद्धोतृकान्पुनरेव तु ।
उत्कृष्टमन्त्रजप्येन तिष्ठध्वमिति जापकान् ॥
एवमादिश्य तान्सर्वान्प्रयुज्याग्निं च मन्त्रवित् ।
जुहुयाद्वारुणैर्मन्त्रैराज्यं च समिधस्तथा ॥
ऋत्विग्भिश्चैव होतव्या वारुणैरेव सर्वशः ।
ग्रहेभ्यो विधिवद्धुत्वा तथेन्द्रायेश्वराय च ॥
मरुद्भ्यो लोकपालेभ्यो विधिवद्विश्वकर्मणे ।
रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं सुमङ्गलम् ॥
जपेरन्पौरुषं सूक्तं पूर्वतो (१)बह्वृचाः पृथक् ।

(१)जापकयोर्द्वारपालयोश्च समुच्चयेन बहुत्वमुपपद्यते। एवमुत्तरत्रापि।

शाक्तं रौद्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं जातवेदसम् ॥
सौरसूक्तं जपेरंस्ते दक्षिणेन यजुर्विदः ।
वैराजं पौरुषं सूक्तं सौपर्णं रुद्रसंहिताम् ।
शैशवं पञ्चनिधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च ।
वामदेव्यं बृहत्साम रौरवं सरथन्तरम् ॥
गवां व्रतं विकर्णं च रक्षोघ्नं च यशस्तथा ।
गायेयुस्सामगा राजन् पश्चिमद्वारमाश्रिताः ॥
आथर्वणाश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा ।
जपेरन्मनसा देवमाश्रिता वरुणं प्रभुम् ॥
पूर्वेद्युरभितो रात्रावेवं कृत्वाऽधिवासनम् ।
गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमह्रदगोकुलात् ॥
मृदमानीय कुम्भेषु प्रक्षिपेच्चत्वरात्तथा ।
रोचनां च ससिद्धार्थान्गन्धान् गुग्गुलुमेव च ॥
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पञ्चभङ्गसमन्वितैः ।
पूर्तकर्तुर्महामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः ॥
एवं क्षपामतीवाह्य विधियुक्तेन कर्मणा ।
ततः प्रभाते विमले सञ्जातेऽथ शतं गवाम् ॥
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्ट्यथवा पुनः ।
पञ्चाशद्वाऽथ षड्विंशत्पञ्चविंशति वा पुनः ॥
ततः सांवत्सरप्रोक्ते शुद्धे लग्ने सुशोभने ।
वेदशास्त्रैः सगान्धर्वैर्वाद्यैश्च विविधैः शुभैः ॥
कनकालङ्कृतां कृत्वा तत्र गामवतारयेत् ॥
सामगाय च सा देया ब्राह्मणाय विशांपते ॥
जलाशयं च त्रिवृता सूत्रेण परिवेष्टयेत् ।
पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्विताम् ॥
ततो निक्षिप्य मकरं मत्स्यादींस्तांश्च सर्वशः ।
धृतां चतुर्भिर्विप्रैश्च वेदवेदाङ्गपारगैः ॥
महानदीजलोपेतां दध्यक्षतविभूषिताम् ।

उत्तराभिमुखो न्युब्जां जलमध्ये तु कारयेत् ॥
आथर्वणेन साम्ना च पुनर्मामित्यृचेति च ।
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डपम् ॥
पूजयित्वा सदस्यांस्तु बलिं दद्यात्समन्ततः ।
पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः ॥
चतुर्थीकर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः ।
दक्षिणा राजशार्दूल वरुणं संस्मरंस्ततः ॥
कृत्वा तु, यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च ।
ऋत्विग्भ्यस्तु समं दत्त्वा मण्डपं विभजेत्पुनः ॥
हेमपात्रीं च शय्यां च स्थापकाय निवेदयेत् ।
ततः सहस्रं विप्राणामथवाऽष्टशतं तथा ॥
भोजयेच्च यथाशक्त्या पञ्चाशद्वाऽथ विंशतिम् ।
एवमेव पुराणेषु तडागविधिरुच्यते ॥
कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च ।
एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च ॥
मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात्प्रासादोद्यानभूमिषु ।
अयं त्वशक्तावर्धेन विधिर्दृष्टः स्वयंभुवा ॥
स्वल्पेष्वेकाग्निवत्कार्यं वित्तशाठ्याद‍ृते नृभिः । इति ।

अथ कूपवापीतडागानामुत्सर्गप्रयोगः ।

तत्र तावत् उत्सर्गं चिकीर्षुर्यजमान उत्तरायणे शुक्लपक्षे सांवत्सरोक्ते शुभदिने जलाशयस्य पूर्वत उत्तरतः पूर्वोत्तरतो वा समीपे प्रागुदक्प्रवणे सुसंस्कृते देशे (३७) उक्तरीत्या गणेशभूम्यादिपूजनं कृत्वा षोडशहस्तं दशहस्तं वा चतुर्द्वारमण्डपं सति संभवे कृत्वा, तदसंभवे षोडशहस्तायतामष्टहस्तविस्तृतां दशहस्तायतां पञ्चहस्तविस्तृतां वा शालां कृत्वा तन्मध्ये पञ्चहस्तां चतुर्हस्तां वा चतुरस्रां हस्तोच्छ्रितां वेदिकां कुर्यात् । वेदिकायाः पश्चिमायामुत्तरस्यां वा मेखलायोनियुतं हस्तमात्रं कुण्डं तावन्मात्रं स्थण्डिलं वा कुर्यात् । प्रधानवेद्यां च सहोमतुलादानप्रयोगटिप्पणोक्तरीत्या (७३ पृ०) पञ्चवर्णरजोभिर्वारुणं

मण्डलं लेखयेत्। क्षीरवृक्षकाष्ठजं कदम्बाश्वत्थवैकङ्कतपालाशबिल्वान्यतमकाष्ठजं वा यजमानमात्रं यूपं, कूर्ममकरौ सुवर्णेन, मत्स्यडुण्डुभौ रजतेन, कुलीरमण्डूकौ ताम्रेण, शिशुमारकमयसा, सौवर्णीं ताम्रमयीं कांस्यमयीं वा पात्रीं च संपादयेत्।

अथ जलाशयोत्सर्गाधिवासनदिनात्पूर्वदिने कृतहविष्यभोजनादिनियमो जलाशयोत्सर्गाधिवासनदिने कृतनित्यक्रियो यजमानः मण्डपादन्यत्रैव गोमयादिनोपलिप्ते स्थले आसने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य शान्तिपाठं कृत्वा उत्सर्गकर्मणो निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं यथाविधि गणेशं संपूज्य करिष्यमाणोत्सर्गाधिकरणतिथ्यादीनुल्लिख्य अमुकशर्माऽहम् अशेषपापक्षयकामः स्वर्गकामो मोक्षकामो वा स्वपितॄणां स्वर्गादिकामो वा नानाभूतेभ्यः अमुकजलाशयोत्सर्गं करिष्ये इति प्रतिज्ञाय तत्पूर्वाङ्गत्वेन गणपतिसहितषोडशमातृपूजनं नान्दीश्राद्धं पुण्याहवाचनम् आचार्यादिवरणं वारुणमण्डलदेवतापूजनमावाहितदेवानां हवनं च करिष्ये इति संकल्प्य—

पुण्याहवाचनान्तं कृत्वा 'अद्येहामुकगोत्रममुकशर्माणममुकजलाशयप्रतिष्ठाङ्गहोमादि कर्तुमेभिर्गन्धपुष्पवस्त्रालङ्करणद्रव्यैराचार्यत्वेन त्वामहं वृणे' इत्याचार्यं वृत्वा "आचार्यस्तु यथा स्वर्गे" इति संप्रार्थ्य तथैव ब्रह्माणं वृत्वा "यथा चतुर्मुख" इति संप्रार्थ्य चरुसमिद्धोमार्थं स्वशाखीयावन्यऋत्विजौ वृत्वा सति संभवे मधुपर्कविधिना सर्वान्संपूज्य मण्डपसत्त्वेऽष्टौ चतुरो वा जापकांस्तावत एव द्वारपालांश्च वृत्वा "ऋग्वेदः पद्मपत्राक्ष" इत्यादिना संप्रार्थ्य सति संभवे सौवर्णकुण्डलादिकं च सर्वेभ्यो दत्त्वा आचार्याय द्विगुणं दत्त्वा ब्रह्मघोषेण तूर्यमङ्गलशब्देन च ऋत्विक्सहितो यजमानो यजनदेशं गत्वा मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य उपकरणजातं तत्र परिचारकादिभिः संस्थाप्य पश्चिमद्वारेण सर्वैः सह प्रविशेत्।

अथाचार्यो मण्डपपश्चिमे उपविश्य तुलादानप्रयोगोक्तरीत्या (४५)मण्डपपूजां कुर्यात्। मण्डपाभावे तु वास्तुपूजा नियमेन कार्या। "वास्तु पूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति" इति मात्स्ये निन्दाश्रव-

णात्। सा च गृहदानोक्तप्रकारेणेति हेमाद्रिरिति पूर्तकमलाकरः।

ततो यजमानः प्राग्द्वारेण मण्डपं प्रविश्य दक्षिणद्वारपश्चिमे उत्तराभिमुख उपविश्य 'यथाविहितं कर्म कुरुत' इत्याचार्यादीनध्येषयेत्।

अथाचार्यः महावेदेरुपरि पञ्चवर्णं वितानं मध्ये बध्वा तस्याधस्तुलापुरुषदानोक्तप्रकारेण वारुणमण्डलं विलिख्य कुण्डे स्थण्डिले वा पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं प्रतिष्ठाप्य मेखलायोनिदेवतानां स्थापनं पूजनं च कृत्वा वेद्यां षोडशारचक्रमध्यगतपद्मकर्णिकायां सूर्यं मध्यस्थितवरुणकलशात् पूर्वदेशे प्रतिष्ठाप्य प्रागादिदलक्रमेण शुक्रादीन्ग्रहान्ग्रहयागोक्तरीत्या स्थापयित्वा अधिदेवताः प्रत्यधिदेवताः विनायकादिलोकपालांश्च तत्रैवोक्तरीत्या स्थापयित्वा रक्षासूत्रं च संस्थाप्य मण्डलाद्बहिः मध्यवेद्यामेव पूर्वादिषु कलशेषु इन्द्रादीन्दिक्पालान् तुलादानप्रयोगोक्तैः(४७–५२)'एह्येहि'इतिपदघटितैः आवाह्य "त्रातारमिन्द्रम्" इत्यादिभिर्ग्रहयागप्रयोगोक्तैः स्थापयित्वा कर्णिकाया मध्ये कलशे सौवर्णप्रतिमासु वरुणं तत्परितः ब्रह्म–विष्णु–रुद्र–गणपति–लक्ष्मी–अम्बिका–भूतग्रामं च तत्रैव निर्दिष्टैर्मन्त्रैः संस्थाप्य सर्वान्षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा वैदिकमन्त्रैर्नाममन्त्रैर्वा संपूज्य सौवर्णौ कूर्ममकरौ, राजतौ मत्स्यडुण्डुभौ, ताम्रमयौ कुलीरमण्डूकौ, लौहं शिशुमारकञ्चैकस्मिन्वंशपात्रे निधाय प्रक्षाल्य गन्धादिना संपूज्य तान् सुवर्णपात्र्यां कांस्यपात्र्यां ताम्रपात्र्यां वा सति सम्भवे सुवर्ण–रजत–मुक्ता–लाजावर्त–प्रवालेति पञ्चरत्नयुतायां निधाय वेदिमध्ये "इमं मे" इति मन्त्रेण स्थापयित्वा सति संभवे सर्वेभ्यः पायसबलिं दध्यक्षतबलिं वा दद्यात्।

(१)तत आचार्यो होमवेदेः ईशानकोणे पञ्चवर्णैश्चतुर्विंशतिदलम् अष्टदलं वा पद्मं कृत्वा तत्र गन्धाद्यर्चितं कलशं यथाविधि संस्थाप्य तत्र गजाश्वाद्यष्टस्थानेभ्य आहृता अष्टमृदो रोचनासर्षपगन्धगु-

(१) एककुण्डपक्षमाश्रित्यैव प्रयोगस्य प्रचलितत्वात् एकस्यैव कलशस्य स्थापनम्।

ग्गुलूनश्वत्थादीन्पञ्चपल्लवांश्च क्षिप्त्वा तत्र "इमं मे" इति वरुणमावाह्य संपूज्य—

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥
अश्वत्थो भास्करो गङ्गा नैमिषारण्य एव च ।
एतानि सर्वतीर्थानि घटेऽस्मिन्निवसन्तु मे ॥
सरस्वती गण्डकी च कौशिकी सरयूस्तथा ।
एताश्च सरितः पुण्याः कलशे सन्तु मे सदा ॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥

इत्येतैर्देवदानवसंवादे इत्याद्यैश्च तीर्थानि तस्मिन् कलशे न्यस्येत् । ततो रक्षासूत्रमभिमन्त्रितं यदाबध्नन्निति, येन बद्धो बली राजेति च हस्ते बन्धयेयुः(१) ।

ततो महावेदेः उत्तरदेशे अरत्निमात्रं गर्तं खात्वा तत्राक्षतान्दर्भांश्च प्रक्षिप्य यवोऽसीत्यप्सु यवानोप्य तद्युक्ताभिरद्भिर्यज्ञियक्षीरवृक्षजं त्र्यरत्निं यजमानमात्रं वा अष्टास्रिं मूर्ध्नि वर्तुलं यूपमग्रमध्यमूलेषु प्रोक्ष्य,

ॐ उद्दिव ँ स्तभानान्तरिक्षंपृणदृ ँहस्व पृथिव्याम्—इत्युच्छ्रित्य,

ॐ ध्रुतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा—

इति गर्ते यूपं निखनेत् ततस्तं हरिद्रातैलाभ्यामभ्यज्याभिषिच्य च गोरोचना–गुग्गुलु–निम्बपत्रगर्भां पोटलिकां तदग्रभागे बध्वा "युवासुवासा" इति वासोयुगेनाच्छाद्य गन्धादिना संपूज्य "या ओषधीः" इति पुष्पमालां बध्वा प्रदक्षिणीकृत्य गाढमालिङ्ग्य पुत्राद्युपेतो यजमानो नमेत् ।

---

(१) यजमानहस्ते अन्येषामृत्विगादीनां च हस्ते आचार्यः, आचार्यहस्ते च यजमानो बध्नीयादित्याचारः ।

तत आचार्यः पादौ प्रक्षाल्याचम्य द्वारपालान् पठध्वमिति, जापकान् जपध्वमिति प्रेषयेत् । ते चाकर्मसमाप्ति स्वस्वसूक्तानि पठेयुर्जपेयुश्च ।

अथाचार्यः होमकुण्डसमीपमागत्योपविश्य ब्रह्मोपवेशनादिपर्युक्षणान्तं व्रीहितण्डुल-यवयोः चरुसंपादनसहितं कर्म कृत्वा संस्रवधारणार्थं प्रोक्षणीपात्रं प्रणीताग्न्योर्मध्ये निदध्यात् ।

ततो यजमानः—अद्येह अमुकजलाशयोत्सर्गयागेनाहं यक्ष्ये । तत्र प्रजापतिमिन्द्रम् अग्निम् सोममाज्येन, नवग्रहान् अष्टाविंशतिसंख्याकाभिस्समिच्चर्वाज्यतिलाहुतिभिः, अधिदेवताः प्रत्यधिदेवताः विनायकादिलोकपालांश्च चतुःसंख्याभिः समिच्चर्वाज्यतिलाहुतिभिः, इन्द्र–शिव–मरुद्गण–लोकपालदशक–विश्वकर्मणः प्रत्येकम् अष्टाविंशतिसंख्याभिः समिदाद्याहुतिभिः, अग्नीवरुणादीनग्न्यन्तान्दश आज्येन, अग्न्यादीन्स्वर्गान्तान्यवमयेन चरुणा, वरुणमष्टोत्तरशतसंख्याभिरुदुम्बरसमिदाज्याहुतिभिः, ब्रह्म–विष्णु-शिव-विनायक–कमला–ऽम्बिका–भूतग्रामान् अष्टाविंशतिसंख्याभिः समिदाज्याहुतिभिः, शेषेण स्विष्टकृतम्, अग्न्यादिप्रजापत्यन्तांश्चाज्येनाहं यक्ष्ये । इदमुपकल्पितं समिच्चर्वाज्यतिलद्रव्यम् आघाराज्यभागदेवताभ्यः, नवग्रहेभ्यः, अधिदेवताभ्यः, प्रत्यधिदेवताभ्यः, विनायकादिलोकपालेभ्यः, इन्द्रशिवमरुद्गणेभ्यः, इन्द्रादिदिक्पालेभ्यः, विश्वकर्मणे, अग्नीवरुणादिदशभ्यः, अग्न्यादिस्वर्गान्तेभ्यः, वरुणाय, ब्रह्मादिभूतग्रामान्तेभ्यः अग्नये स्विष्टकृते, अग्न्यादिप्रजापत्यन्तेभ्यश्च तत्तदुक्तसंख्यया मया परित्यक्तम्, ॐ तत्सन्न मम इति त्यजेत् ।

ततो द्वारपालादिजपे प्रस्तूयमाने सति आचार्यो वरुणनामानमग्निम् "एतंते" इति प्रतिष्ठाप्य कुशकण्डिकाप्रयोगोक्तरीत्या (सं० दी०प्र० १७० अग्निं रेखा अग्निजिह्वाश्च संपूज्य दक्षिणं जान्वाच्य ब्रह्मणाऽन्वारब्ध आघारावाज्यभागौ च जुहुयात् ।

ततस्त्यक्तान्वारम्भ आचार्य आज्येन, अपरे ऋत्विजः समिद्–व्रीहितण्डुलचरु- तिलैः ग्रहयागोक्तरीत्या ग्रहादिपञ्चलोकपालान्तेभ्यो-

ऽष्टाविंशत्यादिसंख्याहुतिभिः—इन्द्र—शिव—मरुद्गण—दिक्पालदशक—विश्वकर्मभ्यः ॐ "त्रातारमिन्द्रम्०" इति ॐ "तमीशानम्०" इति ॐ "मरुतोयस्य०" इति ॐ "त्रातारमिन्द्रम्" इत्यादिदशमन्त्रैः "विश्वकर्मन् हविषा" इत्यनेन च अष्टाविंशतिसंख्याहुतिभिर्जुहुयुः।

(१) अथाचार्यः "त्वन्नो अग्ने०" इति वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः अग्नीवरुणौ देवते आज्याहुतिहोमे विनियोगः। ॐ त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो ऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाᳬसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्—स्वाहा १

"सत्वंन" इति वामदेव ऋषिः, त्रिष्टुप्० अग्नीवरुणौ० आज्या०। ॐ स त्वं नो ऽअग्नेऽवमो भवोऽती नेदिष्ठोऽअस्या ऽउषसो व्युष्टौ॥ अवयक्ष्व नो वरुणᳬ रराणो वीहि मृडीकᳬ सुहवो न ऽएधि—स्वाहा २

"इमं मे" इति शुनःशेपऋषिः, गायत्री छन्दः, वरुणो देवता, आज्या०।

ॐ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय॥ त्वामवस्युराचके—स्वाहा ३

"तत्त्वायामि" इति शुनःशेप० त्रिष्टुप्छन्दः, वरुणो देवता आज्या०।

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशᳬस मा न ऽआयुः प्रमोषीः—स्वाहा ४

"ये तेशतम्" इति वामदेव ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, वरुणस्सविताविष्णुर्विश्वेदेवामरुतस्स्वर्काश्च देवताः आज्या०।

---

(१) त्वंनो अग्ने इत्याद्या दशाज्याहुतयः, अग्नये स्वाहा इत्याद्या नव यवमयचर्वाहुतयश्च पारस्करगृह्योक्ताः। पा. गृ. का. ३ अन्तिमा परिशिष्टकण्डिका।

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ॥ तेभिर्नो ऽअद्य सवितोतविष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः—स्वाहा ५

"अयाश्चाग्ने" इति वामदेव० त्रिष्टुप् छन्दः, अग्निर्देवता आज्या० ।

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया ऽअसि ॥ अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ६

"उदुत्तमम्" इति शुनःशेप ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः वरुणो देवता आज्यहोमे०

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय । अथा व्वयमादित्य व्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम—स्वाहा ७

"उरुꣳहि" इति शुनःशेप ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः वरुणो देवता आज्याहुति० ।

ॐ उरुꣳहि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवाऽउ ॥ अपदे पादा प्रतिधातवे करुतापवक्ता हृदयाविधश्चित—स्वाहा ८

"वरुणस्योत्तम्भनमसि" इति प्रजापतिर्ऋषिः, यजुश्छन्दः वरुणो देवता आज्या० ।

ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनी स्थो व्वरुणस्य ऽऋतसदन्यसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमासीद—स्वाहा ९

"अग्नेरनीकमिति" प्रजापतिर्ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः वरुणो देवता आज्या० ।

ॐ अग्नेरनीकमप ऽआविवेशापांनपात्प्रतिरक्षन्नसुर्य्यम् । दमे दमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा १० इत्याज्येन दशाहुतीर्हुत्वा

यवमयस्थालीपाकं घृतेनाभिघार्य जुहुयात् । ॐ अग्नये स्वाहा। ॐ सोमाय स्वाहा । ॐ वरुणाय स्वाहा । ॐ यज्ञाय स्वाहा । ॐ भीमाय स्वाहा । ॐ उग्राय स्वाहा । ॐ शतक्रतवे स्वाहा । ॐ व्युष्ट्यै स्वाहा । ॐ स्वर्गाय स्वाहा । इति एकैकामाहुतिं यवमयेन स्थालीपाकेन (चरुणा) जुहुयात् ।

अथाचार्य आज्येन, अन्य ऋत्विक् च उदुम्बरसमिधा ॐ "इमंमेवरुण०" १, ॐ "तत्त्वायामि०" २, ॐ "त्वंनो अग्ने व्वरुणस्य०" ३, ॐ सत्वंनो अग्ने०" ४, ॐ "अयाश्चाग्ने०" ५ ॐ येते शतं०" ६

आदित्यास्त्वगसि इति प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः "अस्तभ्नात्" इति "वनेषु व्यन्तरिक्षम्"इति अनयोः प्रजापतिर्ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः वरुणो देवता औदुम्बरसमिदाज्ययोर्होमे विनियोगः ।

ॐ अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सद ऽआसीदास्तभ्नाद् द्यां वृषभो ऽअन्तरिक्षममिमीत व्वरिमाणं पृथिव्याः । आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि व्वरुणस्य व्व्रतानि । ७ ॐ वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान व्वाजमर्वत्सु पय ऽउस्रियासु ॥ हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ ८

"उदुत्तमम्०" ९ "व्वरुणस्योत्तम्भनमसि०" १०

निषसादेति शुनःशेप ऋषिः गायत्री छन्दः वरुणो देवता औदुम्बरसमिदाज्य० ।

ॐ निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ॥ साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ ११

"घृतवती" इति याज्ञवल्क्य ऋषिः जगती छन्दः वरुणो देवता औ० । **ॐ घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ॥ द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते ऽअजरे भूरिरेतसा ॥ १२** इति द्वादशानां मन्त्राणां स्वाहान्तानां

प्रणवादीनां नवावृत्त्या अष्टोत्तरशतसंख्यया उदुम्बरसमिदाज्ये वरुणाय हुत्वा

ॐ "ब्रह्मजज्ञानम्०" ॐ "इमारुद्राय०" ॐ "इदं विष्णु०" ॐ "गणानां त्वा०" ॐ "श्रीश्चते०" ॐ "अम्बेअम्बिके०" ॐ भूतग्रामाय स्वाहा इत्येतैर्मन्त्रैः ब्रह्मादिभूतग्रामान्तेभ्यश्च समिदाज्ये जुहुयाताम्।

ततोऽन्वारब्ध आचार्यः शेषेण स्विष्टकृते हुत्वा भूरादिप्रजापत्यन्ताहुतीर्जुहुयात्।

(१)ततो बर्हिर्होमं संस्रवप्राशनम् अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिं प्रणीताविमोकं च कुर्यात्। ततो ग्रहादिदिक्पालान्तेभ्यो ग्रहयागोक्तरीत्या पायसेन दध्यक्षतैर्वा बलिं दत्त्वा ॐ वरुणाय० एष बलिर्नमः, भो भो वरुण इमं बलिं०। ॐ ब्रह्मणे० एष बलिः०। भो भो ब्रह्मन्०। ॐ शिवाय० भो भोः शिव० ॐ विष्णवे० भो भो विष्णो। ॐ गणपतये० भो भो गणपते०। ॐ लक्ष्म्यै० भो भो लक्ष्मि० ॐ अम्बिकायै० भो भो अम्बिके० ॐ भूतग्रामाय० भो भो भूतग्राम०॥ इति बलिं दत्त्वा क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात्। तद्दिने सर्वे ऋत्विग्यजमाना रात्रौ जागरणं कुर्युः। अत्र शक्तौ सत्यां सर्वेषामुपवासोऽन्यथा हविष्याशनम्।

इत्यधिवासनम्।

ततः प्रभाते होमवेदीशानेऽधिवासितकलशोदकैर्दूर्वापल्लवयुतैः सकुटुम्बं यजमानम् आचार्यादय ऋत्विजोऽभिषिञ्चेयुः। ततो यजमानोऽधिवासनकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्संपूर्णफलप्राप्त्यर्थं शतम् अष्टषष्टिं पञ्चाशतं, षड्विंशतिं वा गाः तन्निष्क्रयं वा दक्षिणा आचार्यादिभ्य ऋत्विग्भ्यो दद्यात्।

अथाचार्यः जलाशयं त्रिवृता सूत्रेणेशानादिप्रादक्षिण्येन परिवेष्टयेत्। अस्मिन्नवसरे श्वेतोष्णीषं यजमानः शिरसि बध्नीयादिति भविष्योत्तरे। पूर्वं वेद्युपरि अधिवासितां पञ्चरत्नसमन्वितां संस्था-

(१) चत्वारि दिनानि यावद्धोमपक्षे तदन्ते स्विष्टकृदादिकं कुर्यात्।

पितमकरादिकां सौवर्णीं कांस्यमयीं ताम्रमयीं वा पात्रीं चतुर्भिर्ब्राह्मणैर्धृतां समादाय जलाशये प्राङ्मुखस्तिष्ठन् दक्षिणहस्तेनागाधे जले पूर्वदेशे कूर्मं(१) प्रत्यङ्मुखं प्रक्षिप्य, आग्नेये मकरं तथैव प्रक्षिप्य मत्स्यडुण्डुभौ दक्षिणप्रतीच्योरुदङ्मुखौ, कर्कटकमण्डूकौ वायव्ये प्राङ्मुखौ, शिशुमारमुदीच्यां दक्षिणाभिमुखं प्रक्षिपेत् । ततः सर्त्विगाचार्य उदङ्मुखः "शंनोदेवीः"इति ऋचि गीतेनाथर्वणेन साम्ना—

ॐपुनर्मामैत्विन्द्रियं पुनरायुः पुनर्भगः ।
पुनर्द्रविणमैतु मां पुनर्ब्राह्मणमैतु माम् ॥

इति ऋचा, "आपोहिष्ठा" इति तृचेन च अगाधे जले गङ्गादिमहानदीजलोपेतां दध्यक्षतविभूपितां पात्रीं न्युब्जां कृत्वा तद्वस्तूनि सुवर्णादीनि जले क्षिप्त्वा तामादाय मण्डपं गच्छेत् । आचार्यादयः सर्वे अन्यवासांसि परिधाय द्विराचामेयुः ॥ तत उष्णीषबन्धपक्षे उष्णीषमाचार्याय यजमानो दद्यात् ।

(२)ततः सुलग्ने हेमशृङ्गादियुतां गां संपूज्य शान्तिपाठे वाद्यघोषे च जायमाने आचार्येण पुत्रादिना चान्वारब्धो यजमानो गोपुच्छं धृत्वा जलाशयस्य पश्चिमत ऐशान्यभिमुखीं गाम्—

ॐ इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या ।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः—

इति मन्त्रेण(य. सं. ५ । १६)पुरुषसूक्तं जपन् वा जलाशये अवतारयेत् ।

कूपे तु गोर्नावतारणम् । असंभवात् । किन्तु वापीकूपोत्सर्गे गां त्रिरुपरि भ्रमयेत् ।

---

(१)कूर्मः 'कछुवा' इति प्रसिद्धः । मकरः 'मगर' इति प्र० । डुण्डुभो द्विमुखः सर्पः । कर्कटः 'खेकडा' इति प्र० । मण्डूकः 'मेचुका' 'मेढक' इति च प्र० । शिशुमारको जलजन्तुविशेषः ।

(२) यद्यपि मात्स्ये गोरवतारणं पूर्वं, ततः पात्रीस्थजलचरप्रक्षेप उक्तः तथापि पारस्करगृह्ये जलचरप्रक्षेपानन्तरं गोरवतारणस्योक्तत्वात् तदनुरोधेनेत्थमुक्तम् ।

जलाशये अवतार्यमाणां गामनुमन्त्रयेत्—

ॐ इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व शुद्धाः पूता अमृताः सन्तु नित्यम् ॥ मां तारयन्ती कुरु तीर्थाभिषिक्तं लोकालोकं तरते तीर्यते च–इत्यनेन ।

यजमानः पुच्छाग्रे स्वयं लग्न आचार्येणान्वारब्धः—

ॐ समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ२ ॥ उदारदुपाᳪशुना सममृतत्वमानट् । घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ (य० सं० १७ । ८९)

(१३ । ८) ॐ येवाऽमी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु । येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥

इति मन्त्रद्वयं पठन् उत्तरेत् । तत ऐशान्यां परपारं गत्वा जानुदघ्ने जले स्थितो हस्ते यवकुशादिकं गृहीत्वा गोः पुच्छेन स्वशाखोक्तं देवर्षिपितॄणां स्वपितॄणां च तर्पणं(१) कृत्वा वक्ष्यमाणपौराणैः श्लोकैः कुर्यात्—

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
स्वस्वपत्नीसमेतास्ते प्रीयन्तां जलतर्पणात् ॥
अजातदन्ता ये केचिद्ये च गर्भे व्यवस्थिताः ।
तेषामुद्धरणार्थाय (२)तडागोदकमस्तु मे ॥
पितृव्यकाश्च येऽस्माकं भ्रातरश्च सहोदराः ।
गुरवो मातुलाः पुत्रा आचार्य–सखि–बान्धवाः ॥
तेषां पुत्राश्च पत्न्यश्च श्वशुरा ये सपुत्रकाः ।
एतेषां प्रीणनार्थाय तडागोदकतर्पणम् ॥

---

(१) देवपितृमनुष्येभ्यः पुच्छे तस्यास्तिलोदकम् ।
दत्त्वा निवेदयेत् पश्चात् सर्वालंकारभूषिताम् ॥
इति हेमाद्रौ वह्निपुराणे उक्तेर्देवादितर्पणं समूलं, पौराणश्लोकतर्पणं तु निर्मूलमेवेति मयूखकारादयः ।

(२) अत्र उत्तरत्र च सर्वत्र कूपोत्सर्गे तडागपदस्थाने कूपपदं, वाप्युत्सर्गे वापीपदं पठनीयम् ।

ब्राह्माद्या देवताः सर्वा ऋषयो मुनयस्तथा ।
असुरा यातुधानाश्च मातरश्चण्डिकास्तथा ॥
दिक्पाला लोकपालाश्च ग्रहदेवाधिदेवताः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु तडागोदकतर्पणैः ॥
विश्वेदेवास्तथाऽऽदित्याः साध्याश्चैव मरुद्गणाः ।
क्षेत्रपीठोपपीठानि नदा नद्यश्च सागराः ॥
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु तडागोदकतर्पणैः ।
पाताले नागपत्न्यश्च नागाश्चैव सपर्वताः ॥
पिशाचा गुह्यकाः प्रेता गन्धर्वा गणराक्षसाः ।
पृथिव्यापश्च तेजश्च वायुराकाश एव च ॥
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च ये च पातालवासिनः ।
शिवः शिवा तथा विष्णुस्सिद्धिर्लक्ष्मीः सरस्वती ॥
तपोधनश्च भगवानव्यक्तः परमेश्वरः ।
क्षेत्रौषधिलतावृक्षा वनस्पत्यधिदेवताः ॥
कपिलः शेषनागश्च तक्षकोऽनन्त एव च ।
अन्ये जलचरा जीवा असङ्ख्याताः सहस्रशः ॥
चतुर्दश यमाश्चैवं ये चान्ये यमकिङ्कराः ।
सर्वेऽपि यक्षराजानः पक्षिणः पशवस्तथा ॥
स्वेदजा उद्भिदो जीवा अण्डजाश्च जरायुजाः ।
अन्येऽपि वनजीवा ये दिवानिशविहारिणः ॥
अजागोमहिषीरूपा ये चान्ये पशवस्तथा ।
शान्तिदाः शुभदास्ते स्युस्तडागोदकतर्पिताः ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ये चान्ये गोत्रिणस्तथा ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु तडागोदकतर्पिताः ॥
सर्पव्याघ्रहता ये च शृङ्गिदंष्ट्र्यनिलाग्निभिः ।
अपुत्रा अक्रिया ये च अदारा धनवर्जिताः ॥
आमगर्भमृता ये च शस्त्रघातमृताश्च ये ।
संस्काररहिता ये च रौरवादिषु गामिनः ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरस्सर्वे मातृमातामहादयः ॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।
आब्रह्मभुवनाल्लोकास्तडागोदकमस्त्विदम् ॥
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः ।
गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।
क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा ॥
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम ।
तेभ्यो दत्तं तडागस्य जलमेतत् सुतृप्तये ॥
येऽबान्धवा बान्धवा ये येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
वृक्षत्वं च गताः केचित् तृणगुल्मलता स्थिताः ॥
यातनासु च घोरासु जातीषु विविधासु ये ।
नरकेषु च घोरेषु पतिता ये स्वकर्मणा ॥
तेषामुद्धरणार्थाय जलमेतद्ददाम्यहम् ।

आब्रह्मणो ये पितृवंशजाता मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः ।
वंशद्वयेऽस्मिन्मम दासभूता भृत्यास्तथैवाश्रितसेवकाश्च ॥
मित्राणि सख्यः पशवश्च हृष्टा दृष्टाश्च पृष्टाश्च कृतोपकाराः ।
जन्मान्तरे ये मम सङ्गताश्च तेभ्यस्तडागोदकमेतदस्तु ॥

इति । (वापीकूपयोस्तडागपदस्थाने तत्तत्पदप्रक्षेपः) ।

इदं श्लोकतर्पणं बहूनां न सम्मतम् । तर्पणान्ते यजमानः पुच्छलग्न एव—

ॐ आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्वꣳहि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरापूत ऽएमि ॥ इति मन्त्रं पठन् ऐशान्यां स्वयमुत्तीर्य—

ॐ सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥

इति मन्त्रेण(ऋक्सं.अष्ट. २।३।२१)गां जलादुत्तारयेत् ऐशान्याम्। उत्तार्यमाणा यदि गौर्हिंकरोति तदा—

ॐ हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाऽभ्यागात् ॥ दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्ये यं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ इति मन्त्रं (ऋक्सं.अष्ट. २ । ३ । १६) जपेत् । ततो गोपुच्छं त्यक्त्वा धौतवस्त्रे धृत्वा दधिदूर्वागन्धाद्यैस्तां गां "नमो गोभ्य" इति संपूज्य–

वसूनां दुहिताऽसि त्वं संसारार्णवतारिणी ।
तीर्थपुण्योदके स्नाता पावयस्व जलाशयम् ॥
अर्चिताऽसि सुगन्धेन चन्दनेनामरार्चिते ।
सत्कीर्तिं सद्गतिं कर्तुं पावयस्व जलाशयम् ॥
सर्वदेवमयी यस्मात्पूजनीयाऽसि रोहिणी ।
सर्वकामदुघे धेनो सर्वपातकनाशिनी ॥
सर्वाङ्गैः सर्वभावेन पावयस्व जलाशयम् ।
त्वया कृतं पवित्रं तु त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥
अतोऽस्माकमिमं धेनो पावयस्व जलाशयम् ।

इति गां प्रार्थयेत् । ततो गोदेहे गोदानप्रयोगोक्तरीत्या (१०६) ब्रह्मादिदेवानावाह्य संपूज्य तत्रैवोक्तरीत्या उत्सर्गकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं सामगाय अन्यस्मै वा ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे ॐ तत्सन्न ममेति तां गां दद्यात् ।

विप्रस्तु "देवस्यत्वा"इति ॐस्वस्तीति प्रतिगृह्य "कोऽदात्" इति कामस्तुतिं पठेत् ॥

ततो यजमानस्सपरिवारोऽवभृथस्नानं कृत्वा वस्त्रान्तरे परिधाय कुशतिलजलहस्तः देशकालौ सङ्कीर्त्य सर्वपापक्षयपूर्वकरुद्रालयगमनानेककल्पावच्छिन्नस्वर्गलोकसुखपरार्द्धद्वयावच्छिन्नमहस्तपःप्रभृतिलोकाक्रमासहितभोगपूर्वकविष्णुपदप्राप्तिकामः केवलविष्णुपदप्राप्तिकामो वा अमुकजलाशयं वरुणदेवताकं स्नानपानावगाहनाद्यर्थम् अहं सर्वभूते-

भ्य उत्सृजामि ॐतत्सत् न ममेति जलाशयं पश्यञ्जलमुत्सृजेत् ।
ततः—

ॐसर्वभूतेभ्य उत्सृष्टं मयैतज्जलमूर्जितम् ।
रमन्तु सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः ॥
सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्तमिदं जलम् ।
रमन्तु सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः ॥
इति मन्त्रद्वयं पठेत् ॥

(अत्र सर्वभूतान्तर्गतात्मात्मीयपुत्रदाराद्युद्देशेनाप्युत्सर्गात्परस्वत्वापत्त्यभावाद्यागत्वेन परस्वत्वापत्त्यभावाच्च स्वयं पुत्रादेश्च तत्र जलपानादौ न दोषः । प्रपाऽन्नसत्रवदवशिष्टे स्वत्वानपायाच्च)

ततो विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा दिक्पालेभ्यो माषभक्तबलीन्दध्यक्षतबलीन्वा दद्यात् ।

अथ नागयष्टिः ।

आचार्यो भूमौ यवान् क्षिप्त्वा तत्र कलशं संस्थाप्य अभ्यर्च्य आम्रपत्राष्टके अनन्त–वासुकि–तक्षक–कर्कोटक–पद्म–शंख–महापद्म-कुलिशेत्यष्टौ नामानि विलिख्य तानि पत्राणि कुम्भे निधाय एकमाकृष्य तन्नामानं नागं जलाशयमहत्त्वानुसारेण द्वादश—पञ्चदश—विंशत्यन्यतमारत्निमितायां यज्ञियकाष्ठस्थूणायामावाह्य संपूज्य च 'अयं नागोऽस्य जलस्य रक्षकोऽस्तु' इत्युक्त्वा ॐनागयष्ट्यै नमः इति संपूज्य नागयष्टिशीर्षे लौहं चक्रं निखाय संपूज्य प्रार्थयेत्—

ॐ चक्रं सुदर्शनाख्यं त्वं नागदण्डशिरोगतम् ।
तत्र विघ्नस्य कर्तारं जहि दुष्टं हरिप्रिय ॥

इति । ततः सपरिवारो यजमानः यष्टिं स्कन्धे गृहीत्वा वाद्यघोषेण जलाशयं प्रदक्षिणीकृत्य जलान्तर्गतभूमिमध्ये यष्ट्यारोपणार्थं पूर्वमेव कृते अवटे नीलतृण–गोमय–दधि–मधु–अक्षत–कुश–नदी-जलानि पञ्चरत्नानि च क्षिप्त्वा—

ॐध्रुवाऽसि धरुणाऽऽस्तृता विश्वकर्मणा । मा त्वा समुद्रऽउद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह ॥(१३।१६)

इति मन्त्रेण तस्मिन्नवटे नागयष्टिं दृढं निखनेत् । इदं नागयष्टिनिखननं कूपवाप्योर्न भवति ।

अथ यजमानो महानदीजलानि जलाशये क्षिप्त्वा पठेत्—

कुरुक्षेत्रं गया गङ्गा प्रभासः पुष्करं तथा ।
एतानि पञ्चतीर्थानि तडागे [कूपके] निवसन्तु मे ॥
दशार्णा मुरुण्डा सिन्धू रथावर्ता दृषद्वती । एतानि० ।
वितस्ता कौशिकी सिन्धुः सरयूश्च सरस्वती । एतानि० ।
यमुना नर्मदा रेवा चन्द्रभागा च देविका । एतानि० ।
गोमती वाग्मती शोणो गण्डकी सागरस्तथा । एतानि० ।

ततो जलं स्पृष्ट्वा पठेत्—

प्रपद्ये वरुणं देवमम्भसां पतिमूर्जितम् ।
याचितं देहि मे पुण्यं सर्वपापापनुत्तये ॥
सान्निध्यमत्र तोयेऽस्तु तवेश मदनुग्रहात् ।
रुद्रान्प्रपद्ये वरदान्सर्वानप्सुषदस्त्वहम् ॥
शमयन्त्वशुभं पापं रक्षन्तु तेऽप्सु मां सदा ।
आपः पुण्याः पवित्राश्च प्राणिनां प्राणदास्तथा ॥
शमयन्त्वाशु मे पापं तस्माद्रक्षन्तु सर्वदा । इति ।

ततः अक्षतैः जलमातृः ॐ ह्रियै नमः, ॐ श्रियै० ॐ शच्यै० ॐ मेधायै० ॐ विश्वायै० ॐ लक्ष्म्यै० इति आवाह्य "एतं ते" इति प्रतिष्ठाप्य सम्पूज्य गीतवाद्यादिघोषे जायमाने आपोहिष्ठेति सूक्तं पठन्नविच्छिन्नगोदुग्धधारया सिञ्चन् जलाशयं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य शेषं दुग्धं कंचिद्विप्रं यथेष्टं प्राशयेत् ॥

ततः उत्सर्गोत्तरं त्रीणि दिनानि स्थापितदेवतानां पञ्चोपचारैः पूजनं, पूर्वोक्तं ग्रहादिहोमं च प्रत्यहम् आचार्यादयः कुर्युः । चतुर्थदिने होमोत्तरं ब्रह्मणे हविरुच्छिष्टपूर्णपात्रं सहिरण्यं दद्याद्यजमानः । तत आचार्यः यजमानान्वारब्धः "मूर्धानं दिव" इति पूर्णाहुतिं जुहुयात् ।

अयं च मुख्यः पक्षः । तदसंभवे तु उत्सर्गदिने एव दुग्धप्राश-नान्ते यजमानेन पूर्णपात्रं दापयित्वा पूर्णाहुतिमाचार्यः कुर्यात् ।

ततः—"अर्धं शतं, शतं वाऽपि, विंशं, वाऽष्टोत्तरं शतम् ।
गोसहस्रं शतं वाऽपि, शतार्धं वा प्रदीयते ॥
अलाभे चैव गां दद्यादेकामपि पयस्विनीम्" ।

इति पारस्करगृह्यपरिशिष्टकण्डिकाभाष्ये पराशरस्मृतेः आर्थक्र-मानुरोधेन सति सम्भवे गवामेकादश शतानि, तदसम्भवे सार्द्धं शतं, तदसम्भवेऽष्टोत्तरं शतं, तदसम्भवे शतं, तदसम्भवे पञ्चाशतं, तदसम्भवे विंशतिं, तदसम्भवे एकां गां 'कृतस्यामुकजलाशयस्योत्सर्गकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्संपूर्णफलप्राप्त्यर्थं चेदं वस्त्रचतुष्टयं वस्त्रद्वयं वा बृहस्पतिदैवत्यम् इमां रुद्रदेवत्यां धेनुं सति संभवे कर्णवेष्टकौ च दक्षि-णामाचार्याय तुभ्यमहं सम्प्रददे ॐतत्सन्न मम' इति आचार्याय यज-मानो दद्यात् । अनेन कर्मणा श्रीकर्माङ्गदेवताः प्रीयन्तामिति वदेत् । ततः—

शरण्यं सर्वलोकानां लज्जाया रक्षणं परम् ।
सुवेषकारि त्वं यस्माद्वासः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
धेनो त्वं पृथिवी सर्वा यस्मात्केशवसन्निभा ।
सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति दानमन्त्रौ पठेत् । आचार्यश्च प्रतिग्रहविधिना प्रतिगृह्णीयात् । ततः कृतैतदमुकजलाशयोत्सर्गकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थमिमां दक्षिणामाचार्यादिभ्य ऋत्विग्भ्यो जापकेभ्यो द्वारपालेभ्यश्च यथांशं विभज्य संप्रददे ॐ तत्सन्न ममेति संकल्प्य दद्यात् । उत्तराङ्गत्वेन वन्हिं संपूज्य भस्मना त्र्यायुषकरणमात्मनो यजमानस्य च कुर्यात् । यजमानोऽङ्गाप्यायनादिकं च कुर्यात् ।

(१)अथ चतुर्थीकर्म ।

उत्सर्गदिनाच्चतुर्थे, द्वितीये, तस्मिन्नेव दिने वा यजमानानु-

(१) कल्पतरौ भविष्ये—अतः परं चतुर्थेऽह्नि द्वितीये वा समाहितः ।

ज्ञात आचार्योऽमुकजलाशयोत्सर्गाङ्गभूतं चतुर्थीकर्म करिष्ये इति संकल्प्य "यद्देवादेवहेडनम्" इति भूमिं प्रोक्ष्य पञ्चभूसंस्कारपूर्वकम् अग्निं प्रतिष्ठाप्य ब्रह्माणं हृत्वा दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य तत्र ब्रह्माणमुपवेश्य प्रणीतापात्रमुत्तरतो निधायैशान्यां कुम्भं संस्थाप्य तत्र वरुणं संपूज्य परिस्तरणादिपर्युक्षणान्तं कृत्वा प्रोक्षणीपात्रं प्रणीताग्न्योर्मध्ये निदध्यात् । ततो यजमानो द्रव्यदेवताभिध्यानपूर्वकं द्रव्यत्यागं कुर्यात् । अद्येह चतुर्थीकर्मणा यक्ष्ये । तत्र प्रजापतिम् इन्द्रम् अग्निं सोमं सवितारं वरुणम् अग्निं वायुं सूर्यम् अग्नीवरुणौ अग्नीवरुणौ अग्निं वरुणं सवितारं विष्णुंविश्वान् देवान् मरुतः स्वर्कान् वरुणं प्रजापतिम् अग्निं स्विष्टकृतं चाज्येनाहं यक्ष्ये । एतद्धोमद्रव्यं तत्तद्देवताभ्यो मया परित्यक्तं ॐ तत्सत् यथादैवतमस्तु न ममेति । तत आचार्यो वरुणनामानमग्निं प्रतिष्ठाप्य संपूज्य ब्रह्मणाऽन्वारब्धः आघारावाज्यभागौ च हुत्वा प्रणवादिना हुंफट्कारान्तेन इमंमेवरुणेति मन्त्रेण तोयमभिमन्त्र्य तेनैनमग्निमभ्युक्ष्य गायत्र्या सवित्रे पञ्चदशाज्याहुतीर्हुत्वा इमंमेवरुणेति मन्त्रेण वरुणाय शतमाज्याहुतीर्जुहुयात् । ततो भूरादिहोमं स्विष्टकृदन्तं कुर्यात् ।

अथ दानदर्पणोक्तं वरुणस्य महास्नानम् ।

तत्रादौ दध्यक्षतकुशाग्रक्षीरदूर्वामधुयवसर्षपफलयुतमर्घ्यं ताम्रपात्रेण वरुणाय दत्त्वा नवस्वक्षतपुञ्जोपरि स्थापितेषु कुम्भेषु गजाश्वस्थानरथ्यावल्मीकवराहोत्खाताग्न्यगारतीर्थह्रदसङ्गमगोष्ठानां मृदः क्षिप्त्वा शंनोदेवीरिति जलेन कुम्भानापूर्य आपोहिष्ठेत्यादिभिर्ऋग्भिर्वेद्यामधिवासितं वरुणं स्नापयेत् । ततो गायत्र्या गोमूत्रं गन्ध-

---

तस्मिन् वाऽह्नयनुद्विग्नश्चतुर्थीहोममाचरेत् ॥ कृत्वाऽग्निस्थापनं मौनी पर्युक्ष्य जुहुयात्ततः । त्रिभिर्व्याहृतिभिः पूर्वं हुत्वाऽग्निं मनसा सकृत् ॥ हुंफट्कारान्तजप्तेन तोयेनाभ्युक्ष्य पावकम् । आहुतीः पञ्च गायत्र्या जुहुयात् पञ्च पञ्च च ॥ एकैकां पञ्चभिर्दद्यात् सकृद् व्याहृतिभिः पुनः । पूर्णाहुतिं शिवेनैकां दत्त्वोपरि यथाविधि ॥ कृतकृत्योऽग्निमभ्यर्च्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् । इति ।

द्वारेति गोमयम् "आप्यायस्वे"ति क्षीरं "दधिक्राव्ण" इति दधि "तेजोऽसि"इति आज्यं "देवस्यत्वा" इति कुशोदकं चैकीकृत्य वरुणमभिषिञ्चेत् ।

ततः "पयःपृथिव्याम्" इति पयसा "दधिक्राव्ण" इति दध्ना "तेजोऽसि" इति घृतेन "मधुवाता" इति त्रयेण मधुना "आप्यायस्व" इति शर्करया "सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामि" इति पुष्पोदकेन ।

ॐ हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवीऽअन्तरीयते ॥ अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ (य० सं० अ० ३४ । २५)

इत्यनेन रत्नोदकेन ।

"देवस्यत्वा" इति कुशोदकेन ।

ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ इति फलोदकेन ।

सावित्र्या गन्धतोयेन स्नापयेत् ।

ततो घटानां सहस्रेण पञ्चशत्या सार्द्धद्विशत्या अष्टोत्तरशतेन चतुःषष्ट्या द्वात्रिंशता षोडशकेन चतुष्टयेन वा शक्त्या स्नपयेत् । घटाश्च शक्तिमनुसृत्य सुवर्ण–रजत–कांस्य–ताम्र–पैत्तल–मृन्मयान्यतमा ग्राह्याः । ततः सहदेव्यादिमहौषधियुतजलकलशेन स्नपयेत् । ततो यवगोधूमनीवारतिलश्यामाकशालिप्रियङ्गुव्रीहिबीजाष्टकयुतकलशेन स्नपयेत् । ततो वरुणं नीराज्य वस्त्रगन्धादिना संपूज्य—

त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विद्युदग्निस्तथैव च ।
त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति चत्वारिंशद्दीपान् दत्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य धूपदीपनैवेद्यानि दद्यात्(१) । ततः संस्रवप्राशनं पवित्रप्रतिपत्तिं प्रणीताविमोकं च कुर्यात् । यजमानो ब्रह्मणे सहिरण्यं पूर्णपात्रं दद्यात् ।

---

(१) महास्नानानन्तरं च वैवाहिकविधिप्रकार उक्तः—
भविष्ये मत्स्यपर्वणि द्वितीयभागे अध्याये २० ।

तत आचार्यो "मूर्द्धानं दिव" इति पूर्णाहुतिं कृत्वाऽग्निमुत्तराङ्गत्वेन संपूज्य त्र्यायुषकरणादिकं कृत्वा अग्निं विसृजेत्।

ततो यजमान आचार्यादिभ्यो गोसुवर्णादिदक्षिणां दद्यात्। ततः वेदिकुण्डसमीपस्थितकलशोदकैर्दूर्वापल्लवयुतैर्यजमानमाचार्यादयोऽभिषिञ्चेयुः। अभिषिक्तो यजमानो वेद्यामधिवासितान्ग्रहादीनुत्तराङ्गत्वेन संपूज्य विसृज्य ग्रहप्रतिमादिकमाचार्याय दत्त्वाऽन्ययज्ञोपकरणमाचार्यर्त्विग्भ्यो विभज्य दत्त्वा हेमपात्रीं सति संभवे शय्यादानविधिना शय्यां च आचार्याय दद्यात्। नवग्रहप्रीतये दक्षिणां ज्योतिर्विदे दद्यात्। ततोऽमुकजलाशयोत्सर्गकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं सहस्रम् अष्टोत्तरशतं पञ्चाशतम् विंशतिं वा ब्राह्मणान् भोजयिष्ये इति संकल्प्य यथाकालं यथोपपन्नेनान्नेन तान्भोजयेत्। न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थमिमां भूयसीं दक्षिणां नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽन्येभ्यश्च दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातुमहमुत्सृजामि ॐतत्सन्न मम इति संकल्प्य यथाशक्ति भूयसीं दद्यात्। घृते छायामवलोकयेत्। तद्घृतं ब्राह्मणाय दद्यात्। ब्राह्मणाश्च सपरिवारस्य यजमानस्य रक्षाबन्धनं तिलकं च कृत्वा आशीर्वादं दद्युः।

यजमानः "यस्यस्मृत्या" "कायेन वाचा" "प्रमादात्कुर्वतां कर्म" इति कर्म ईश्वरार्पणं कृत्वा भुञ्जीत।

इति मात्स्यानुसारी जलाशयोत्सर्गप्रयोगः।

ततः सुशोभने स्थाने मह्यं निर्माय देशिकः। वरुणं विन्यसेत्तत्र तथा पुष्करिणीमपि॥ विवाहोक्तेन विधिना कुर्यान्निर्मन्थनादिकम्। गन्धपुष्पं ततो दद्याद्गां च दद्यात् सदक्षिणाम्॥ चामरं व्यजनं छत्रं कांस्यं लोहं तथैव च। कुर्यात्पुष्करिणीं रम्यां राजतीं च त्रिपादिकाम्॥ चतुष्कोणां च सुषमां द्व्यङ्गुष्ठपरिमण्डलाम्। सुवर्णप्रतिमां कुर्यात्पलेनैकेन भो द्विजाः॥ अथवा स्वर्णपत्रे च कुङ्कुमेन तले लिखेत्। बाणरक्तिप्रमाणेन स्वर्णपत्रं तु द्व्यङ्गुलम्॥ कारयेच्चतुरस्रं च पीठोपरि न्यसेद् बुधः। नीराजनान्ते विप्रेन्द्राः संस्मरेद्वनृतं तरेत्॥ अशक्तस्तु तथैवैककाष्ठे वा पिप्पलच्छदे। ताम्रपट्टे लिखेद्वाऽपि अलक्तेन यथाविधि॥ प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्तु वरुणाय निवेदयेत्। इति।

अयं च प्रकारः कैश्चिदनुष्ठीयते न सर्वैरद्यत्वे इति बोध्यम्।

महास्नानप्रकारश्च कल्पतरौ भविष्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि देवस्नपनमुत्तमम् ।
दध्यक्षतकुशाग्राणि क्षीरं दूर्वास्तथा मधु ॥
यवास्सिद्धार्थकास्तद्वदर्घोऽष्टाङ्गः फलैः सह ।
गजाश्वरथ्यावल्मीकवराहोत्खातसंगमात् ॥
अग्न्यगाराच्चथा तीर्थाद्व ह्रदाद्गोमण्डलादपि ।
कुम्भेषु मृत्तिकां दद्यादुद्धृतासीऽति मन्त्रवित् ॥
शन्नोदेवीत्यपो दद्यात् आपाहिष्ठेति वा ततः ।
सावित्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ॥
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ।
तेजोऽसीति घृतं तद्वद्व देवस्यत्वेति चोदकम् ॥
कुशमिश्रं क्षिपेद्व विद्वान्पञ्चगव्यं भवेत्ततः ।
स्नाप्याथ पञ्चगव्येन दध्ना शुद्धेन वै ततः ॥
दधिक्राव्णेति मन्त्रेण कर्तव्यमभिमन्त्रणम् ।
आप्यायस्वेति पयसा तेजोऽसीति घृतेन च ॥
मधुवातेति मधुना ततः पुष्पोदकेन तु ।
सरस्वत्यैभैषज्येन कार्यं तस्याभिमन्त्रणम् ॥
हिरण्याद्येति मन्त्रेण स्नापयेद्रत्नवारिणा ।
कुशोदकैस्ततः स्नानं देवस्यत्वेति कारयेत् ॥
फलोदकेन च स्नानमग्नेआयाहि कारयेत् ।
ततस्तु गन्धतोयेन सावित्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥
ततो घटसहस्रेण सहस्रार्द्धेन वा पुनः ।
तस्याप्यर्द्धेन वा कुर्यात् अथवाऽष्टशतेन च ॥
चतुःषष्ट्या तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ।
चतुर्भिरथवा कुर्याद्धटानामल्पवित्तवान् ॥
सौवर्णै राजतैर्वाऽपि ताम्रैर्वा रीतिकोद्भवैः ।
कांस्यैर्वा पार्थिवैर्वाऽपि स्नपनं शक्तितो भवेत् ॥
सहदेवी वचा व्याघ्री बला चातिबला तथा ।

शङ्खपुष्पी तथा सिंही ह्यष्टमी च सुवर्चला ॥
महौषध्यष्टकं चैतन्महास्नानेषु योजयेत् ।
यवगोधूमनीवारतिलाः श्यामाकशालयः ॥
प्रियङ्गवो व्रीहयश्च स्नानेषु परिकल्पिताः ।
स्वस्तिकं पद्मं शङ्खश्च उत्पलं कमलं तथा ॥
श्रीवत्सं दर्पणं तद्वन्नन्द्यावर्तमथाष्टमम् ।
एतानि गोमयैः कुर्यान्मृदा वा शुभया तथा ॥
पञ्चवर्णौदनं तद्वत्पञ्चवर्णरजस्तथा ।
दूर्वाकृष्णवलिस्तद्वन्नीराजनविधिस्तथा ॥
ततो वस्त्रयुगं दद्यान्मन्त्रेणानेन यत्नतः ।
देवसूत्रसमायुक्ते यज्ञदामसमन्विते ॥
सर्वकर्मशुभे देव वाससी तव निर्मिते ।
मन्त्रेण चन्दनं दद्यात्समं कर्पूरकुङ्कुमैः ॥
शरीरं ते न जानामि रूपं नैव च नैव च ।
मया निवेदितान्गन्धान्प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ॥
चत्वारिंशत्ततो दीपान्दद्याच्चैव प्रदक्षिणम् ।
त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विद्युदग्निस्तथैव च ॥
त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।
ततस्त्वन्नमयान्दद्यान्महाभूपाय ते नमः ॥
अनेन विधिना कृत्वा सप्तरात्रं महोत्सवम् ।
देवकुम्भैस्ततः कुर्याद्यजमानाभिषेचनम् ॥
चतुर्भिरष्टभिर्वाऽपि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः ।
सपञ्चरत्नकनकसितवस्त्राभिवेष्टितैः ॥
देवस्यत्वेतिमन्त्रेण साम्ना चाथर्वणेन च ।
अभिषेके च ये मन्त्रा नवग्रहमखे स्थिताः ॥
सिताम्बरधरः स्नात्वा देवान्संपूज्य यत्नतः ।
स्थापकं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालंकारभूषणैः ॥
यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि मण्डपोपस्करादिकम् ।

यच्चास्य वित्तं गेहे तदाचार्याय प्रदापयेत् ॥ इति ।

अथ लघुजलाशयोत्सर्गविधिः ।

तत्प्रकारश्च भविष्ये मध्यपर्वणि तृतीयभागे १३ अध्याये उक्तः—

मण्डपे क्षुद्रकूपे च प्रतिष्ठां शृणुत द्विजाः ।
गणेशं वरुणं कुम्भे विधिवत्पूजयेत्सुधीः ॥
वेष्टयेद्रक्तसूत्रैश्च ततः कूपं समुत्सृजेत् ।
दक्षिणां विधिवद्द दद्यात् विप्रान् संपूजयेत्ततः ॥ इति ।

अथ प्रयोगः—पूर्वदिने कृतनियमो ज्यौतिषिकोक्ते दिने यजमानः जलाशयस्य पूर्वत उत्तरत ईशाने वा गोमयादिनोपलिप्य गङ्गादिजलेन पञ्चगव्येन वा प्रोक्ष्य सुसंपन्ने स्थले आसने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य शान्तिपाठं कृत्वा निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशं संपूज्य देशकालौ संकीर्त्य अमुकशर्माऽहं पापक्षयकामः, स्वर्गकामो, मोक्षकामो वा जलाशयोत्सर्गं करिष्ये इति प्रधानसंकल्पं कृत्वा तत्पूर्वाङ्गत्वेन मातृपूजनं नान्दीश्राद्धं पुण्याहवाचनं कलशे वरुणपूजनपूर्वकं ग्रहपूजनं च करिष्ये इति संकल्प्य पुण्याहवाचनान्तं कृत्वा ईशानप्रदेशे कलशविधिना कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणं ग्रहांश्च यथाविधि संपूज्य रक्षासूत्रमभिमन्त्र्य कलशे संस्थाप्य रक्तवर्णया त्रिसूत्र्या जलाशयं प्रदक्षिणं परिवेष्ट्य कुशादिकं हस्ते गृहीत्वा देशकालौ संकीर्त्य पूर्वोक्तपापक्षयाद्यन्यतमकामः इमं जलाशयं वरुणदेवताकं सर्वभूतेभ्यः स्नानपानाद्यर्थमहमुत्सृजामि ॐ तत्सन्न मम(१) इति जलाशयं पश्यन् जलमुत्सृजेत् । ततः "सर्वभूतेभ्य उत्सृष्टम्" (३५७ पृ०) मन्त्रद्वयं पठेत् ।

ततः सति संभवे महानदीजलानि जलाशये क्षिप्त्वा "कुरुक्षेत्रं गया गङ्गा" [३५६] इत्यादीन् पञ्च पठेत् । ततो जलाशयस्थजलं स्पृष्ट्वा "प्रपद्ये वरुणं देवम्" (३५६) इत्यादीन् पठेत् । ततस्तत्रैवोक्तरीत्या जलमातॄः पूजयित्वा गीतवाद्यादिघोषे जायमाने आपोहि-

(१) नममेत्यनेन असाधारणस्वत्वत्यागेऽपि साधारणस्वत्वानपायान्न तज्जलपाने यजमानस्य दोष इति बोध्यम् ।

ष्ठेति ऋक्त्रयं पठन् अविच्छिन्नगोदुग्धधारया सिञ्चन् जलाशयं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य शेषं दुग्धं कंचिद्विप्रं यथेष्टं प्राशयेत् ।

ततः उत्सर्गकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं स्वपुरोहिताय अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां संप्रददे इति संकल्प्य ब्राह्मणान् संपूज्य दद्यात् । यथाशक्ति भूयसीं च न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं दद्यात् । ब्राह्मणाश्च यजमानस्य हस्ते रक्षासूत्रं बध्वा तिलकं कृत्वा आशीर्वादं दद्युः । ततः त्रीन् ब्राह्मणान् एकं वा संभोज्य स्वयं भुञ्जीत ।

इति लघुजलाशयोत्सर्गप्रयोगः ।

ग्रहमुन्यङ्कभूवर्षे आश्विने धवले दले ।
महाष्टम्यां समाप्तोऽभूत् परिशिष्टप्रदीपकः ॥
नित्यानन्दः पर्वतीयः श्रीपन्तकुलपूजकः ।
काश्यां वसन् ग्रन्थमेनं गुरुं ध्यायन् समग्रहीत् ॥
गुरुप्रसादाद्ग्रन्थोऽयं गुरुपादार्पिततत्त्वतः ।
निर्मत्सराणां विदुषां भूयान्मोदाय सर्वदा ॥

इति शम् ।

इति परिशिष्टदीपकः समाप्तः ।

सं० १९७९ आश्विने शु० ८ गुरौ ।

विषयाः	पृ. सं.
पूर्वोक्तचतुर्णां चिकित्सा	५६८
कच्छपिकालक्षणम्	५६९
,, चिकित्सा	,,
शर्करार्बुदलक्षणम्	,,
,, चिकित्सा	,,
सहेतुलक्षणालस्यादिक्षुद्रविकाराः	,,

शिरोरोगाधिकारः ॥ ६२ ॥

शिरोरोगस्य निदानं संख्या च	५७०
वातजशिरोरोगलक्षणम्	,,
पित्तज ,,	,,
कफज ,,	५७१
सन्निपातज ,,	,,
रुधिरजन्य ,,	,,
रसादिधातुक्षयजस्य ,,	,,
कृमिज ,,	,,
सूर्यावर्त्तलक्षणम्	,,
अनन्तवात ,,	,,
शङ्खक ,,	,,
अर्द्धावभेदकस्य निदानं लक्षणञ्च	,,
शिरोरोगचिकित्सा	५७४
शिरोवस्तिविधिः	,,
षड्बिन्दुतैलम्	५७६
कुमारी ,,	,,
पथ्याऽऽदिक्वाथः	५७७
सर्वशिरोरोगाणां सामान्यचिकित्सा	,,

नेत्ररोगाधिकारः ॥ ६३ ॥

नेत्रस्य प्रमाणम्	५७७
नेत्रस्याङ्गानि	,,
नेत्रमण्डलोत्पन्नाष्टसप्ततिरोगाः	५७८
सुश्रुतोक्तषट्सप्ततिसंख्या	,,
नेत्ररोगसम्प्राप्तिः	५७९
आदौ दृष्टिरोगाः	,,
तत्र नेत्रदृष्टिलक्षणम्	,,
तत्र चत्वारि पटलानि	,,
प्रथमपटलगतदोषस्वभावः	५८०
द्वितीय ,,	,,
तृतीय ,,	,,
चतुर्थ ,,	५८१
दृष्टिरोगाणां नामानि संख्या च	५८३
वातजलिङ्गनाशस्य लक्षणम्	,,
पित्तज ,,	,,
सन्निपातजलिङ्गनाशस्य लक्षणम्	५८३
रक्तजन्य ,,	५८४
परिम्लायि ,,	,,
वातादिजनेत्रवर्णेन लिङ्गनाशस्य षड्विधत्वम्	५८५
वातादिजनिते रोगे नेत्रमण्डलस्य रूपविशेषः	,,
लिङ्गनाशेऽनुक्तदाहादिदोषलिङ्गम्	,,
पित्तविदग्धदृष्टिलक्षणम्	,,
कफ ,,	५८६
धूमदर्शिलक्षणम्	,,
ह्रस्वजात्य ,,	,,
नकुलान्ध्य ,,	५८७
गम्भीरिका ,,	,,
सनिमित्तलिङ्गनाशस्य निदानं लक्षणञ्च	,,
अनिमित्त ,, ,, ,,	,,

अथ कृष्णमण्डलजा रोगाः ।

तेषां नामानि संख्या च	५८८
सव्रणशुक्ललक्षणम्	,,
सव्रणशुक्लस्य साध्यासाध्यलक्षणानि	,,
अव्रणशुक्ललक्षणम्	५९०
अव्रणशुक्लस्य साध्यत्वेऽप्यवस्थाभेदेन कष्टसाध्यता	,,
अव्रणशुक्लस्यासाध्यता	,,
अव्रणशुक्लस्यापरमप्यसाध्यलक्षणम्	५९१
अक्षिपाकात्यय ,,	,,
अजकाजात ,,	५९२
नेत्रशुक्लभागजा रोगास्तेषां नामानि संख्या च	,,
प्रस्तार्यर्मलक्षणम्	,,
शुक्लार्म ,,	,,
रक्तार्म ,,	५९३
अधिमांसार्म ,,	,,
स्नाय्वर्म ,,	,,
शुक्ति ,,	,,
अर्जुन ,,	,,
पिष्टक ,,	,,
शिराजाल ,,	,,
शिराजपिडकालक्षणम्	५९४
बलासग्रथित ,,	,,

वर्त्मजा रोगाः ।

विषयाः	पृ० सं०
उत्सङ्गिनीलक्षणम्	५९५
कुम्भीका ,,	,,
पोथकी ,,	५९६
वर्त्मशर्करा ,,	,,
अर्शोवर्त्म ,,	५९७
शुष्कार्शो ,,	,,
अञ्जनदूषिका ,,	,,
बहलवर्त्म ,,	,,
वर्त्मबन्धक ,,	५९७
क्लिष्टवर्त्म ,,	,,
वर्त्मकर्दम ,,	५९८
श्याववर्त्म ,,	,,
प्रक्लिन्नवर्त्म ,,	,,
अक्लिन्नवर्त्म ,,	,,
वातहतवर्त्म ,,	,,
वर्त्मार्बुद ,,	५९९
निमेष ,,	,,
शोणितार्शो ,,	,,
लगण ,,	,,
बिसवर्त्म ,,	,,
कुञ्चन ,,	,,

पक्ष्मरोगाः ।

तत्रस्थयो रोगयोर्नामनी	,,
पक्ष्मकोपलक्षणम्	,,
अन्यग्रन्थोक्तपक्ष्मकोपलक्षणम्	६०१
पक्ष्मशातलक्षणम्	,,

सन्धिजा रोगाः ।

सन्धयः	६०१
तत्रस्थानां रोगाणां संख्या	,,
पूयालसलक्षणम्	६०२
उपनाह ,,	,,
स्रावाणां सम्प्राप्तिः	,,
पित्तजस्रावलक्षणम्	,,
कफजस्राव ,,	,,
सन्निपातजस्राव ,,	,,
रुधिरजन्यस्राव ,,	६०३
पर्वण्यलजयोः ,,	,,
जन्तुग्रन्थि ,,	६०४

समस्तनेत्रजा रोगाः ।

तेषां नामानि संख्या च	६०४
चत्वार्यभिष्यन्दनामानि	,,
वाताभिष्यन्दलक्षणम्	,,

विषयाः	पृ० सं०
कफाभिष्यन्द लक्षणम्	६०५
रक्ताभिष्यन्द ,,	,,
अधिमन्थानामभिष्यन्दजत्वकथनम्	,,
अधिमन्थानां लक्षणानि	,,
सशोथशोथहीनाक्षिपाकयोर्लक्षणम्	६०६
हताधिमन्थलक्षणम्	,,
वातपर्यय ,,	६०७
शुष्काक्षिपाक ,,	,,
अन्यतोवात ,,	६०८
अम्लाध्युषित ,,	,,
शिरोत्पात ,,	,,
शिराहर्ष ,,	६०९
नेत्रस्य सामता ,,	[illegible]
नेत्रस्य निरामता ,,	,,
नेत्ररोगस्य चिकित्सा	६१२
नेत्ररोगिणां हिताहितपदार्थाः	६१३
सेकविधिः	,,
आश्च्योतनविधिः	६१४
पिण्डीविधिः	६१५
बिडालकविधिः	,,
मुखलेपो यथा	,,
तर्पणविधिः	६१६
तर्पणनिषेधविषयाः	६१७
पुटपाकविधिः	,,
अञ्जनविधिः	,,
दृष्टिप्रसादनी शलाका	६१८
अञ्जनकरणविधिः	,,
अञ्जने निषेधविषयाः	,,
स्नेहनी वर्तिका	,,
रोपणी वटी	६१९
लेखनी चन्द्रोदया वटी	,,
पुष्पहरीवर्त्तिः	,,
स्नेहनी रसक्रिया	,,
रोपणी ,,	,,
लेखनी ,,	,,
स्नेहनं चूर्णम्	६२०
रोपणं ,,	,,
लेखनं ,,	,,

अथ सामान्याञ्जनानि ।

तत्र मुक्ताऽऽदिमहाञ्जनम्	६२०
नयनशाणाञ्जनम्	६२१
चन्द्रोदया वटी	,,

विषयाः	पृ० सं०
कर्णामरिचयोः प्रयोगः	६२१
महात्रिफलाऽऽद्यं घृतम्	,,
द्वितीयं त्रिफलाऽऽद्यं घृतम्	६२२
वासकादिक्काथः	,,
कर्णरोगाधिकारः ॥ ६४ ॥	
कर्णरोगाणां नामानि संख्या च	६२३
कर्णशूलस्य सम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणम्	,,
कर्णशूलस्योपद्रवास्तदसाध्यता च	६२४
कर्णनादलक्षणम्	,,
बाधिर्यं ,,	६२५
बाधिर्यासाध्यता	६२६
कर्णक्ष्वेडलक्षणम्	,,
कर्णस्राव ,,	६२७
कर्णकण्डू ,,	६२८
कर्णगूथ ,,	,,
कर्णप्रतिनाह,,	६२९
कृमिकर्णक ,,	,,
पतङ्गादिषु कर्णप्रविष्टेषु लक्षणम्	,,
द्विविधकर्णविद्रधि ,,	,,
कर्णपाक ,,	६३०
पूतिकर्णक ,,	,,
कर्णशोथकर्णार्बुदकर्णार्शोलक्षणानि	,,
कर्णरोग चतुष्टयम् ।	
वातजकर्णरोगलक्षणम्	६३१
पित्तजकर्णरोगलक्षणम्	,,
कफजकर्णरोगलक्षणम्	६३३
सन्निपातजकर्णरोगलक्षणम्	६३४
कर्णपालीरोगाः ।	
सनिदानं परिपोटकलक्षणम्	६३४
उत्पातलक्षणम्	६३५
उन्मन्थकलक्षणम्	,,
दुःखवर्द्धनलक्षणम्	,,
परिलेहिलक्षणम्	,,
कर्णरोगचिकित्सा	,,
बिल्वतैलम्	६३६
कुष्ठादितैलम्	,,
कर्णपालीरोगचिकित्सा	
शतावरीतैलम्	,,
...रोगाधिकारः ॥ ६५ ॥	
...न संख्या च	६३८
...	,,
नासापाक लक्षणम्	६३९
पूयरक्त ,,	६४२
दोषजक्षवथु,,	,,
आगन्तुजक्षवथुलक्षणम्	,,
भ्रंशथुलक्षणम्	,,
दीप्ति ,,	६४३
प्रतीनाहलक्षणम्	६४४
स्रावलक्षणम्	,,
नासाशोषलक्षणम्	६४६
प्रतिश्यायस्य सद्योजनकनिदानपूर्विका सम्प्राप्तिः	६४६
प्रतिश्यायस्य चयादिक्रमजनकनिदानपूर्विका सम्प्राप्तिः	,,
प्रतिश्यायपूर्वरूपम्	६४७
वातजप्रतिश्यायलक्षणम्	,,
पित्तजप्रतिश्यायलक्षणम्	,,
कफजप्रतिश्यायलक्षणम्	,,
त्रिदोषजप्रतिश्यायलक्षणम्	६४८
दुष्टप्रतिश्यायलक्षणम्	,,
रक्तजप्रतिश्यायलक्षणम्	
चिकित्सामन्तरेण सर्वे प्रतिश्यायाः कालान्तरेणासाध्याः	,,
प्रतिश्यायदुष्टौ कृम्युत्पत्तिस्तल्लक्षणञ्च	,,
वृद्धानां प्रतिश्यायानामपरविकारकारकत्वम्	६४९
चतुस्त्रिंशत्संख्या पूरणाय कथनम्	,,
चिकित्साभेदादामपीनसलक्षणम्	६५१
पक्वपीनसलक्षणम्	,,
नासारोगचिकित्सा	,,
व्योषादिवटिका	,,
व्याघ्रीतैलम्	,,
शिग्रुतैलम्	,,
मुखरोगाधिकारः ॥ ६६ ॥	
मुखस्य स्वरूपम्	६५३
मुखरोगसंख्या	,,
मुखरोगनिदानम्	,
ओष्ठरोगाणां निदानपूर्विका संख्या	,,
वातजौष्ठरोगलक्षणम्	,,
पित्तजौष्ठरोगलक्षणम्	६५४
कफजौष्ठरोगलक्षणम्	,,
त्रिदोषजौष्ठरोगलक्षणम्	,,
रक्तजौष्ठरोगलक्षणम्	

अस्मत्प्रकाशित-धर्मशास्त्र-कर्मकाण्ड-ग्रन्थाः—

१ अग्निष्टोमपद्धतिः। "आध्वर्यवपद्धतिः" "औद्गात्रपद्धतिः"-"हौत्रपद्धतिश्च"-सन्निविष्टाः १-३ खण्ड ४॥)
२ अष्टादशस्मृतिः। मूल। अङ्गिरादि अष्टादश स्मृतिसंग्रहरूपो ग्रन्थः १॥)
३ आपस्तम्बगृह्यसूत्रम्। अनाकुला-तात्पर्यदर्शन-व्याख्याद्वययुतं ७)
४ आपस्तम्बधर्मसूत्रम्। उज्ज्वलावृत्ति सहितम् ७)
५ कात्यायनश्रौतसूत्रम्-कर्कभाष्य सहितम्। सम्पूर्णम् १३)
६ कृत्यसारसमुच्चयः। गङ्गाधरमिश्रकृत टिप्पणीपरिशिष्ट युतः ३॥)
७ गोभिलगृह्यसूत्रम्। मुकुन्दशर्मकृत "मृदुला" व्याख्या युतम् ३॥)
८ तिथिनिर्णयः। भट्टोजिदीक्षितकृतः, नागोजिभट्टकृतश्च १॥)
९ निर्णयसिन्धुः। कृष्णंभट्टकृत व्याख्या सहितः २२)
१० पारस्करगृह्यसूत्रम्-मूल टिप्पणी युक्तम्। ॥=)
११ पारस्करगृह्यसूत्रम्। हरिहर-गदाधर-जयरामभाष्यत्रय युतं ६)
१२ पौरोहित्यकर्मसारः। परिवर्द्धित संस्करणः। संपूर्णः १॥)
१३ बौधायनधर्मसूत्रम्। श्रीगोविन्दस्वामिप्रणीतविवरणसमेतम् ७)
१४ याज्ञवल्क्यस्मृतिः। 'वीरमित्रोदय' 'मिताक्षरा' व्याख्या द्वयोपेता ८)
१५ याज्ञवल्क्यस्मृतिः। 'बालम्भट्टी' 'मिताक्षरा' टीकाद्वय सहिता व्यवहाराध्यायः १६॥)
१६ लाट्यायनश्रौतसूत्रम्। अग्निष्टोमान्तम्। सटीकम् २॥)
१७ वर्षकृत्यदीपकः। म० म० श्रीनित्यानन्दपन्त पर्वतीयकृतः ७)
१८ वास्तुपूजापद्धतिः। गृध्रादिपतनशान्तिपद्धतिः-गृहप्रवेश-पद्धतिश्च सहिता ।=)
१९ वीरमित्रोदयः। म० म० मित्रमिश्रविरचितः। परिभाषाप्रकाशः-संस्कारप्रकाशश्च १६॥) आह्निकप्रकाशः ६) पूजाप्रकाशः ६) लक्षणप्रकाशः १०॥) राजनीतिप्रकाशः ७॥) तीर्थप्रकाशः ६) व्यवहारप्रकाशः ६) श्राद्धप्रकाशः ६) समयप्रकाशः ४॥) भक्तिप्रकाशः ३) शुद्धिप्रकाशः ४॥) संपूर्ण ८५॥)
२० व्रात्यताप्रायश्चित्तनिर्णयः तथा-[illegible]
२१ श्राद्धकल्पलता। श्रीनन्दपण्डितकृता [illegible]
२२ श्राद्धपद्धतिः। म० म० वाचस्पति [illegible]
२३ श्राद्धचन्द्रिका। भारद्वाज दिवाकरभ[illegible]
२४ श्रौतसूत्रम्। कात्यायनप्रणीतं देवया[illegible]
२५ षडशीतिः। शुद्धिचन्द्रिका व्याख्यया समलङ्कृता २)
२६ संस्कारगणपतिः। पारस्करगृह्यसूत्रस्यातिविस्तृतव्याख्यानस्वरूपा १५)
२७ स्मृतिसारोद्धारः। अत्युत्तमोऽयं धर्मशास्त्रग्रन्थः ६)

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस सिटी।

Library IIAS, Shimla
S 294.538 P 259.I S-P 259.111
00006293